वर्ष 14-15, संयुक्तांक 27-30
जनवरी-दिसम्बर 2019
जनवरी-दिसम्बर 2020
ISSN 0976-3694
UGC Journal No. 41582

MŪLYAVIMARŚA

मूल्यविमर्श

नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित शोध पत्रिका

A Research Journal Devoted to Ethics and Human Values

कुम्भ विशेषांक

सत्य सदाचरण शांति अहिंसा प्रेम

मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र

"जीवन का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मूलमन्त्र हो। शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो कि विद्यार्थी अपनी शारीरिक, मानसिक, भावात्मक शक्तियों का विकास कर आगे चल कर किसी व्यवसाय द्वारा सच्चाई और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सकें, कलापूर्ण सौन्दर्यमय जीवन व्यतीत कर सकें, समाज में आदरणीय और विश्वासपात्र बन सकें, तथा देशभक्ति से, जो मनुष्य को उच्च कोटि की सेवा करने को प्रेरित करती है, अपने जीवन को अलंकृत कर राष्ट्र की सेवा कर सकें।"

भारत रत्न महामना मदनमोहन मालवीय

वर्ष : 14–15, संयुक्तांक : 27–30
जनवरी–दिसम्बर, 2019
जनवरी–दिसम्बर, 2020
ISSN 0976-3694
UGC Journal No. 41582

MŪLYAVIMARŚA
मूल्यविमर्श

नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित शोध पत्रिका
A Research Journal Devoted to Ethics and Human Values

प्रधान सम्पादक
आशा राम त्रिपाठी

कार्यकारी सम्पादक
गिरिजा शंकर शास्त्री

सम्पादक
उषा त्रिपाठी
धर्मजंग
राजीव कुमार वर्मा

सम्पादन परामर्श समिति

प्रेमशंकर त्रिपाठी, आचार्य एवं संकाय प्रमुख, प्रबन्धशास्त्र संस्थान, काहिविवि
चन्द्रमौली उपाध्याय, मानित व्यवस्थापक, श्री विश्वनाथ मंदिर, काहिविवि
मुकुलराज मेहता, आचार्य, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काहिविवि
अंजली बाजपेयी, आचार्य, शिक्षा संकाय, काहिविवि
सुशान्त कुमार श्रीवास्तव, आचार्य, भैषज अभियांत्रिकी, भा.प्रौ.सं. (काहिविवि)
ज्ञान प्रकाश सिंह, आचार्य, सांख्यिकी विभाग, विज्ञान संस्थान, काहिविवि
संजीव सर्राफ, उप–पुस्तकालयाध्यक्ष, केन्द्रीय ग्रन्थालय, काहिविवि

प्रकाशक

मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र
मालवीय भवन संकुल
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
ई मेल– mmak91@gmail.com

आवरण संयोजन

आशीष कुमार गुप्ता, सहायक आचार्य
दृश्य कला संकाय, काहिविवि

आर्थिक सहयोग
श्री विश्वनाथ मंदिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सदस्यता

वार्षिक	:	₹ 100
द्विवार्षिक	:	₹ 150
पंचवार्षिक	:	₹ 400
आजीवन	:	₹ 5000

मुद्रक
रुबी प्रिंटर्स एण्ड स्टेशनरी
इन्दिरा नगर, वाराणसी

Vol. : 14-15, Joint No. : 27-30
January - December, 2019
January - December, 2020
ISSN 0976-3694
UGC Journal No. 41582

MŪLYAVIMARŚA
मूल्यविमर्श

नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित शोध पत्रिका

A Research Journal Devoted to Ethics and Human Values

Editor-in-chief
Asha Ram Tripathi

Executive Editor
Girija Shankar Shashtri

Editors
Usha Tripathi
Dharm Jung
Rajeev Kumar Verma

Editorial Advisory Board

Prem Shankar Tripathi, Professor and Dean, Institute of Management, BHU
Chandramauli Upadhyaya, Honrary Manager, Sri Vishvanath Mandir, BHU
Mukul Raj Mehta, Professor, Deptt. of Philosophy & Religion, Faculty of Arts, BHU
Anjali Bajpaye, Professor, Faculty of Education, BHU
Sushant Kumar Srivastava, Professor, Deptt. of Pharmaceuties Engg., IIT (BHU)
Gyan Prakash Singh, Professor, Deptt. of Statitics, Institute of Science, BHU
Sanjeev Sarraf, Deputy Librarian, Central Library, BHU

Publisher

Malaviya Moolya Anusheelan Kendra
Malaviya Bhawan Complex
Banaras Hindu University, Varanasi-221005
email- mmak91@gmail.com

Cover Design

Ashish Kumar Gupta, Asstt. Professor
Faculty of Visual Arts, BHU

Financial Support

Shri Viswanath Mandir, BHU, Varanasi

Membership

Annual	:	₹	100
Two Years	:	₹	150
Five Years	:	₹	400
Lifetime	:	₹	5000

Printed By

Ruby Printers & Stationary
Indira Nagar, Varanasi

सम्पादकीय

किसी भी सभ्यता और संस्कृति की पहचान सदैव उन मानवीय मूल्यों के प्रदर्शन से होती है जो तद्समाज किसी आपदा के समय व्यक्तिगत और सामूहिक रुप से दिखाता है। वर्तमान समय में तो पूरा वैश्विक समाज कोरोना महाआपदा से गुजर रहा है जिसने सभी देशों की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता को अपने संक्रमण से प्रभावित कर दिया है। यही वह समय है, जब सम्पूर्ण विश्व को एकजुट होकर इसका सामना करने की आवश्यकता है, क्योंकि एक राष्ट्र या एक समूह या एक जाति के लिए अपनी सीमा में ही रहकर आत्मनिर्भर, स्वस्थ, तृप्त और स्वछंद होकर पूर्णतया संतुष्ट और जीवन जीना संभव होता तो अन्य लोगों के साथ विलग रहने को उचित ठहराने के पक्ष में तर्क दिया जा सकता था पर हम जानते हैं कि ये संभव नहीं है। साथ ही कोरोना ने हम सभी को सादगीपूर्ण जीवन अपनाने के लिए भी मजबूर कर दिया है। यद्यपि दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को कम कर लेना एक कठिन कार्य होता है। तथापि हम सादगी भरा रहन-सहन अपनाते हैं, तो हमारे जीवन में सकारात्मक बदलाव आता है। ऐसे समय में हम केवल आत्मकेंद्रित और स्वार्थ की बात नहीं सोचते बल्कि दूसरों की सुख-सुविधा और जीवन के बारे में भी सोचते हैं। वास्तव में जब हम सादगीपूर्ण जीवन अपनाते हैं, तो हमें फालतू के पैसे खर्च नहीं करने पड़ते, हम बेकार के तनावों से बच जातें हैं तथा हमारे जीवन में संतुष्टि भी आती है। स्वास्थ्य जीवन की सबसे कीमती वस्तु है, लेकिन सच यह है कि हम अपने स्वास्थ्य को जितना नजरअंदाज करते हैं, उतना किसी दूसरी चीज को नहीं। भौतिक संपदा के पीछे हम ऐसी अंधी दौड़ में व्यस्त रहते हैं कि स्वास्थ्य संपदा को भूल जाते हैं। वास्तव में जो अच्छे स्वास्थ्य का आनंद लेता है, वही धनी है। यद्यपि उसे खुद यह बात पता नहीं होती है। इतना ही नहीं हम जितना दूसरों के कल्याण की चेतना को विकसित करते हैं, उतना ही दूसरों के हित के साथ-साथ परोक्षतः स्वहित के लिए कार्य करना सरल हो जाता है। जब हम दूसरों के कल्याण की चिंता किये बिना अपनी तात्कालिक कामनाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं, तब हम अच्छे स्वास्थ्य और स्थाई सुख की संभावना को भी नष्ट कर देते हैं। यह समय मानवीय समाज के उन चिरस्थायी मूल्यों के परीक्षण का भी है जिसे स्वयं मानवीय सभ्यता ने हजारो वर्षों के निरन्तर प्रयास के बाद स्थापित किया है। वे मूल्य हैं-

परस्पर प्रेम, करुणा, सौहार्द, साहचर्य, सहयोग, सहिष्णुता और जिजिविषा के। ये मूल्य हमें सभी प्रकार के संघर्षों के बाद भी जीवन की सरसता और निरन्तरता को बनाए रखने को प्रेरित करते हैं। यह भी सच है कि जब-जब मानवीय सभ्यता पर बड़े संकट आए हैं, तब-तब पूरा वैश्विक समाज एकजुट होकर उन संकटों के निरसन को प्रयासरत हुआ है और यही मनुष्यता की वास्तविक पहचान भी है। किस प्रकार से हम मिलजुल कर एक सभ्य, सुरक्षित और सभी प्राणियों के निवास योग्य धरती को बनाए रखने में अपना योगदान दे पाते हैं वही हमारी सबसे बड़ी कसौटी होगी। हमें अपने जीवन के अंत में पछताना न पड़े इसके लिए सबसे उत्तम उपाय है वर्तमान समय में हमारा व्यवहार उत्तरदायित्व पूर्ण और दूसरों के लिए करुणामय होना। वास्तव में ऐसा करना हमारे हित में है क्योंकि हमारा सुख दूसरों के सुख के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र निरन्तर अपने अकादमिक प्रयासों के माध्यम से मानवीय मूल्यों के निरन्तर अनुशीलन और संवर्धन में गतिशील है और केन्द्र की अर्द्धवार्षिक शोधपत्रिका 'मूल्यविमर्श' का यह संयुक्तांक भी मानवीय मूल्यों के विभिन्न अकादमिक आयामों को अपने अन्दर समेटे हुए है। इस अंक में साहित्य, लोक साहित्य, समाज, धर्म, विज्ञान, व्यापार, नेतृत्व क्षमता, नैतिकता, महिला सशक्तिकरण, समाचारपत्र एवं इस आपद्काल के संदर्भ में मूल्यपरक लेख शामिल किए गए हैं। इस अंक की एक विशेषता 'कुम्भ खण्ड' है जो विश्व के सबसे बड़े मानव सम्मिलन मेले में केन्द्र के द्वारा किये गए प्रयासों को एक सचित्र प्रदर्शन की झलकियों के माध्यम से 'कुम्भ' की विशेषताओं और भारतीय संस्कृति के महापर्व को रुपांकित करता है। साथ ही इसमें भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ कुम्भ पर्व पर लेख भी शामिल हैं। मूल्यविमर्श का यह अंक सुहृदय पाठकों को समर्पित है साथ ही इसके माध्यम से केन्द्र उनको वैचारिक और आत्मिक सहयोग के लिए आमंत्रित करता है।

-आशा राम त्रिपाठी

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

क्र.सं. विषय — पृष्ठ सं.

कुम्भ खण्ड

1. **भारतीय संस्कृति के आधारस्तम्भ कुम्भमहापर्व** — 1-10
   गिरिजा शंकर शास्त्री
2. **21वीं शताब्दी का महाकुम्भ : एक विमर्श** — 11-17
   एस.एस. उपाध्याय
3. **महापर्व कुम्भ - 2019** — 18-24
   राजीव कुमार वर्मा, धर्मजंग

सामान्य

4. **नैतिकता का सुख** — 25-41
   राजीव कुमार वर्मा
5. **तुलसी की ब्रह्म-भावना का व्यावहारिक मूल्य** — 42-56
   विचित्रसेन गुप्त
6. **लोक साहित्य में उपस्थित मूल्य चेतना** — 57-63
   प्रियदर्शिनी
7. **समाचार पत्र, मानवीय सरोकार और भूमंडलीकरण** — 64-79
   सुभाष कुमार गौतम
8. **आपद्काल और मूल्य अनुशीलन** — 80-88
   धर्मजंग
9. **महात्मा गाँधी का समाज-दर्शन** — 89-93
   पल्लव पाठक
10. **'गोदान' में स्त्री संघर्ष चेतना के मूल्य** — 94-106
    कुमारी सिन्धू

11. **स्थापित मानवीय मूल्यों का सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत के रुप में एक विवेचन** 107-111
रमेश कुमार

12. **Critique of Contemporary Civilization Ethos and Modernity : Presenting Dystopian Ethics and Leadership Crisis** 112-129
Rajan

13. **Mahamana Vision on Ethical Values for Business** 130-135
Shivam Shukla, Asha Ram Tripathi, Sudhir Kumar Shukla

14. **Exploring the Moral Sphere through Feminist Ethics: Depicting Philosophy of Women Empowerment** 136-148
Amrita Tripathi

15. **Introductory Knowledge of "DHARMA" and its Role in Maintenance of Health based on Pragyaparadha (Intellectual Blasphemy) as discussed in Ayurveda** 149-156
Rashmi Varshney

16. **Ethical issues involved in Drug Discovery using Artificial Intelligence Approaches** 157-164
Anushree Tripathi, Yashbir Singh, Krishna Misra

पुस्तक समीक्षा

कृतज्ञता : एक जीवन मूल्य 165-168
राजीव कुमार वर्मा

आवश्यक सूचना : 'मूल्यविमर्श' शोध पत्रिका के इस अंक में छपे सभी लेख/शोध-प्रपत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार है। उनसे सम्पादक, प्रकाशक अथवा विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

भारतीय संस्कृति के आधारस्तम्भ कुम्भमहापर्व

गिरिजा शंकर शास्त्री*

भारतीय संस्कृति ही वैदिक संस्कृति है इसे सनातन संस्कृति भी कहते हैं। समस्त संस्कृतियों की जननी, अनादि से अद्यतन, अविच्छिन्न परम्परावाहिनी, समस्त ज्ञानराशियों का कोश, मानवों की समस्त आवश्यकताओं एवं कठिनाईयों का समाधान करने वाली भारतीय संस्कृति की महत्ता अधुनापि अद्वितीय ही है। विश्व की अनेक संस्कृतियों का उत्थान पतन सदैव होता रहा है। कभी रोम, यूनान तथा मिस्र देशों की संस्कृतियाँ अपने सर्वोच्च शिखर पर आरूढ थी, किन्तु आज उनका नाम ही शेष है। जबकि भारतीय संस्कृति अतिप्राचीन होती हुई भी चिरनवीन है। सतत् विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा प्रहार सहने पर भी, अनेक संघर्षो, झंझावातों से जूझने पर भी इसकी भित्ति, नींव अविचल बनी है। इसकी दृढता का कारण है भारतीयों की धर्मप्रधानता। जहाँ पाश्चात्य संस्कृतियाँ केवल अर्थ (धन) पर ही आश्रित रहती है वहीं सदा से भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है- **धर्मार्थौं चानुचिन्तयेत्**[1] धर्म एवं अर्थ का चिन्तन। इस कथन से सिद्ध होता है कि अर्थ का अर्जन सदा धर्माधारित ही होना चाहिए। भारतीय मनीषियों, का उद्घोष है- **सत्यं वद, धर्मं चर**[2]। सत्य बोलो, धर्माचरण करो। **महर्षिकणाद**[3] ने जहाँ लौकिक उन्नति के साथ पारलौकिक सिद्धि को धर्म कहा वही **वेदव्यास जी**[4] ने समस्त प्राणियों के हित को ही धर्म माना है। इससे सिद्ध है कि भारतीय संस्कृति शास्त्रविहित कर्मों को ही धर्म मानती है। शास्त्रविहित कर्म होते है- वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र तथा पुराणों द्वारा निर्णीत शुभकर्म। ऋषियों, मनीषियों एवं आचार्यों ने सर्वोच्च चिन्तन के पश्चात मानव कल्याण हेतु शुभकर्मो के अन्तर्गत नित्य, नैमित्तिक, काम्य एवं प्रायश्चित्त चार प्रकार के शास्त्रविहित पर्व निर्धारित किये। जिसमें नैमित्तिक पर्वों के अन्तर्गत दिव्यपर्वों में मुख्य पर्व है- **कुम्भमहापर्व**।

हमारी धार्मिक सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक एकता को अविच्छिन्न बनाये रखने के लिये कुम्भपर्वों की महती भूमिका रही है। अपने धर्म की रक्षा के लिये हमारे पूर्वज कितने सावधान थे। इसका सबसे बडा प्रमाण है पूर्व से, पश्चिम कटक से अटक तथा उत्तर से दक्षिण काश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने वाला कुम्भ महासम्मेलन का आयोजन।

---

* **अध्यक्ष एवं आचार्य, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

भारतवर्ष में ऐसा कोई दिन या तिथि नहीं है जो पर्व न हो। प्रत्येक दिन अपने ग्रह का पर्व है तथा प्रत्येक तिथि अपने स्वामी देवता का। कभी-कभी एक तिथि में 10 पर्व तक होते हैं। कुम्भ पर्व दिव्य पर्व है। यह विशेष ग्रह, नक्षत्रों, राशियों के योग से होता है। कुम्भ सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति एवं शनि के विशेष संयोग पर होता है। यह पर्व प्रत्येक तीन वर्ष के अन्तर पर आता है तथा क्रमशः प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक में मनाया जाता है। यह किसी भी एक स्थान पर बारह वर्ष में पुनः आता है। इस काल के मध्य में अर्धकुम्भी पर्व पड़ता है। प्रत्येक पर्व के लिये मुख्य स्थान शास्त्रों में वर्णित है। कुछ ऐसे पर्व है जो उन स्थानो में ही प्रभाव प्रकट करते हैं और कुछ अपने स्थानों में अधिक तथा अन्यत्र कम प्रभाव रखते हैं। कुम्भ पर्व निश्चित स्थानों में ही होता है।

कुम्भ शब्द की व्युत्पत्ति-

अमर कोश[5] के अनुसार **कुम्भौ घटेभमूर्धांशौ** कुम्भ शब्द घड़ा, हाथी का गण्डस्थल एवं राशि मण्डल का ग्यारहवां भाग, इन तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है। समुद्रमन्थनजन्य अमृत कुम्भ से सम्बन्ध होने के कारण कुम्भ शब्द उपचारेण एक विशेष कुम्भ पर्व अर्थ में सदा से प्रयुक्त होता रहा है। कुम्भ शब्द की व्युत्पत्ति 6 प्रकार से की जा सकती है।

- **कुं पृथ्वीं उम्भयति पूरयति मंगलेन ज्ञानामृतेन वा।** अर्थात् जो समय पृथ्वी को मंगल या ज्ञान से पूर्ण कर दे।
- **कुं कुत्सितं उम्भति।** अर्थात् जो पर्व संसार के अनिष्ट और पापों को दूर कर दे।
- **कुः पृथ्वीं उम्यते अनुगृह्यते आच्छाद्यते आनन्देन पुण्येन वा।** अर्थात् जिस पर्व के द्वारा पृथ्वी को आनन्द या पुण्य से ढक दिया जाय।
- **कुः पृथ्वीं उम्यते लघ्वीक्रियते पाप प्रक्षालनेन येन।** अर्थात् पृथ्वी पर स्थित पापों को धोकर जब उसे हल्का बना दिया जाय ऐसा पर्व।
- **कुं पृथ्वीं भाययति दीपयति।** अर्थात् पर्व पृथ्वी को सुशोभित कर दे उसको दीप्त कर दे उसके तेज को बढ़ा दे।
- **कं सुखं ब्रह्म तद् उम्भति प्रयच्छतीति कुम्भ।** अर्थात् सुख स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के अनुभव को प्रदान करने वाले सत् समागम का नाम कुम्भ है।

कुम्भ की प्राचीनता -

कुम्भ पद का उल्लेख वेदों में आता है। ऋगवेद[6], शुक्ल यजुर्वेद[7], सामवेद[8] तथा अथर्ववेद[9] की ऋचाओं में, मन्त्रों में कुम्भ शब्द समस्त संसारवासियों के लिये शुभ कर्मों के अनुष्ठान हेतु प्रयुक्त है।

पूर्णः कुम्भोऽधिकाल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वाभुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन्।।

अथर्ववेद[10] में ब्रह्माजी कहते हैं हे पृथ्वी मैं तुम्हे दूध, दही और जल से पूर्ण चार कुम्भों को चार स्थानों पर देता हूँ।

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि, क्षीरेण पूर्णाम् उदकेनदध्ना।

धर्मशास्त्रों में कुम्भ-

समस्त, मांगलिक कार्यो में कलश स्थापन, पूजन का प्रयोग धर्मशास्त्रों में सदा से होता आया है। जहाँ कहा गया है कि पुराकाल में देवदानवों ने परस्पर विचार विमर्श कर समुद्रमन्थन किया जिसके मध्य अमृत कलश उत्पन्न हुआ। उसे स्वयं भगवान विष्णु धन्वन्तरि के रूप में लेकर प्रकट हुए। उस कुम्भ के मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र, मूल में ब्रह्मा, मध्य में मातृगण, कुक्ष में सभी सागर सप्तद्वीप, पृथ्वी, ऋग्वेद् सहित समस्त वेद वेदाङ्ग समाहित थे।[11]

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्।।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः।।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।

पुराणों के अनुसार कुम्भ पर्व का काल निर्णय

चारों कुम्भों के काल निर्णय के विषय में पुराणकार वेदव्यास तथा उनके अनुयायियों का मत इस प्रकार है-

स्कन्दपुराण तथा पद्म पुराण आदि में लिखा है कि-

माघे मेषगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके।।

अर्थात् माघ मास में जब बृहस्पति मेषराशि का तथा सूर्य और चन्द्रमा मकर राशि के हो और अमावस्या भी हो, तब प्रयाग में कुम्भ होता है।

कालान्तर में व्यवधान आ जाने पर श्लोक को संशोधित करते हुए लिखा-

वृषराशिगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके।।

उसी पुराण में **नासिक** के कुम्भ का निर्णय इस प्रकार है:-

मेषराशिगते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतिः।
गोदावर्यां भवेत् कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः।।

अर्थात् जब सूर्य मेषराशि का हो और बृहस्पति सिंहराशि का हो तब गोदावरी (नासिक) में कुम्भ होता है जो मुक्तिदायक है।

उज्जैन के कुम्भ का निर्णय उसी पुराण में इस प्रकार है:-

धटे सूरिः शशी सूर्यः कुस्वां दामोदरे यदा।
धारायां च भवेत् कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः।।

अर्थात् जब बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य कार्तिक मास की अमावस्या को तुला राशि पर स्थित हो तब धारा नगरी मालवा (उज्जैन) में कुम्भ होता है जो मुक्तिदायक है।

कालान्तर में किसी महामारी वश अथवा राजाज्ञा के कारण उज्जैन का कुम्भ भी सिंहस्थ गुरू में ही होने लगा।

हरिद्वार के कुम्भ का निर्णय यह है-

पद्मिनी नायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः।।

अर्थात् जब सूर्य मेष राशि पर तथा बृहस्पति कुम्भराशि पर हो तो गंगाद्वार (हरिद्वार) में कुम्भनाम का उत्तम योग होता है।

इन चारों कुम्भों में नासिक और हरिद्वार के कुम्भ निर्णयों में अमावस्या का उल्लेख नहीं है। उज्जैन तथा प्रयाग में अमावस्या के साथ सूर्य, चन्द्रमा एक एक राशि पर होने का स्पष्ट निर्देश है। अतएव नासिक और हरिद्वार का कुम्भ पर्व पूर्णिमा में होना चाहिए। उज्जैन का कुम्भ पर्व वैशाख पूर्णिमा को ही होता है। अतः राशियों के सम्बन्ध से इन निर्णयों को प्राचीनता पर कैसा प्रभाव पड़ा है यह विचारणीय तथ्य है।

कुम्भ, अर्धकुम्भ का ऐतिह्य प्रमाण-

1760 ई. में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर नागा संन्यासियों और वैष्णवों में भीषण लड़ाई हुई थी जिसमें 18 हजार वैरागी साधु मारे गये थे। इसी कुम्भ से वैष्णव महात्माओं ने हरिद्वार कुम्भ का बहिष्कार करके वृन्दावन में कुम्भ मनाना आरम्भ किया और उसका इतिहास प्रत्यक्षदर्शियों के आधार पर यदुनाथ सरकार ने लिखा। किसी भी कुम्भ या अर्धकुम्भ में दसनामी सन्यासी नागा ही सबसे पहिले स्नान करते है। प्राचीन काल में उज्जैन का कुम्भ पर्व तुला राशि के गुरू में मनाया जाता था। 1730-31 ई. में मालवाप्रान्त पर मराठों का आधिपत्य हुआ तथा सिन्धिया राजवंश के संस्थापक तत्कालीन उज्जैन के महराजा

श्री राणोजी शिन्दे की आज्ञा से उनके दीवान बाबा रामचन्दराव सुखटनकर ने सन् 1732 ई. में वैशाख शुक्ल पूर्णिमा के दिन उज्जैन में सिंहस्थ कुम्भ का आयोजन किया और तभी से परम्परा बना दी गयी। ज्योतिषियों ने भी संवत, तिथि, मुहूर्त, आदि के अनुसार निर्णय देना प्रारम्भ किया और यही परम्परा अभी तक चल रही है।

1837 ई. में प्रथम बार हरिद्वार में अर्धकुम्भ मनाया गया था। उसके ठीक 3 वर्ष पश्चात् प्रयाग में भी सन्तों, महात्माओं ने अर्धकुम्भ की घोषणा कर दी थी और 1840 ई. को प्रयाग में प्रथम बार अर्धकुम्भपर्व मनाया गया और तभी से हरिद्वार एवं प्रयाग में अर्धकुम्भ प्रारम्भ हुआ और यह कहना कि हर्षवर्धन भी कुम्भपर्व पर आते थे यह कहीं से उचित नहीं है, कारण कान्यकुब्जेश्वर राजा हर्षवर्धन प्रयाग में प्रत्येक पाँचवे वर्ष आते थे न कि छठे वर्ष और इसका उल्लेख ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में किया है। जिसके आधार पर यही बात पं. जवाहर लाल नेहरू ने अपने (डिस्कवरी ऑफ इण्डिया) भारत की खोज में लिखा है। हर्षवर्धन 35 वर्ष तक राज्य किये थे किन्तु प्रयाग के अतिरिक्त किसी अन्य कुम्भपर्व स्थल पर कभी भी नहीं गये यह बात इतिहास से सिद्ध है।

कुम्भ पर्व के सन्दर्भ में पौराणिक कथा -

कुम्भपर्व की स्थापना कब और कैसे हुई, इसका वर्णन विस्तार से पुराणों में प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि देवासुर संग्राम में मरे हुए असुरों को जब शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से पुनः जीवित कर दिया तो देवराज इन्द्र को चिन्ता हुई। उस समय इन्द्र ने ब्रह्मा जी से परामर्श करके समुद्र मन्थन का आयोजन किया। तब असुरों के सहयोग से देवताओं ने समुद्र मन्थन किया। उस समुद्र मन्थन से तेरह रत्नों के पश्चात् चौदहवां रत्न अमृत निकला। अमृत कुम्भ (घड़ा) में भरा था। इस अमृत कलश को धन्वन्तरि लेकर प्रकट हुए। धन्वन्तरि के हाथ से अमृत कलश को छीनकर बृहस्पति भागे। क्रोधित असुरों ने उनका पीछा करते हुए चार स्थानों पर संघर्ष किया। उन्हीं चार स्थानों पर कुम्भ पर्व मनाया जाता है, ये सभी भारतवर्ष में ही है जो इस प्रकार है-

(1) पूरब दिशा में **प्रयाग** में गंगा, यमुना के संगम पर।

(2) दक्षिण दिशा के **उज्जैन** में क्षिप्रा नदी के तट पर।

(3) पश्चिम दिशा में **नासिक** क्षेत्र में गोदावरी नदी के तट पर तथा

(4) उत्तर दिशा में **हरिद्वार** क्षेत्र में गंगा जी के तट पर।

इन चारों ही स्थानों पर संघर्ष करने से उस अमृत कलश से कुछ बूँदे गिरी। अतएव ये चारों स्थान कुम्भ पर्व के पवित्र तीर्थ बन गये। कलश ही कुम्भ है, अतएव इसका नामकरण कुम्भ पर्व किया गया। दूसरी कथा पद्मपुराण के अनुसार है- देवगुरू बृहस्पति के

संकेत से इन्द्र का पुत्र जयन्त उस अमृत कलश को लेकर भागा। उस समय समस्त देव दानव उसका पीछा किए। उनमें परस्पर बारह दिन (देवताओं के दिन के अनुसार) मनुष्यों के अनुसार बारह वर्षपर्यन्त संघर्ष चलता रहा। इस मध्य सुरक्षा की दृष्टि से अमृत कुम्भ को बारह स्थानों पर रखा गया, जिसमें आठ स्थान स्वर्ग के थे तथा चार स्थान पृथ्वी के। ये पृथ्वी के चारों स्थान वहीं है जो ऊपर लिखे गये हैं। यहाँ यह विशेष उल्लेख किया गया है कि चन्द्रमा ने कुम्भ को ढरकने से, सूर्य ने टूटने से, गुरू ने दैत्यों की छीना-झपटी से तथा शनि ने जयन्त के भय से रक्षा की थी। यथा-

पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धाभेद उच्यते।
चतुः स्थले निपतनात् सुधा कुम्भस्य भूतले।।
चन्द्रः प्रस्रवगात् रक्षां सूर्यो विस्फोटनात् दधौ।
दैत्येभ्यश्च गुरूः रक्षां सौरिः देवेन्द्रजात् भयात्।।

कुम्भ पर्व मनाने के चार स्थान तो प्रसिद्ध थे ही, किन्तु बाद के संतों, आचार्यों तथा विद्वानों ने दो और स्थान कुम्भ पर्व में जोड़ लिये। ये दोनों स्थान हैं-

1. वृन्दावन 2. कुम्भकोणम्

वृन्दावन में कुम्भ का आयोजन हरिद्वार कुम्भ के पूर्व जब कुम्भ राशि में बृहस्पति तथा सूर्य आते हैं। यमुना जी के तट पर यह कुम्भ लगता है। यथा-

कुम्भराशि स्थिते भानौ तत्रैव च स्थिते गुरौ।
वृन्दावने भवेत् कुम्भो वैष्णवानां समागमः।।

वृन्दावन- स्कन्दपुराण के अनुसार गरूड़ को अपनी माता विनिता को विमाता कद्रु के दासत्व से मुक्त कराने के लिये शर्त के अनुसार अमृत की आवश्यकता हुई। देवलोक में इन्द्र को परास्त करके जब गरुड जी इन्द्र से अमृत लेकर चले तब वृन्दावन में कालियादह पर कुछ अमृत बिन्दु कदम्ब वृक्ष पर गिर पड़े, तभी से वृन्दावन में कुम्भपर्व मनाया जाने लगा। वृन्दावन का कुम्भ पर्व हरिद्वार कुम्भ मेला से ठीक पहिले वसन्त पंचमी से आरम्भ होकर होली तक चलता है तथा प्रत्येक बारहवें वर्ष वृन्दावन में कुम्भ मेला का आयोजन शताब्दियों से चला आ रहा है। भक्ति एवं प्रेम की स्थली वृन्दावन के कुम्भ पर्व की ऐतिहासिकता निर्विवाद है। जिस समय औरंगजेब (1658 से 1707) ने हिन्दुओं के धर्मस्थलों को नष्ट करते हुए वृन्दावन के प्रसिद्ध श्री गोविन्ददेव मन्दिर पर आक्रमण किया उस समय वृन्दावन मे कुम्भ मेला लगा था। संत महात्माओं ने औरंगजेब के इस दुष्कृत्य का जमकर मुकाबला किया। फलस्वरूप हजारों साधुओं को मुगलसेना द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था।

एतदर्थं महाकुम्भः वृन्दारण्ये शुभास्पदे।
यामुनं तीरमासाद्य श्रीवैष्णवैः विधीयते।।
श्रीमाद्यपंचमीतो हि फाल्गुन पूर्णिमावधिः।
कुम्भकालस्तु विज्ञेयः कृष्णलोक फलप्रदः।।
तेषामेव फलं रम्यं सर्व सौभाग्य कारकम्।
वृन्दावने हरिक्षेत्रे यमुना स्नाननामकम्।।

कुम्भकोणम- कुम्भकोणम जिसका प्राचीन नाम कुम्भघोणम है। यहाँ ब्रह्मा जी ने अमृत से पूरित कुम्भ रखा था। इस कुम्भ की नासिका (घोण) से अमृत रिस कर बाहर निकल गया और पांच कोश तक की भूमि अमृतमयी हो गयी। यही स्थल कुम्भघोण (कुम्भकोण) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुम्भस्य घोणतो यस्मिन् सुधापूरं विनिस्सृतम्।
तस्मात् तत्पदं कुम्भघोणमेव वदन्ति हि।।

कुम्भकोणम् कावेरी तट स्थित दक्षिण भारत का प्रमुख तीर्थस्थल है। यहाँ बारह वर्षों में एक बार **महामखम्** उत्सव मनाया जाता है। कुम्भ राशि में पर्व स्नान होने के कारण महामखम् उत्सव को दक्षिण भारत का कुम्भ मेला कहते हैं। उस समय सम्पूर्ण भारत से लाखों लोग आकर महामखम् सरोवर में स्नान करते हैं। मान्यता के अनुसार द्वादश वर्षीय कुम्भ अवसर पर इस सरोवर में गंगा जी का प्रदुर्भाव होता है। मान्यता के अनुसार महामखम् सरोवर में कुम्भ पर्व पर नौ नदियों का संगम होता है।

ये नदियाँ हैं- गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी, महानदी, पयोष्णी तथा सरयू। कुम्भकोणम् का उल्लेख शताध्यायी में इस ङ्कार है।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं कुम्भद्योणे विनश्यति।।
कुम्भद्योणे कृतं पापं वाराणस्यां विनश्यति।
तत्रापि यत्कृतं पापं प्रयागे तद् विनश्यति।।[12]

ज्योतिषीय गणना के आधार पर जब वृष राशि में गुरू तथा मकर राशि में सूर्य एवं चन्द्र की युति होती है तब प्रयाग में कुम्भ पर्व मनाया जाता है। इसी योग में जब शनि भी वृष राशि में गुरू से योग करता है तब महाकुम्भ पर्व होता है। चन्द्र, सूर्य, गुरू एवं शनि के विशेष प्रयासों से ही अमृत कलश की रक्षा हुई थी, अतएव कुम्भपर्व के लिये इन चारों ग्रहों का उस समय की स्थिति के आधार पर उन राशियों में स्थित रहना ही पुण्य कुम्भपर्व है।

सूर्येन्दु गुरू शनि योगः यद् राशौ यत्र वत्सरे।
सुधा कुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा।।

इस प्रमाण के अनुसार अमृत बिन्दु के पतन के समय जिन राशियों में सूर्य, चन्द्र, गुरु, शनि की स्थिति रही है उन्हीं राशियों में जब दुबारा सूर्य, चन्द्र, गुरू, शनि का योग हो तब कुम्भपर्व होता है। नान्यथा कहकर इन योगों के अभाव में कुम्भ पर्व नहीं हो सकता इस बात पर अधिक बल दिया गया है। सूर्य, चन्द्र के मकर राशि में तथा गुरू, शनि के वृष राशि में होने पर **महाकुम्भपर्व** प्रयाग में होता है। यह योग अनेक वर्षों के बाद होता है।

सूर्य एक राशि का भोग 1 मास में करता है अतएव 12 राशियों का भोग 1 वर्ष में पूर्ण करता है। चन्द्रमा सवा दो दिन में एक राशि का भोग करता है अतः 27 दिन में बारह राशियों का भोग पूरा कर लेता है। बृहस्पति 1 वर्ष में 1 राशि का भोग करता है अतः 12 वर्षों में सम्पूर्ण राशि चक्र का भोग पूर्ण करता है। शनि ढाई वर्ष में एक राशि का भोग पूरा करता है अतः सम्पूर्ण राशि चक्र को भोग करने के लिये 30 वर्ष का समय लगता है। चन्द्रमा 27 दिन पश्चात् पुनः उसी नक्षत्र एवं राशि में प्रवेश करता है जबकि सूर्य 1 वर्ष पश्चात् दुबारा उसी नक्षत्र एवं राशि में आता है। बृहस्पति 12 वर्ष पश्चात् पुनः उस राशि, नक्षत्र में आता है। शनि 30 वर्ष के लगभग उसी नक्षत्र एवं राशि में प्रवेश करता है। सूर्य एवं चन्द्र का योग मकर राशि में प्रत्येक वर्ष माघ महीने में होता है तब माघ या मकर स्नान का पुण्य होता है। सूर्य चंद्रमा के साथ गुरु भी वृष राशि में प्रति 12 वर्ष पश्चात् आता है तब कुम्भ स्नान का पुण्य प्रयाग में होता है। इसे कुम्भ पर्व कहते हैं। वृष राशि में ही गुरु के साथ शनि का योग होने पर तथा मकरस्थ सूर्यचन्द्र होने से **महाकुम्भ** का पुण्य होता है शनि का योग महत्त्वपूर्ण है। हरिद्वार का कुम्भ पर्व गुरु के कुम्भ राशि में होने पर कुंभराशि का स्वामी शनि है (प्रथम का कुम्भ मकरस्थ सूर्य में मकर राशि भी शनि की राशि है। नासिक कुम्भ मे मेषस्थ सूर्य होने पर मेष शनि की नीच राशि है इसी प्रकार सिंहस्थ सूर्य चंद्र एवं गुरू होने पर उज्जैन का कुम्भ इसमें तीनों ग्रह एक साथ पूर्ण दृष्टि से कुम्भ राशि को देखते हैं।

कुम्भ राशि शनि की ही राशि है, अतएव चारों स्थलों के कुम्भपर्व में शनि की राशि का विशेष योगदान रहता है।

मकरस्थ सूर्य चन्द्र तथा वृषस्थ गुरु एवं शनि का संयोग लगभग 360 वर्ष पश्चात् ही दुबारा सम्भव होता है। गुरु का संपूर्ण राशिचक्र का भोग 12 वर्ष, 30 राशिचक्र का भोग होने पर पुनः उसी राशि में शनि से योग होता है अतः 30×12=360 वर्ष। इसी प्रकार शनि का राशिचक्र भोग 30 वर्ष, 12 आवृत्ति के बाद गुरु से संयोग अर्थात 12×30=360 वर्ष। किन्तु गुरू एवं सूर्य की गति में न्यूनाधिकता के कारण यह चार वर्ष पूर्व अर्थात् 356 वर्षों में पुनः पूर्ववत् स्थिति बन जाती है।

ग्यारहवें वर्ष में कुम्भ क्यों-

ज्योतिषीय गणनानुसार, सूर्य का 12 राशियों में भ्रमण (सौर वर्षमान) 365 दिन, छः घंटे, नौ मिनट, तथा 15 सेकेण्ड में पूर्ण होता है, जबकि बृहस्पति एक राशि का भ्रमण 361 दिन, एक घण्टा, 20 मिनट, 34 सेकेण्ड में पूर्ण करता है। इस तरह प्रतिवर्ष सौर वर्ष और बृहस्पति भ्रमण में चार दिन, चार घण्टे, 47 मिनट, 40 सेकेण्ड का अन्तर हो जाता है, जो बढ़ते-बढ़ते 86वें वर्ष में सौर वर्ष की पूर्ति के समय बृहस्पति सूर्य से एक राशि आगे चला जाता है। इस क्रम से सूर्य एवं गुरू के वर्षमान में अन्तर के कारण 85 वर्ष में जाकर गुरू 12 वर्ष की जगह 11वें वर्ष में तद् राशि भ्रमण करने लगता है, इसीलिये प्रत्येक स्थानों का कुम्भपर्व छः बार तो 12वें वर्ष पड़ता है, किन्तु सातवां कुम्भ पर्व 11वें वर्ष में ही आ जाता है। यही कारण है हरिद्वार में कुम्भ पर्व इसके पूर्व 2010 में पड़ा था, जबकि इसबार 2021 में 11वें वर्ष ही गुरु कुम्भ राशि में भ्रमण करने से कुम्भ पर्व होना सुनिश्चित हुआ।

इसी दिव्य पर्व महाकुम्भ के लिये हमारे वेदों, पुराणों, शास्त्रों में कुम्भ स्नान की महिमा गायी गयी है। यथा-

अश्वमेघ सहस्राणि वाजपेय शतानिच।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमे कुम्भस्नानेन तत्फलम्।।
सहस्त्रं कर्तिके स्नानम् माघे स्नानं शतानि च।
वैशाखे नर्मदा कोट्यां कुम्भस्नाने तत्फलम्।।

अर्थात् हजार अश्वमेघ यज्ञ तथा सौ वाजपेय यज्ञ करने तथा लाख बार भूमि की प्रदक्षिणा करने, कार्तिक में हजार बार स्नान, माघ में सौ बार स्नान तथा वैशाख में करोड़ बार नर्मदा स्नान का जो फल होता है, वह महाकुम्भ पर एक बार स्नान करने से ही सुलभ हो जाता है।

वेपन्तेसर्वपापानि कुम्भस्नानसमागमे।
नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणि।।
नृणां जन्मन्तराभ्यासात् कुम्भस्नानमतिर्भवेत्।
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप।।

अर्थात् कुम्भपर्व समीप आने पर सभी पाप कांपने लगते हैं, कहते हैं कि यदि यह जल स्नान करेगा तो हम लोगों का नाश ही हो जायेगा। मनुष्यों के पूर्व जन्मों के शुभकर्मों के फलस्वरूप कुम्भ स्नान की बुद्धि होती है। जैसे पूर्व जन्म, जन्मान्तरों में अभ्यास से ही अध्यात्मज्ञान की कुशलता प्राप्त होती है।

पुराणों का कथन है कि कुम्भ के अवसर पर इन तीर्थों पर स्नान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।

सन्दर्भ-

1. मनुस्मृति अध्याय 4 श्लोक 92
2. तैत्तिरीय संहिता, शिक्षावल्ली 1
3. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।
4. सर्वभूतहितमत्यन्तं एतत् सत्यं मतं मम्।
5. अमरकोश 3/3/134
6. ऋगवेद 10/8/9/7 एवं 1/8/116/7
7. यजुर्वेद 19/47
8. सामवेद 5/3/3/3
9. अथर्ववेद 19/53/3
10. अथर्ववेद 4/34/7
11. कर्मठगुरू, कलश पूजन विधि
12. शताध्यायी अध्याय 3 श्लोक 8, 9

●●●

21वीं शताब्दी का महाकुम्भ : एक विमर्श

एस.एस. उपाध्याय*

माह जनवरी, 2019 से प्रयागराज में महाकुम्भ चल रहा है। महाकुम्भ का आयोजन प्रयागराज स्थित गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती नदियों के मिलन स्थल पर प्रयागराज के प्राचीन विद्वान मुनि भारद्वाज के काल से प्रारम्भ हुआ जिसे गुप्तकालीन सम्राट हर्षवर्धन ने भव्यता व व्यवस्थित आकार प्रदान किया। प्राचीनकाल में ऋषि भारद्वाज के समय में प्रयागराज उच्चस्तरीय ज्ञान एवं अकादमिक शोध का केन्द्र हुआ करता था। ऋषि भारद्वाज इतिहास में ज्ञात प्रथम विश्वविद्यालय के कुलपति हुआ करते थे। उस समय विश्वविद्यालय को आश्रम अथवा गुरुकुल कहा जाता था। भारद्वाज के गुरुकुल अथवा विश्वविद्यालय में 10,000 विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में धर्म, दर्शन, औषधि विज्ञान, ब्रह्म विद्या, योग, वैमानिकी, भौतिकी, रसायन आदि सहित अनेकानेक विषय सम्मिलित थे। मानव जीवन के लिए उपयोगी इतने अधिक विषयों के ज्ञाता और प्रयागराज स्थित गुरुकुल अथवा विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में विद्वान शिरोमणि महर्षि भारद्वाज का कुम्भ जैसे आयोजनों के पीछे उद्देश्य क्या हो सकता था, इसे सहज ही समझा जा सकता है। कुलपति भारद्वाज जैसे विद्वान द्वारा आयोजित किए जाने वाला समागम सामान्य रूप से आयोजित किए जाने वाला मेला अथवा तमाशा नहीं हो सकता था। भारद्वाज सरीखा उच्च कोटि का विद्वान जब कोई समागम आहूत करता रहा होगा तो निश्चित रूप से उसका जीवन व जगत के लिए एक बड़ा सार्थक उद्देश्य होता रहा होगा। इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट है कि कुम्भ के आयोजन का उद्देश्य भारद्वाज के समय में और उनके बाद भी कई हजार वर्षों तक दूर-दूर से जनमाननस को शीत ऋतु में प्रयागराज बुलाकर केवल मानव मेला आयोजित करना नहीं हो सकता था। यह आयोजन सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए नितान्त अर्थपूर्ण व गहरा सन्देश लिए हुए होता था न कि पुराणों आदि में वर्णित अनगिनत कहानियों और कथाओं को कथाकारों द्वारा जनमानस को केवल बताया अथवा सुनाया जाना। पुराणों की कथाओं आदि पर जनमानस को किस्से सुनाकर कथाओं का आर्थिक दोहन किया जाना कम से कम कदापि उद्देश्य नहीं हुआ करता था। कुम्भ और उसमें पधारने वाले उपदेशकों द्वारा जनमानस को सुनाई जाने वाली कथाओं का मूल उद्देश्य

*** पूर्व जनपद न्यायाधीश/पूर्व विधिक परामर्शदाता, मा. राज्यपाल, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।**

क्या हो सकता था, यह स्वाभावित रूप से विचारणीय हो जाता है। यह कुम्भ, अर्द्धकुम्भ अथवा महाकुम्भ क्या है, इसके आयोजन का उद्देश्य क्या रहा है, इस पर दृष्टि डालने से कई गम्भीर प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिन पर यहाँ विमर्श किया जा रहा है।

पुराणों के अनुसार देवों और दानवों में कई विषयों पर परस्पर मतभेद और विवाद होते रहते थे। परस्पर सन्धि करने के आशय से दोनों समूहों ने मिलकर समुद्र मन्थन करने का निर्णय लिया। समुद्र को प्राचीनकाल से ही विविध प्रकार की सम्पदाओं का भण्डार माना जाता रहा है। आधुनिक काल में भी कुछ ऐसा ही विश्वास है। समुद्र मन्थन के फलस्वरूप निकले कुछ 14 रत्नों में से एक रत्न अथवा सम्पदा 'अमृत कलश' भी था जिसे देव और दानव अकेले ही ले लेना चाहते थे। कदाचित यहीं से मानव जाति में दूसरे का अंश अथवा अधिकार छीनकर स्वयं ले लेने की लालची प्रवृत्ति का उदय हुआ जो मानव जाति में अन्तहीन विवादों का कारण रही। कथा के अनुसार अमृत कलश दानव पक्ष के राहु व केतु नाम के दो महानुभाव लेकर आकाश मार्ग से भागे जिनका पीछा देवों ने किया। इस भागम-भाग में राहु केतु द्वारा ले जाए जा रहे अमृत कलश की कुछ बूँदें प्रयागराज स्थित गंगा, यमुना व सरस्वती नदियों के संगम स्थल पर भी गिरीं। जनमानस के विश्वास के अनुसार अमृत की बूँदें संगम में गिरने के कारण संगम स्थित गंगा का जल अमृत तुल्य माना जाता है और उसका आचमन व संगम स्नान अमृत से स्नान करने के समान माना जाता है।

पुराणों की उक्त कथा का संकेतात्मक अर्थ जीवन और जगत में व्याप्त विष और अमृत रूपी सद्वृत्ति और दुष्प्रवृत्ति से है। मनुष्य का जीवन यदि सद्वृत्तियों से प्रेरित है तो जीवन से अमृत समान शुभ कर्म और उसके फल उसे मिलेंगे और दुष्प्रवृत्ति से प्रेरित जीवन से अशुभ अथवा विषतुल्य फल मिलेंगे। मनुष्य के जीवन में शुभ-अशुभ विचारों का द्वन्द्व अथवा मन्थन अनवरत चलता रहता है। नकारात्मक अथवा अशुभ भाव, विचार व वृत्तियाँ जीवन के लिए विष की भाँति हैं और सकारात्मक व शुभ भाव, विचार व वृत्तियाँ अमृत की भाँति कल्याणकारी होती हैं। विचारमंथन से उत्पन्न होने वाले इन शुभ अथवा अशुभ उत्पादों में से किसी एक का वरण करना मनुष्य की सात्विकता, क्षमता व प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। प्रत्येक मनुष्य के मन में अच्छे-बुरे विचारों का मंथन होता ही रहता है। सद्वृत्ति से प्रेरित मनुष्य विचारों के इस मंथन अथवा द्वन्द्व में से सद्विचार ग्रहण करता है जबकि दुष्प्रवृत्तियों से प्रेरित मनुष्य दुर्विचार। पुराणों की उपरोक्त कथा मानव-जीवन के वैचारिक द्वन्द्व और उसके मंथन की कथा है। सामान्य जनमानस पुराण-वर्णित इस जीवन-अमृत की खोज में संगम तट पर आयोजित होने वाले कुम्भ में आता है, यह बात अलग है कि इस कुम्भ में पधारने वाले ज्ञानीजन, धर्मोपदेशक, कथाकार, वार्ताकार, स्वामी व सन्यासी आदि श्रद्धालु जनमानस को पुराणों में वर्णित उपरोक्त कथा के अन्तर्निहित उक्त सन्देश को बता पाते हैं या नहीं।

जीवन ही समुद्र है। मन अथवा अन्तर्मन ही वास्तव में समुद्र की जलराशि है। इसी जलराशि अर्थात् मन में अनेकानेक भाँति के विचार व द्वन्द्व चलते रहते हैं। कुम्भ इन द्वन्द्वों पर मंथन अर्थात विमर्श करने का अवसर प्रदान करता है। कुम्भ में एक माह में भी अधिक अवधि तक निवास करके औसत गृहस्थ अन्तर्मन के शोधन (Purification) से निकलने वाले सात्विक विचारों की अमृतरूपी सम्पदा को लेकर पुनः गृहस्थ जीवन में लौटता है और वर्ष पर्यन्त इसी सात्विक वैचारिक सम्पदा से अपना मार्ग दर्शन करता हुआ जीवन और जगत के संघर्षों से जूझता है।

कुम्भ जैसे आयोजनों का केन्द्र बिन्दु समाज का वह हिस्सा है जिसे 'भारत' कहते हैं। कुम्भ में भ्रमण करने से यह आभास सहज रूप से होने लगता है कि हमारा समाज भारत और इण्डिया में किस प्रकार बँट चुका है, चाहे खान-पान, वेश-भूषा अथवा भाषा-बोली का प्रश्न हो, चाहे जीवनशैली तथा आचार-विचार का। चना-चबेना, गुड़-लड्डू, सत्तू-आटा, आलू-गंजी आदि की पोटली सिर पर रख कर फटे-पुराने वस्त्रों में घूमता हुआ छल-प्रपंच रहित सनातनी भारत ही कुम्भ में दिखाई देता है। कुम्भ में दो करोड़ की भीड़ का निर्माण वास्तव में इन्हीं भारत वालों से होती है। इन भारत वालों को कुम्भ के आयोजनों तथा सरकारों से सुख-सुविधाओं को लेकर न तो कोई शिकायत होती है और न ही वह कुम्भ में किसी भोग-विलास जनित भौतिक सुख की लालसा से आते हैं अपितु उनके लिए तो "गंगे तव दर्शनात् मुक्तिः" ही उनका परम अभीष्ट होता है। कुम्भ आकर संगम के पवित्र जल में डुबकी लगाकर ही वह परम सुख शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं जो अधिकांश इण्डिया वालों को भोग-विलास की अनेकानेक सुविधाएँ कुम्भ में सुलभ होने के बाद भी उन्हें प्राप्त नहीं होती हैं। सहज देखा जा सकता है कि इण्डिया वाले किस प्रकार हाईटेक व आधुनिक बाबाओं के ठिकानों में स्विस काटेज, वेस्टर्न मॉडल कमोड एवं अन्य आधुनिक संसाधनों का उपभोग करते मिलेंगे। कुम्भ तो वास्तव में विलास-वृत्ति के भोग का स्थल ही नहीं है अपितु अन्तर्मन व चेतना के शोधन और परिष्कार का स्थल है। कुम्भ भोग-वृत्ति की व्यर्थता को समझने व उसे दमित करने के तप का स्थल है न कि भोग-वृत्ति की ज्वाला को और अधिक प्रज्ज्वलित करने का। सत्ताधारी राजनीतिज्ञों, धनी व शक्ति सम्पन्नों के पीछे दौड़ने वाला, उनके साथ फोटोग्राफी के लिए लालायित होने, मीडिया में प्रायः दिखाई देने की लालसा से ग्रस्त प्रचार का भूखा साधु समाज का एक वर्ग धर्म, दर्शन सहित भारतीय संस्कृति की अनासक्ति, ज्ञान, वैराग्य व विरक्ति की महान् परम्पराओं का कदापि वाहक नहीं हो सकता है। साधु समाज वास्तव में समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी मानव सम्पदा की भाँति है जिसका यदि समाज के हित में सम्यक् उपयोग नहीं किया गया तो यह विपुल मानव सम्पदा व्यर्थ जा सकती है। कुम्भ जैसे अवसरों पर समग्र स्वामी, सन्यासी व साधु समाज को इस

पर विमर्श करना चाहिए कि इस महत्त्वपूर्ण मानव सम्पदा को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित करके भारतीय संस्कृति के संरक्षण, धर्म, दर्शन व अध्यात्म के पुर्नजागरण के कार्य में कैसे समायोजित किया जा सकता है। इस अभीष्ट की प्राप्ति के लिए 'साधु प्रशिक्षण संस्थान' की स्थापना करके तथा उनके प्रशिक्षण के लिए आवश्यक पाठ्यक्रमों की रचना करके स्वयं स्वामी-सन्यासी समाज भारतीय समाज में सुखद क्रान्ति ला सकता है।

कुम्भ सचमुच में धर्म, दर्शन व संस्कृति के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु एक प्रशिक्षण केन्द्र की भाँति है जहाँ घर-समाज में रहते हुए जीवन के संघर्षों से स्वभाव में आई हुई मलीनता तथा नकारात्मकता को शमित व परिमार्जित किया जाता है। कुम्भ में आत्म-शोधन के फलस्वरूप जीवन के मर्म को ठीक-ठाक समझ प्राप्त करके गृहस्थ सन्यासी पुनः अपने घर-परिवार में कुम्भ से मिले सन्देश को लिए हुए लौट जाता है और कुम्भ में पुनः वापस आने तक जीवन के संघर्षों से दो चार होता है। गृहस्थजन पुनः प्रतिवर्ष लगने वाले माघ मेला अथवा कुम्भ में सात्विक वृत्तियों के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित होने आते हैं।

कुम्भ सहित किसी भी अन्य धार्मिक-आध्यात्मिक आयोजनों में बताई जाने वाली पुराणों आदि शास्त्रें में वर्णित कहानियों, कथाओं तथा घटनाओं में मानव के लिए उपयोगी कोई न कोई अर्थपूर्ण सन्देश अवश्य छिपा होता है। कथा सुनाना मात्र किस्सागोई करना नहीं है जैसा कि बहुधा कथाकारों को किस्सागोई करते हुए देखा जाता है। कथाकारी वास्तव में जनमानस के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की भाँति होता है। यह बात अलग है कि परम्परागत कथावृत्ति में जीवन और जगत के गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं जटिल सांसारिक विषयों पर कथाकारों से अपेक्षित मार्गदर्शन प्रायः नहीं मिल पाता है और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों का स्थान मात्र किस्सागोई ले लेती है। कुम्भ जैसे महान् आयोजनों में अनेकानेक गुरुओं, स्वामियों, सन्यासियों, कथाकारों व वार्ताकारों आदि द्वारा किए जा रहे प्रवचनों तथा किस्सागोईयों में भारतीयशास्त्रों की मूल्यवान ज्ञान सम्पदा तथा भारतीय संस्कृति के कालजयी सनातन तत्व प्रायः क्यों नहीं होते हैं, इसकी विश्लेषणात्मक पड़ताल होनी ही चाहिए।

भारतीय संस्कृति के मूल तत्व क्या हैं और क्या यह तत्व बाबाओं और कथाकारों के विमर्श और प्रवचनों में दिखाई देते हैं। मानव जाति के लिए वेदों का उद्घोष रहा है ''मनुर्भव'' अर्थात् मनुष्य बनों। मनुष्य बनने का अर्थ है कि मानवोचित समस्त कर्म जिसमें ज्ञान, विज्ञान, परमार्थ, शील-सदाचार, जीवन के चार परम लक्ष्य- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) सम्मिलित हैं, की प्राप्ति के लिए कर्मशील रहना। मानव जीवन के यह उदात्त लक्ष्य बाबाओं के प्रवचनों के केन्द्र में होने चाहिए, होते हैं या नहीं यह अलग बात

है। भारत राष्ट्र की इतिहास में लम्बे समय तक गुलामी, समाज का विभिन्न जातीय व वर्गीय समूहों में विभाजन और उनमें परस्पर कटुता, वैश्विक परिदृश्य, भारत और भारतीयों की विश्व में स्थिति, जनसांख्यिकी की समुदायवार स्थिति, धर्मान्तरण, भारतीय संस्कृति के प्रति भारतीयों का क्षीण होता आग्रह और इन जैसे अन्य ज्वलंत प्रश्नों पर विमर्श बाबाओं और कथाकारों की कथाओं में प्रायः स्थान क्यों नहीं पाता है, इस पर भी कुम्भ में विद्वत वर्ग के बीच विमर्श होना चाहिए। भारतीय समाज के समक्ष चुनौती के रूप में उपस्थित उपरोक्त ज्वलंत प्रश्नों से बचकर निकल जाना और शास्त्रों के आर्थिक दोहन को ही अभीष्ट बना लेना कथाकार-जगत के लिए कदापि उचित नहीं है। दार्शनिक स्तर पर व्याप्त मतवैभिन्य एवं बिखराव के कारण अनेकाने मतों, सम्प्रदायों, विश्वासों तथा उपासना समूहों में बँटा सनातन भारतीय समाज भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों व प्रतिमानों से किस प्रकार दूर होता चला जा रहा है, यह सम्पूर्ण धर्म-अध्यात्म जगत एवं स्वामी सन्यासी जगत की चिन्ता और विमर्श का विषय होना चाहिए और कुम्भ इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त मंच हो सकता है जहाँ कैमरा, मोबाइल, इण्टरनेट, फेसबुक आदि जैसे आधुनिक संसाधनों का खुलकर उपयोग करने वाला बाबा-जगत भारतीय समाज की आज के दौर की उपरोक्त चुनौतियों पर भी विमर्श करे और जनमानस को उनके निराकरण के लिए तैयार करे तो निश्चित रूप से इससे भारतीय संस्कृति और समाज का बड़ा भला होगा और कुम्भ का आयोजन तब सचमुच में सार्थक सिद्ध होगा। धर्म जगत में व्याप्त आडम्बर, शास्त्रों में आई परस्पर प्रतिकूल अवधारणाएँ और उससे समाज में समय-समय पर उत्पन्न होने वाले विभ्रम और वैमनस्य का निराकरण तथा प्रतिकूल शास्त्रीय अवधारणाओं में किस प्रकार समन्वय बिठाया जा सकता है, जैसे प्रश्न भी धर्माचार्यों, कथाकारों, स्वामियों और सन्यासियों के मध्य विमर्श के केन्द्र में होने चाहिए जो कदाचित कुम्भ में दिखाई नहीं देता। सन्त समाज यदि इस पर कुछ कर सके तो यह समाज के व्यापक हित में होगा। कुम्भ जैसे विश्वस्तरीय आयोजनों में जीवन के गूढ़ और गम्भीर विषयों पर विमर्श यदि मनीषी बाबाओं, स्वामियों व सन्यासियों के प्रवचनों और उपदेशों में भी नहीं होगा तो फिर अन्यत्र कहाँ होगा। संस्कृति सहित मानव की खोजी प्रवृत्तियाँ जड़ (inert) नहीं हो सकती हैं, कालखण्ड विशेष में अटककर ठहरी नहीं रह सकतीं। संस्कृति लोक जीवन का सतत् प्रवाहमान स्वरूप होती है। संस्कृति में लोक-जीवन की समस्त स्वस्थ परम्पराओं, जीवन मूल्यों तथा जीवन-शैली का दर्शन होना ही चाहिए। भारतीय संस्कृति के जीवन्त व उदात्त पक्ष क्या हैं, इसका पुरजोर सन्देश मनस्वी बाबाओं के प्रवचनों आदि के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व तक जाना ही चाहिए। कुम्भ ऐसे महान् लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बाबाओं, स्वामियों व सन्यासियों, कथाकारों व वार्ताकारों आदि को सहज ही एक अवसर व मंच उपलब्ध कराता है जहाँ विश्व के

कोने-कोने से बड़ी संख्या में लोग स्वयं आते हैं। भारतीय संस्कृति को संसार भर में फैलाने का इससे सुनहरा अवसर शायद ही और कोई हो सकता है परन्तु प्रश्न यह है कि क्या पूज्य सन्त समाज इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सजग है।

कुम्भ जैसे महान् आयोजनों में जहाँ बड़ी संख्या में शास्त्रज्ञ, मनीषी व विद्वान संत, स्वामी व सन्यासी, कथाकार व वार्ताकार आदि आते हैं, वहीं ऐसे आयोजनों में शास्त्रों की अल्प समझ भी नहीं रखने वाले लम्पटाचार्य, द्वन्दाचार्य, धूर्तानन्दी तथा मायानन्दी भी सक्रिय हो उठते हैं जो अपने प्रवचनों व प्रदर्शनों आदि से भारतीय संस्कृति, भारतीयता, धर्म व दर्शन का सही सन्देश विश्व को नहीं दे पाते हैं और इससे अन्ततः भारतीय संस्कृति के बारे में दुनियाँ के अलग-अलग भागों से आए हुए लोगों के बीच गलत धारणा भी बन सकती है।

धर्म, दर्शन, भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों तथा उसके मर्म को अच्छे से जानने वाले व्याख्याकारों व बुद्धजीवियों का एक बड़ा वर्ग विश्वविद्यालयों सहित अन्य उच्च अकादमिक संस्थानों में भी सुलभ है परन्तु इस अकादमिक वर्ग की उदासीनता व निष्क्रियता के चलते भारतीय संस्कृति, धर्म व दर्शन का उदात्त पक्ष विश्व में नहीं जा पाता है। यदि बाबा समाज का एक भाग संस्कृति, धर्म व दर्शन की समुचित व्याख्या व उसका प्रस्तुतीकरण महाकुम्भ जैसे मंचों और अवसरों पर कर पाने में अक्षम हो तो इस दायित्व का सुन्दर निर्वाह विश्वविद्यालयों का सम्बन्धित अकादमिक वर्ग कर सकता है। महाकुम्भ में यह अकादमिक वर्ग भी अपने शिविर लगाए, जनमानस को भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष तथा धर्म व दर्शन के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराए, इसके लिए नीतिगत स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए।

अध्यात्म, धर्म, दर्शन आदि जैसे गूढ़ विषयों पर विद्वत समाज, स्वामी, सन्यासियों के मध्य शास्त्रार्थ की परम्परा भारत की सनातन अकादमिक परम्परा रही है। "वादे वादे जायते तत्व बोधः, मुण्डे मुण्डे मर्तिभिन्नाः, तर्को अप्रतिष्ठा श्रुतियो विभिन्नाः, नैको ऋषिः यस्य मतं प्रमाणं, धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां, महाजनों येन गता स पन्थाः" भारतीय संस्कृति और सनातन चिंतन धारा की परम्परा रही है। धर्म, दर्शन, भारतीय संस्कृति और समाज के समक्ष विद्यमान चुनौतियाँ और उनके समाधान आदि जैसे विषयों पर कुम्भ में सन्तों, स्वामियों, सन्यासियों, कथाकारों, किस्साकारों के बीच शास्त्रार्थ की परम्परा क्यों विलुप्त हो गई, इस पर पुर्नविचार होना चाहिए और इसे फिर से शुरू किया जाना चाहिए। यद्यपि कुछ मनोविनोदी महानुभावों के मतानुसार विभिन्न मतों, मठों, सम्प्रदायों आदि में बँटे हुए सन्तों, कथाकारों, स्वामियों व सन्यासियों आदि को शास्त्रार्थ के प्रयोजन से एक मंच पर लाने से पूर्व आयोजकों को अन्य बातों के अलावा इस आशय का भी प्रबन्ध करना होगा

कि 'शास्त्रार्थ स्थल' कहीं 'शस्त्र स्थल' में न परिवर्तित हो जाए और वहाँ कानून-व्यवस्था की समस्या न पैदा हो जाए। कुम्भ की सार्थकता के लिए परम आवश्यक है कि कुम्भ के अवसर पर पर्याप्त संख्या में धर्म, अध्यात्म, भारतीय संस्कृति सहित मानव चेतना के समस्त पक्षों से भली-भाँति परिचित सुयोग्य, दक्ष और कुशल धर्मोपदेशक, स्वामी व सन्यासी, पथ प्रदर्शक, अकादमिक जगत के विद्वतजन, कथाकार व प्रवचनकर्ता कुम्भ आवें और जनमानस का समुचित मार्गदर्शन करें।

कुम्भ में धर्म, दर्शन और अध्यात्म के मन्थन से निकलने वाला सन्देश भारतीय संस्कृति के सार्वभौमिक और कालजयी सिद्धांतों को संसार के कोने-कोने तक पहुँचा पाए, कुम्भ के आयोजन का यही मूल उद्देश्य हो सकता है।

●●●

महापर्व कुम्भ-2019

राजीव कुमार वर्मा, धर्मजंग*

'कुम्भ' हिन्दू धर्म का एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। इस पर्व पर करोड़ों श्रद्धालु हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक, इन स्थलों पर जाकर स्नान करते हैं तथा साधु-संतों के साथ सत्संग करते हैं। इनमें से प्रत्येक स्थान पर प्रति बारहवें वर्ष में इस पर्व का आयोजन होता है। इस प्रकार यह पर्व हर तीसरे वर्ष में उपरोक्त चार स्थानों में से एक पर आयोजित किया जाता है। इन चार स्थानों पर नदियाँ हैं- हरिद्वार में गंगा, प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा, यमुना एवं पौराणिक सरस्वती का संगम, उज्जैन में शिप्रा और नासिक में गोदावरी जहाँ बारी-बारी से कुम्भ पर्व मनाया जाता है। इन चार स्थानों में से प्रत्येक पर लगभग डेढ़ महीने तक तीर्थयात्रा आयोजित की जाती है। प्रयाग में संगम के तट पर होने वाला आयोजन सबसे भव्य और पवित्र माना जाता है। इस मेले में करोड़ों की संख्या में श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं। ऐसी मान्यता है कि संगम के पवित्र जल में स्नान करने से आत्मा शुद्ध हो जाती है। कुम्भ का शाब्दिक अर्थ है कलश है और इसका सम्बन्ध अमृत कलश से है। हिन्दू धर्म में मान्यता है कि किसी भी कुंभ के दौरान पवित्र नदी में स्नान या तीन डुबकी लगाने से सभी तरह के पाप धुल जाते हैं और मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक देश होने के कारण भारत में कई धार्मिक यज्ञ, मेला आदि समय समय पर आयोजित होते रहते है। कुंभ मेला भी इसी तरह का एक आध्यात्मिक मेला है, जहाँ बहुत विधि-विधान के साथ पूजा पाठ, यज्ञ आदि होता है।

मान्यता, परम्परा और महत्त्व-

कुंभ पर्व के आयोजन को लेकर दो-तीन पौराणिक मान्यताएं प्रचलित हैं, जिनमें से सर्वाधिक मान्य कथा देव-दानवों द्वारा समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत कुंभ से अमृत बूँदें गिरने को लेकर है। इस कथा के अनुसार महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण जब इंद्र और अन्य देवता कमजोर हो गए तो दैत्यों ने देवताओं पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। तब सब देवता मिलकर भगवान विष्णु के पास गए और उन्हे सारा वृतान्त सुनाया। तब भगवान

* मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विष्णु ने उन्हे दैत्यों के साथ मिलकर क्षीरसागर का मंथन करके अमृत निकालने की सलाह दी। तत्पश्चात अमृत कलश पर अधिकार जमाने के लिए देव-दानवों में बारह दिन तक अविराम युद्ध होता रहा। इस परस्पर लड़ाई के दौरान पृथ्वी के चार स्थानों-प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक पर कलश से अमृत बूँदें गिरी। ऐसे में जहां-जहां अमृत की बूंदें गिरी वहां तीन-तीन साल के अंतराल पर बारी-बारी से कुंभ मेले का आयोजन होता है। इन तीर्थों में भी संगम को तीर्थराज के नाम से जाना जाता है।

'कुम्भ' पर्व को पारंपरिक रूप से मनाने का श्रेय 8वीं शताब्दी के हिंदू दार्शनिक आदि शंकराचार्य को दिया जाता है, जो भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदू मठों के साथ-साथ दार्शनिक चर्चा और बहस के लिए प्रमुख हिंदू सभाओं को शुरू करने के उनके प्रयासों के एक हिस्से के रूप में होता है। यह भी कहा जाता है कि कुंभ का आयोजन 525 ईसा पूर्व शुरू हुआ था। 617-647 ईसवी में राजा हर्षवर्धन ने प्रयागराज में कुंभ में हिस्सा लिया था और अपना सब कुछ दान कर दिया था।

मान्यता है कि कुम्भ पर्व एक अमृत स्नान और अमृतपान की बेला है। इसी समय गंगा की पावन धारा में अमृत का सतत प्रवाह होता है। गंगा नदी के किनारे बसा प्रयागराज भारत का पवित्र और लोकप्रिय तीर्थस्थल है। इस शहर का उल्लेख भारत के धार्मिक ग्रन्थों में भी मिलता है। वेद, पुराण, रामायण और महाभारत में इस स्थान को 'प्रयाग' कहा गया है। परंपरागत तौर पर नदियों का मिलन पवित्र माना जाता है, लेकिन संगम का मिलन बेहद महत्त्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि यहां गंगा, यमुना और सरस्वती का अद्भुत मिलन होता है।

भारत में महाकुंभ धार्मिक स्तर पर बेहद पवित्र और महत्त्वपूर्ण आयोजन है। इसमें लाखों लोग शिरकत करते हैं। महीने भर चलने वाले इस आयोजन में तीर्थयात्रियों के ठहरने के लिए टेंट लगा कर एक छोटी सी नगरी अलग से बसाई जाती है। यहां सुख-सुविधा की सारी चीजें जुटाई जाती हैं। यह आयोजन प्रशासन, स्थानीय प्राधिकरणों और पुलिस की मदद से आयोजित किया जाता है। इस मेले में दूर-दूर के जंगलों, पहाड़ों और कंदराओं से साधु-संत आते हैं। कुंभयोग की गणना कर स्नान का शुभ मुहूर्त निकाला जाता है। स्नान के लिए विभिन्न नागा साधुओं के अखाड़े बेहद भव्य तरीके से जुलूस की शक्ल में संगम तट पर पहुंचते हैं।

भारत में कुंभ मेला दुनिया में किसी भी अन्य अन्य धर्मसभा की तुलना में अधिक लोगों को आकर्षित करती है। यह आध्यात्मिक मूल्यों में एक स्थायी विश्वास का प्रतिनिधित्व करता है। जब लोग इस त्योहार में जाते हैं तो वे जाति, पंथ, भाषा या क्षेत्र

के सभी भेदों को भूल जाते हैं। वे सार्वभौमिक आत्मा का हिस्सा बन जाते हैं। यदि कोई भी विविधता में एकता देखना चाहता है, तो भारत के कुंभ मेला की तुलना में कोई बेहतर उदाहरण नहीं हो सकता है। ये देश की एकता और भावनात्मक एकीकरण का प्रतीक है। ये राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा दे सकते हैं और सार्वभौमिक भाईचारे को आगे बढ़ा सकते हैं। कुंभ मेला एक आस्था का एक विशाल हिंदू तीर्थ है जिसमें हिंदू एक पवित्र नदी में स्नान करने के लिए इकट्ठा होते हैं।

कुम्भ मेला शिक्षा, संतों द्वारा धार्मिक प्रवचनों, भिक्षुओं के सामूहिक भोजन और गरीबों और मनोरंजन तमाशा के साथ सामुदायिक वाणिज्य का उत्सव भी है। साधकों का मानना है कि पिछली गलतियों के लिए इन नदियों में स्नान करना प्रायश्चित (प्रायश्चित्त, तपस्या) है और यह उनके पापों को दूर करता है। कुंभ मेला का मुख्य अनुष्ठान शहर में पवित्र नदी के तट पर स्नान करना है। इसमें शामिल अन्य गतिविधियाँ हैं धार्मिक चर्चा, पवित्र पुरुषों और महिलाओं का सामूहिक भोजन, भक्ति गीतों को गाना और धार्मिक सभाओं को आयोजित करना। लोग बड़ी संख्या में कुंभ मेले में जाते हैं ताकि इस वृहद कार्यक्रम के धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष पहलुओं का अनुभव किया जा सके। साधु यहां इसलिए आते हैं ताकि खुद को हिंदुओं के बड़े जनसमूह के लिए उपलब्ध करा सकें, जिन्हें वे आध्यात्मिक जीवन के बारे में निर्देश और सलाह दे सकें। कुंभ मेलों में शिविर आयोजित किए जाते हैं, ताकि हिंदू श्रद्धालु इन साधुओं तक पहुंच सकें।

ज्योतिषीय महत्त्व-

कुंभ को लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार की कहानियां है। लेकिन इसका महत्व धार्मिक और ज्योतिषीय दोनों है। पौराणिक विश्वास जो कुछ भी हो ज्योतिषियों के अनुसार कुंभ का असाधारण महत्व बृहस्पति के कुंभ राशि में प्रवेश तथा सूर्य के मेष राशि में प्रवेश के साथ जुड़ा है। खगोल गणना के अनुसार कुंभ का आयोजन मकर संक्रांति के दिन शुरू होता है, जब सूर्य और चंद्रमा, वृश्चिक राशि में और वृहस्पति मेष राशि में प्रवेश करते हैं।

'कुम्भ' शब्द प्रयोग

'कुम्भ' का शाब्दिक अर्थ कलश होता है। इसका पर्याय पवित्र कलश से होता है। इस कलश का हिन्दू सभ्यता में विशेष महत्व है। कलश के मुख को भगवान विष्णु, गर्दन को रुद्र, आधार को ब्रह्मा, बीच के भाग को समस्त देवियों और अंदर के जल को संपूर्ण सागर का प्रतीक माना जाता है। यह चारों वेदों का संगम है। वास्तव में कुम्भ हमारी सभ्यता का संगम है। यह आत्म जाग्रति का प्रतीक है। यह मानवता का अनंत प्रवाह है।

यह प्रकृति और मानवता का संगम है। कुम्भ ऊर्जा का स्त्रोत है। कुम्भ मानव-जाति को पाप-पुण्य और प्रकाश-अंधकार का एहसास कराता है। नदी जीवन रूपी जल के अनंत प्रवाह को दर्शाती है। मानव शरीर पंचतत्वों से निर्मित है। यह तत्व हैं- अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश।

कलशस्य मुखेः विष्णु कण्ठे रूद्रः समाश्रित।
मूले तंत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणा स्मृताः।।1।।

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वणः।
अंगैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु सामाश्रिताः।।2।।

'कुम्भ' शब्द की मीमांसा पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, एक चित्त और एक मन से की गई है। इन द्वादश इन्द्रियों पर विजय पाने से ही 'घट कुम्भ' अर्थात् शरीर का कल्याण होता है। विवेक एवं अविवेक देवासुर संग्राम को जन्म देता है। इनके पूर्ण नियन्त्रण से ही घट में अमृत का प्रादुर्भाव होता है।

पृथ्वी को ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने वाले ऋषियों का कुम्भ से तात्पर्य है पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्ति कराना। कुम्भ पर्व के अवसर पर पतित पावनी भगवती भागीरथी (गंगा) के जल में स्नान करने से एक हजार अश्वमेध यज्ञ, सौ वाजपेय यज्ञ, एक लाख भूमि की परिक्रमा करने से जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, वह एक बार ही कुम्भ-स्नान करने से प्राप्त होता है-

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च।
लक्षप्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नानेन तत् फलम्।।

अर्द्ध कुम्भ

'अर्ध' शब्द का अर्थ होता है- आधा। इसी कारण बारह वर्षों के अंतराल में आयोजित होने वाले पूर्ण कुम्भ के बीच अर्थात पूर्ण कुम्भ के छः वर्ष बाद अर्ध कुंभ आयोजित होता है। हरिद्वार और प्रयाग में दो कुंभ पर्वों के बीच छह वर्ष के अंतराल में अर्द्धकुंभ होता है। अर्द्ध या आधा कुम्भ हर छह वर्षो में संगम के तट पर आयोजित किया जाता है। 2013 का महाकुम्भ प्रयाग में हुआ था। फिर 2019 में प्रयाग में अर्धकुंभ मेले का आयोजन हुआ। पवित्रता के लिए अर्द्ध कुम्भ भी पूरी दुनिया में लाखों श्रद्धालुओं को आकर्षित करना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष माघ मेला संगम पर आयोजित किया जाता है जो कि एक वार्षिक समारोह है।

शाही स्नान, अखाड़ा, साधु और सत्संग

शाही स्नान का कुंभ मेले में काफी महत्त्व होता है शाही स्नान सबसे पहले अखाड़े के साधु करते हैं। इनके बाद ही आम आदमी पवित्र गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर स्नान कर सकते हैं। अखाड़े वो स्थान होते हैं जहां धार्मिक संगठन मिलते हैं। इनमें अधिकतर साधु होते हैं। शिव की पूजा करने वाले अखाड़े का नाम शैव अखाड़ा होता है जबकि भगवान विष्णु को पूजने वाले साधुओं के अखाड़े का नाम वैष्णव अखाड़ा होता है। यहां आपको नागा, अघोरी जैसे कई तरह के साधु मिल जाएंगे। इन साधुओं के बारे को देखने और समझने की यह सबसे अच्छी जगह है। कुंभ मेले के दौरान आपको जगह-जगह सत्संग होते हुए मिले जाएंगे। कई साधु सन्यासी हिंदू धर्म के बारे में प्रवचन देते हुए मिलेंगे। यहां कई आश्रम होते हैं जहां आप जब बैठकर सत्संग सुन सकते हैं। इस दौरान खाने की कोई समस्या नहीं होती क्योंकि जगह-जगह लंगर चल रहे होते हैं। इनमें साधु सन्यासियों के साथ आम आदमी को भी भोजन कराया जाता है।

'कुम्भ' मेला 2019, प्रयाग

अंतिम महाकुंभ 2013 में हुआ था और अगला महाकुंभ 2025 में होगा। अर्धकुंभ मेला 2019 का आयोजन प्रयागराज में हुआ। आस्था और विश्वास का सबसे बड़ा धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन कुम्भ इस बार 15 जनवरी यानि मकर संक्रान्ति से शुरू हुआ और 4 मार्च को महा शिवरात्रि तक चला। पूरे 50 दिनों तक चलने वाला यह आयोजन का पहला शाही स्नान 15 जनवरी को हुआ। कुंभ 2019 में कई विदेशी प्रतिनिधि भी हिस्सा लिए। कुंभ स्थल पर तंजानिया, अमेरिका, उजबेकिस्तान, त्रिनिडाड, टोबैगो, ट्यूनीशिया और वेनेजुएला के झंडे भी लगाए गए। कुम्भ पर्व विश्व का सबसे बड़ा सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयोजन है। दिसम्बर 2017 में यूनेस्को ने भारत मे आयोजित इस मेले को 'इनटैन्जिबल कल्चर हेरिटेज ऑफ़ ह्यूमैनिटी लिस्ट' में शामिल किया है। इस तरह से यह मेला एक वैश्विक स्तर का आयोजन बन गया है। प्रयाग में 2019 में होने वाले अर्धकुंभ मेले काफी भीड़ जुटी। अर्धकुंभ मेला हर 6 साल बाद होता है और केवल इलाहाबाद और हरिद्वार में ये मेला लगता है। श्री अखाड़ों के शाही स्नान से लेकर सन्त पंडालों में धार्मिक मंत्रोच्चार, ऋषियों द्वारा सत्य, ज्ञान एवं तत्वमीमांसा के उद्गार, मुग्धकारी संगीत, नादों का समवेत अनहद नाद, संगम में डुबकी से आप्लावित हृदय एवं अनेक देवस्थानों के दिव्य दर्शन प्रयागराज कुम्भ की महिमा भक्तों को निदर्शन कराते हैं। 15 जनवरी मकर संक्रांति के दिन से शुरू होकर 4 मार्च महाशिवरात्रि तक चलने वाला कुंभ स्नान का अदभुत संयोग करीब तीस सालों बाद बन रहा है।

2019 कुंभ मेले की शाही स्नान की तारीख-

- 14-15 जनवरी 2019, मकर संक्रांति (पहला शाही स्नान)
- 21 जनवरी 2019, पौष पूर्णिमा
- 31 जनवरी 2019, पौष एकादशी स्नान
- 04 फरवरी 2019, मौनी अमावस्या (मुख्य शाही स्नान, दूसरा शाही स्नान)
- 10 फरवरी 2019, बसंत पंचमी (तीसरा शाही स्नान)
- 16 फरवरी 2019, माघी एकादशी
- 19 फरवरी 2019, माघी पूर्णिमा
- 04 मार्च 2019, महा शिवरात्रि

●●●

प्रयागराज कुम्भ-2019 में महामना शिविर की कुछ झलकियां

पहली बार प्रयागराज कुम्भ 2019 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की उपस्थिती महामना पंडित मदन मोहन मालवीय कुम्भ शिविर के माध्यम से दर्ज करायी गयी, जिसके आयोजन की जिम्मेदारी मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र को मिली। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु महामना ने पहला दान कुम्भ के दौरान ही लिया था, उसी की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए उक्त समारोह का आयोजन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति न्यायमूर्ति गिरिधर मालवीय के मागदर्शन में किया गया। मेला क्षेत्र के सेक्टर 15 में आयोजित महामना शिविर में मालवीय जी के जीवन से सम्बंधित दुर्लभ दस्तावेजों को प्रदर्शित किया गया। इस दौरान बीएचयू के विशेषज्ञों द्वारा निःशुल्क चिकित्सा परामर्श, ज्योतिष परामर्श, कृषि एवं पशुपालन परामर्श, वित्तीय परामर्श एवं योग साधना शिविर का भी आयोजन किया गया।

इस शिविर के संचालन में मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र के समन्वयक प्रो. आशा राम त्रिपाठी, उप-समन्वयक प्रो. गिरिजा शंकर शास्त्री, डॉ. राजीव कुमार वर्मा, डॉ. धर्मजंग, डॉ. उषा त्रिपाठी, डॉ. ध्रुब कुमार सिंह, श्री बहादुर कनौजिया, श्री छोटेलाल, श्री अरविंद पाल, श्री अभिषेक गुप्ता ने अपना योगदान दिया। इनके अलावा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-पुस्तकलायाध्यक्ष डॉ. संजीव सर्राफ, कम्प्यूटर इंजीनियर डॉ. अभिषेक त्रिपाठी एवं डॉ. सुमिल तिवारी का विशेष सहयोग शिविर के आयोजन में रहा।

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय कुम्भ शिविर की कुछ महत्त्वपूर्ण झलकियाँ आगे की छवि चित्रों में प्रदर्शित हैं।

प्रयागराज कुम्भ - 2019 में महामना शिविर की कुछ झलकियाँ

प्रयागराज कुम्भ 2019 का विहंगम दृश्य

शिविर के उद्घाटन के समय दीप प्रज्ज्वलन करते हुए बायें से स्वामी अवधेशानन्द गिरि जी (महंत, पंचदशनाम जूना अखाड़ा), गुरु शरणानन्द जी (महंत, कार्ष्णि आश्रम, रमणरेती, मथुरा), स्वामी चिदानन्द जी (महंत, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश), कुलाधिपति का.हि.वि.वि. न्यायमूर्ति गिरिधर मालवीय, प्रो. आशाराम त्रिपाठी (समन्वयक, मा.मू.अ.के., का.हि.वि.वि.)

गणमान्य अतिथियों को सम्मान करते हुए न्यायमूर्ति गिरिधर मालवीय जी

माननीय कुलाधिपति न्यायमूर्ति गिरिधर मालवीय एवं अन्य

स्वागत करते हुए प्रो. आशाराम त्रिपाठी

मंच पर मुख्य अतिथिगण। बाँये से- स्वामी नरेन्द्र गिरि जी
(महंत, बाघम्बरी गद्दी, प्रयागराज एवं अध्यक्ष, अखाड़ा परिषद्),
स्वामी अवधेशानन्द गिरि जी, गुरु शुरणानन्द जी, स्वामी चिदानन्द जी और अन्य

स्वास्ति वाचन करते हुए अतिथिगण

शिविर में उपस्थित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिवार के सदस्यगण

चित्र प्रदर्शनी में विश्वविद्यालय
परिवार के सदस्य

चित्र प्रदर्शनी में विश्वविद्यालय
परिवार के सदस्य

शिविर में स्थित हवनस्थल पर
विश्व शांति एवं पर्यावरण शुद्धि
के लिए हवन करते हुए
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के
माननीय कुलपति
प्रो. राकेश भटनागर एवं अन्य

श्रोताओं को संबोधित करते हुए
माननीय कुलपति
प्रो. राकेश भटनागर

प्रदर्शनी के अवलोकन के पश्चात
विजिटर बुक पर संदेश लिखते हुए
माननीय कुलपति

योग गुरु बाबा रामदेव
शिविर में

शिविर के आयोजन से
जुड़े हुए गणमान्य सदस्य

दर्शनार्थियों का चिकित्सकों
के साथ जयकारा

वक्तव्य देते हुए
केंद्र के समन्वयक
प्रो. आशा राम त्रिपाठी

शिविर में स्थापित
वित्तीय साक्षरता पटल

मेले में आए हुए
विभिन्न दर्शनार्थियों को
चिकित्सीय परामर्श देते हुए
विश्वविद्यालय के चिकित्सक

शिविर का सभास्थल एवं
पुस्तक प्रदर्शनी

नैतिकता का सुख

राजीव कुमार वर्मा*

आधुनिक समाज की प्रमुख समस्याओं की सूची बनाई जाय तो उनमें पर्यावरण, आतंकवाद, आर्थिक मंदी, घटते हुए ऊर्जा के स्रोत के साथ नैतिक आचरण की कमी और ईमानदार छवि का अभाव भी एक प्रमुख समस्या के रूप में हमारे सामने विकराल रूप में खड़ी है। पुराने जमाने में व्यक्ति अपनी प्राण तक दे देता था लेकिन अपनी वचन को नहीं जाने देता था। अर्थात् उसने जो कह दिया वह कह दिया, झूठ का सहारा लेना महापाप समझता था। आधुनिक चिंतक बिली ग्राहम (Billy Graham) का कथन- When wealth is lost, Nothing is lost; When health is lost, Somthing is lost; When character is lost, all is lost. बहुत ही सार्थक है। लेकिन आज अधिकांश लोग धन के लिए स्वास्थ्य एवं चरित्र दांव पर लगाने के लिए थोड़ा भी हिचकिचाते नहीं हैं। आज ज्यादा से ज्यादा धन इकट्ठा कर लेना ही अपने जीवन का लक्ष्य समझ बैठे हैं। नैतिकता एवं नैतिक आचरण की बात करना उनको ऑउटडेटेड लगता है। ऐसी विकट परिस्थिति में परम पावन दलाई लामा की किताब 'नैतिकता का सुख' हमें आश्वस्त करता है कि सुख केवल धन-दौलत इकट्ठा करने में नहीं बल्कि नैतिक आचरण में है। प्रस्तुत लेख दलाई लामा के इसी पुस्तक पर आधारित है। यह उनकी 'Joy of Ethics' पुस्तक का अनुवाद है परंतु अनुवाद भी तेंजिन रवि वर्मा ने इस प्रकार किया है कि जैसे यह मूल हिन्दी में लिखी गई हो।

आज जब हम नैतिकता एवं मूल्यों की बात करते हैं तो उसको धर्म अथवा धार्मिक शिक्षा से जोड़कर गडमड कर दिया जाता है। हमें पोगापंथी तक कहा जाता है। इस दृष्टि से इस पुस्तक को देखा जाय तो इसके प्रस्तावना में ही परम पावन दलाई लामा ने स्पष्ट किया है कि 'यह एक धार्मिक पुस्तक नहीं है। यह बौद्ध धर्म के बारे में भी नहीं है। मेरा लक्ष्य नैतिकता के लिए एक ऐसे मार्ग का आह्वान करना है, जो वैश्विक सिद्धांतों पर आधारित हो, न कि धार्मिक सिद्धांतों पर।' अक्सर देखा गया है कि धर्मगुरुओं की पुस्तकें धार्मिक प्रवचन वाली होती हैं लेकिन यह पुस्तक धार्मिक प्रवचन नहीं। इस पुस्तक में उन्होंने जीवन कैसे जिया जाए यह दिखाने की कोशिश की है। यह दिखाया गया है कि जिस व्यक्ति का आचरण नैतिकता, करूणा, स्नेह, सहनशीलता, धैर्य, विनम्रता, क्षमाशीलता इत्यादि से युक्त

* **मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

होता है, वह उन लोगों से ज्यादा सुखी होते हैं जो इन सद्गुणों की अवहेलना करते हैं। साथ ही नैतिक आचरण द्वारा औरों के कल्याण में ही हमारा स्वयं का कल्याण भी निहित है।

परम पावन दलाई लामा अपनी मातृभूमि तिब्बत को 1959 में ही छोड़ चुके हैं और एक शरणार्थी के रूप में भारत में निवास कर रहे हैं। उनके द्वारा रचित यह पुस्तक सोलह अध्यायों में विभक्त है। इसके प्रथम अध्याय 'आधुनिक समाज एवं मनुष्य की खुशी की तलाश' में उन्होंने अपनी एक पश्चिम की यात्रा का जिक्र किया है। इस यात्रा में वे एक बहुत ही समृद्ध परिवार के मेहमान थे। वहाँ हर व्यक्ति की हर जरूरत के लिए नौकर तैनात थे। उनके मेजबान तनाव मुक्त एवं आत्मविश्वासी दिखते थे। लेकिन दलाई लामा ने जब उनके स्नानागार में आलमारी के थोड़े से खुले हुए दरवाजे से नींद एवं दिमाग को शांत करने वाली दवाइयों की कतार देखा, तो उन्हें इस बात का आभास हुआ कि जो बाहर से दिखता है और जो अन्दर की सच्चाई है, उनके बीच अक्सर काफी बड़ी खाई होती है। स्पष्ट है कि भौतिक सम्पन्नता के रहते हुए भी आन्तरिक दुःख या जिसे हम मानसिक अथवा भावात्मक दुःख कहते हैं- इतना ज्यादा पाया जाता है। वर्तमान समय में विकास और आर्थिक विकास की बात, जो लोगों के अन्दर प्रतिस्पर्धा एवं ईर्ष्या को बढ़ावा देती है, ने इस समस्या को और भी विकराल बना दिया है। इसके साथ आती है दिखावे को बनाये रखने की जरूरत जो खुद ही समस्या, दुःख एवं तनाव का बड़ा कारण है। दलाई लामा ने दुःख एवं पीड़ा का बार-बार उल्लेख किया है। सामान्यतया हम इन शब्दों को पर्यायवाची समझते हैं। परन्तु उन्होंने दोनों का तात्पर्य भिन्न दिखाया है। पीड़ा का अर्थ है, अनिवार्य शारीरिक कष्ट जैसे रोग, दुर्घटना, वृद्धावस्था एवं मृत्यु इत्यादि एवं दुःख का तात्पर्य मानसिक अवस्था से है। दुःख वह है जो ऐसे व्यक्ति को भी होता है जिसका पेट भरा होता है, जिसके तन पर अच्छे वस्त्र होते हैं, बैंक में पर्याप्त धन होता है। दुःख ऐसी चीज है जो वातानुकूलित कक्ष में बैठने वाले व्यक्ति को भी व्यथित करती है। दलाई लामा इस मानसिक दुःख को व्यर्थ का कलेश कहते हैं। इस पुस्तक में उन्होंने वह सारे उपाय बताये हैं जिसकी सहायता से हम अपने इस व्यर्थ के दुःखों का उन्मूलन कर सकते हैं।

अध्यात्म एवं नैतिकता :

पहले के दिनों में धर्म एवं नैतिकता के बीच में काफी घनिष्ठ संबंध था। आज के कई लोग ऐसा मानकर कि विज्ञान ने धर्म के अस्तित्व को नकार दिया है इसलिए नैतिकता को सिर्फ एक व्यक्तिगत निर्णय मात्र होना चाहिए। दलाई लामा इस पुस्तक में लिखते हैं- ''दुनिया-भर के विभिन्न लोगों से मिलकर मुझे यह समझने में सहायता मिली है कि दुनिया में कई धर्म हैं, कई संस्कृतियाँ हैं, जो लोगों को एक सकारात्मक एवं संतोषजनक जीवन-यापन करने की दिशा में ले जाने के लिए मेरी संस्कृति से किसी प्रकार से कम नहीं हैं। इसके अतिरिक्त मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य किसी धर्म में आस्था रखता है

या नहीं इससे ज्यादा फर्क नही पड़ता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अच्छा मनुष्य हो।'' उनका मानना है कि पूरी दुनिया के छह सौ करोड़ लोगों में से शायद एक सौ करोड़ भी ऐसे नहीं है जिन्हें समर्पित धार्मिक अनुष्ठाता कहा जा सके, जो अपने दैनिक जीवन में धर्म के सिद्धांतों एवं नियमों का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं। बाकी के लोग धर्म का पालन नहीं करने वाले लोगो में से हैं। इससे हम यह निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं क मनुष्य बिना किसी धर्म का सहारा लिये भी अपना जीवन-यापन भली-भांति कर सकता है। ऐसी बातें एक धार्मिक व्यक्ति के मुख से सुनकर अटपटी लग सकती है। लेकिन दलाई लामा कहते हैं कि बहुसंख्यक लोग किसी धर्म का पालन नहीं करते हैं, मेरा उद्देश्य एक ऐसा रास्ता ढूंढने का है, जिससे मैं किसी धार्मिक आस्था का सहारा लिए बिना सारी मानवता का कल्याण कर सकूं और वह रास्ता है- आध्यात्मिक क्रांति का मार्ग। आध्यात्मिक क्रांति का आह्वान धार्मिक क्रांति का आह्वान नहीं है। ना ही यह किसी पारलौकिक जीवन के बारे में है और न कोई जादू या रहस्य। बल्कि यह स्वयं के अन्दर एक क्रांतिकारी परिवर्तन का आह्वान है, जो हमें सदैव स्वार्थ पूर्ण चिन्तन में लिप्त रहने की आदत से दूर करे। ओशो भी कहते हैं कि 'हर क्षण को नया करने का नाम अध्यात्म है।' धर्म एवं आध्यात्म में भी गंभीर अन्तर है। धर्म का संबंध एक या दूसरे धार्मिक परम्परा के मुक्ति के दावे में विश्वास से है जहाँ रीतियाँ, प्रार्थनाएँ, निर्वाण एवं मुक्ति की बातें होती हैं, परन्तु आध्यात्मिकता का संबंध मैत्री, करूणा, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता, संतुष्टि, उत्तरदायित्व की भावना एवं सौहार्द्र की भावना जैसे मानवीय गुणों से है, जिनको धर्म से सम्बद्ध होने की आवश्यकता नहीं है। दलाई लामा कहते हैं कि 'धर्म एक ऐसी चीज है, जिसके बिना शायद हम अपना काम चला सकते हैं। लेकिन इन मूल आध्यात्मिक गुणों के बिना नहीं।' उन्होंने अध्यात्म को परिभाषित करते हुए कहा कि 'हमारे कार्य औरों के हित को ध्यान में रखते हुए हों एवं दूसरी ओर यह हमें प्रतिबद्ध करता हो कि हम अपने में वह परिवर्तन लायें जिससे ऐसा करना हमारे लिये सहज हो जाए।'

दलाई लामा कहते हैं कि धर्म में विश्वास रखना नैतिकता की कोई गारंटी नहीं है। जब हम अपनी प्रजाति का इतिहास देखते हैं, तो पाते हैं कि उनमें से अनेक अपने साथी मनुष्यों के साथ हिंसक, क्रूर एवं विनाशकारी व्यवहार किया। इनमें से कई ऐसे रहे हैं जिन्होंने अक्सर काफी जोर से धर्म में अपना विश्वास जताया था। धर्म मूलभूत नैतिक सिद्धांतों की स्थापना में मदद कर सकता है। लेकिन हम लोग नैतिकता एवं सदाचार की बात बिना धर्म का सहारा लिये भी कर सकते हैं। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल आध्यात्मिक मूल्यों के विकास करने से दुनिया की सारी समस्याएँ स्वतः गायब हो जायेंगी। इसके विपरीत जैसे घरेलू हिंसा, नशे एवं शराब की आदत, परिवार का बिखरना, लैंगिक समानता आदि जैसी प्रत्येक समस्या के लिए अलग-अलग विशेष समाधान की

आवश्यकता है। लेकिन हम पाते हैं कि आध्यात्मिक आयाम (करूणा एवं स्नेह आदि) की अवहेलना करने से हम इन समस्याओं के स्थायी समाधान की आशा नहीं कर सकते हैं। दुनियाँ की तमाम समस्याओं को दो व्यापक विभागों में बांटा जा सकता है। प्रथम ऐसी घटनाएँ जो मुख्यतः प्राकृतिक कारणों से होती हैं- भूकम्प, बाढ़, सूखा, सुनामी आदि। दूसरी ऐसी जो मानवकृत हैं- युद्ध, अपराध, हर तरह की हिंसा, भ्रष्टाचार, गरीबी, धोखा एवं सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अन्याय सभी नकारात्मक मानवीय व्यवहार का परिणाम हैं। प्राकृतिक विपदाओं (जिन पर हमारा बहुत कम अथवा कोई नियंत्रण नहीं है) से भिन्न मानवकृत समस्याएँ, जो वास्तव में नैतिकता की समस्याएँ है, सबका समाधान संभव है। वास्तव में हम पाते हैं कि आंतरिक अनुशासन के बिना जिन साधनों का प्रयोग हम इन समस्याओं के समाधान के लिए करते हैं, वही समाधान हमारी समस्या का कारण बन जाते हैं। हम लोग विनाशकारी प्रवृतियों एवं इच्छा पर नियंत्रण किये बिना स्नेहशील एवं करूणामय नहीं हो सकते हैं। जब हमारे व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाली भावना हितकारी है, हमारा व्यवहार स्वतः ही दूसरों के हित में होगा। इस प्रकार से हमारा व्यवहार स्वतः नैतिक होगा। हम पाते हैं कि जैसे-जैसे हमें आध्यात्मिक गुणों के विकास से अपने दिल और दिमाग में गुणात्मक परिवर्तन लाने में सफलता मिलती है, वैसे-वैसे हम विपदाओं से जूझने में बेहतर होने लगेंगे एवं नैतिक रूप से हमारे व्यवहार के कुशल होने की संभावना बढ़ेगी। उनका कहना है कि यह 'आध्यात्मिक क्रांति' वास्तव में 'नैतिक क्रांति' का ही दूसरा नाम है।

सुख एवं नैतिकता :

प्राकृतिक रूप से सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। हमारे कुछ कर्मों का फल दुःख होता है, जबकि कुछ कर्मों का फल सुख होता है। यह हरेक के हित में है कि हम वही करें जो सुख प्रदान करता है एवं उन कर्मों से बचें, जिनसे दुःख होता है। दलाई लामा ने बौद्ध दर्शन के 'प्रतीत्यसमुत्पाद' शब्द का प्रयोग किया है। इस सिद्धांत के अनुसार हमारे जीवन में जो कुछ भी होता है, वह कई कारणों पर निर्भर करता है। अर्थात् बिना हेतु के फल संभव नहीं है एवं बिना फल के हेतु, हेतु के रूप में नहीं जाना जाता है। वास्तव में, प्रतीत्यसमुत्पाद के यथार्थ के इस चित्र में हम देखते हैं कि ऐसा कोई आत्महित नहीं है जो औरों के हित से बिल्कुल असम्बद्ध हो। अर्थात् 'मेरे' हित और 'आपके' हित घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। इस तरह हम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं कि मेरी खुशी की कामना और आपकी खुशी के बीच नैतिकता एक अनिवार्य कड़ी के रूप में है।

सुख एक सापेक्ष गुण है। हम इसका अनुभव अपनी परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं। जो एक किसी व्यक्ति को प्रसन्नता देता है वहीं दूसरे के लिए दुःख का स्रोत हो सकता है। दलाई लामा ने एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया है कि हममें से ज्यादातर लोग आजीवन कारावास दिए जाने पर अत्यंत दुःखी होंगे। लेकिन एक अपराधी

जिसे मृत्युदंड की सजा का भय हो, वह अपने दण्ड को आजीवन कारावास में बदल जाने से बहुत प्रसन्न होगा। 'सुख' शब्द का प्रयोग हम विभिन्न स्थितियों का वर्णन करने के लिए करते हैं। जैसे गर्मियों में ढण्डे जल से नहाना, कोई काल्पनिक स्थिति (अगर मेरी लॉटरी निकल जाए तो मैं कितना सुखी होऊंगा), परिवार की साधारण खुशी को लेकर सुख, प्यास से मरते हुए व्यक्ति के लिए पानी पीने का सुख, अथवा भौतिक सफलता से मिलने वाला इन्द्रिय सुख। दलाई लामा कहते हैं कि मनुष्यों की सुख को गहरे स्तर पर अनुभव करने की क्षमता यह दर्शाती है कि कैसे सिर्फ भौतिक वस्तुओं का अर्जन करने की तुलना में संगीत एवं कला जैसी चीजें हमें अधिक सुख एवं संतुष्टि प्रदान करती हैं। जब हम दूसरों के हित की चिन्ता किये बिना अपनी तात्कालिक कामनाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं, तब हम स्थायी सुख की सम्भावना को नष्ट कर देते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। हम दूसरों के कर्म के परिणामस्वरूप आए हैं। हम दूसरों पर निर्भर होकर जीवित रहते हैं। भले ही हमें यह अच्छा लगे या न लगे, हमारे जीवन का शायद ही कोई क्षण हो जब हम दूसरों के कार्यों का लाभ नहीं उठा रहे होते हैं। दलाई लामा ने बहुत ही अच्छी बात कही है कि हमारे ज्यादातर सुख दूसरों के साथ सम्बन्ध के सन्दर्भ में उत्पन्न होते हैं। हम पाते हैं कि परोपकार वाले कर्म न ही सिर्फ सुख लाते हैं, बल्कि वे हमारे दुःख को भी कम करते हैं। यद्यपि रोग, बुढ़ापा हो या किसी प्रकार की दुर्घटना- हम सभी के लिए एक जैसी ही हैं जिस पर किसी का कोई वश नहीं रहता। लेकिन ऐसे दुःख जिसके लिए हम स्वयं जिम्मेदार होते हैं एवं जो हमारी आंतरिक शान्ति का हनन करते हैं। जैसे- चिंता, कुंठा, निराशायें अवश्य ही कम होती हैं।

संयम एवं नैतिकता :

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और सर्वोपरि आत्मा का नियमन-नियंत्रण संयम कहलाता है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि अपना मित्र वह है जिसने अपने आप को जीत लिया है। जिसने अपने को नहीं जीता, वह अपने आप से शत्रु की तरह व्यवहार कर रहा है। वास्तव में हमारी यात्रा बाहर की ओर है, हमारी लड़ाई बाहर के शत्रुओं से है, जबकि सारे शत्रु हमारे भीतर छिपे बैठे हैं। दलाई लामा ने सुख के लिए करूणा को महत्त्वपूर्ण माना है। अर्थात् सुख करूणा के बल पर पाया जा सकता है। उनका मानना है कि एक तरफ जहाँ करूणा के विकास के लिए स्नेह, धैर्य, सहिष्णुता, क्षमाशीलता, विनम्रता आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है वहीं दूसरी तरफ स्वयं पर संयम की कमी करूणा की उत्पत्ति में अवरोध करता है, जिसे हम सारे अनैतिक व्यवहार की जड़ मानते हैं। इसलिए हमें आंतरिक अनुशासन की आदत बनाने के लिए अभ्यास करना चाहिए। शारीरिक अनुशासन के विपरीत सच्चा आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक अनुशासन बलपूर्वक नहीं किया जा सकता, यह केवल समझ एवं संयम पर आधारित स्वेच्छापूर्वक जान-बूझकर किए जाने वाले प्रयासों से ही संभव

है। दूसरे शब्दों में, हमारा नैतिकतापूर्ण आचरण केवल कानून एवं विधियों के पालन से कहीं अधिक संयम एवं समझ पर निर्भर करता है। जब हम क्रोधित होते हैं तो हम करूणामय, स्नेहशील, दानशील, क्षमाशील, सहनशील एवं धैर्यशील बिल्कुल नहीं रह पाते हैं। इस प्रकार से हम स्वयं को उन सभी गुणों से वंचित कर बैठते हैं, जो हमारे सुख का कारण होते हैं। क्रोध सिर्फ हमारी समझ-बूझ का तत्काल विनाश ही नहीं करता है बल्कि यह हमें उग्रता, द्वेष, दूसरों को हानि पहुँचाने की इच्छा की ओर अग्रसर करता है। वास्तव में, नकारात्मक विचार एवं भावनाएँ हमारी शांति एवं सुख के मूलभूत कारणों को हानि पहुँचाते हैं। इसीलिए यदि हम सुखी होना चाहते हैं तो हमें अपने नकारात्मक विचारों एवं भावनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया पर नियन्त्रण करना चाहिए। दलाई लामा कहते हैं- जब मैं क्लेशकारी भावनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को नियंत्रित करने में असफल होता हूँ तो मेरा आचरण अनैतिक हो जाता है एवं मेरे सुख के कारणों में विघ्न उत्पन्न होता है। वास्तविक सुख मानसिक शांति से परिलक्षित होता है एवं वह औरों से हमारे सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न होता है। इसलिए हमारा हित एवं भविष्य का सुख औरों के हित से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं एवं हमें इसके अनुसार व्यवहार करना सीखना चाहिए।

सद्‌गुण और नैतिकता :

एक बेहतर समाज बनाने में जितना सद्‌गुणों का महत्त्व है, उतना और किसी का नहीं। दलाई लामा कहते हैं कि सुखी होने के लिए आत्म-संयम आवश्यक है। परंतु नकारात्मक विचारों एवं भावनाओं पर नियंत्रण के साथ-साथ हमें सद्‌गुणों को उत्पन्न और पोषित करना आवश्यक है। ये सद्‌गुण हमारे मूलभूत मानवीय अथवा आध्यात्मिक गुण हैं। दलाई लामा करूणा के बाद सोपा (सहिष्णुता) को मुख्य सद्‌गुण मानते हैं। सोपा का अर्थ है- 'सहन करने की क्षमता।' अर्थात् सोपा वह है जो हमें दुःख को सहने की शक्ति देता है एवं हमें कष्ट व नुकसान पहुँचाने वालों के प्रति भी करूणा खोने से बचाता है। सोपा का सार है- कठिनाइयों के सामने दृढ़ संकल्पपूर्वक धैर्य। वह अन्याय का विरोध करता है लेकिन हिंसा के उत्तर में हिंसा नहीं करता। सोपा कायरता के बिल्कुल विपरीत है। इसे अकर्मण्यता समझने का भी भ्रम नहीं करना चाहिए। कायरता तब होती है जब हम भय के कारण अपना सारा आत्मविश्वास खो बैठते हैं। धैर्यपूर्ण सहिष्णुता का अर्थ है कि हम भयभीत होने के बावजूद अविचलित रहते हैं। धैर्यपूर्ण सहिष्णुता एक ऐसा गुण है जो हमें नकारात्मक विचारों एवं भावनाओं के वशीभूत होने से बचाता है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों में हमारे चित्त की शान्ति की रक्षा करता है। इस तरह की शान्ति का अनुशीलन करने से हमारा आचरण नैतिकतापूर्ण रहता है। कई ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जब हम अपने ऊपर संयम नहीं रख पाते हैं। क्रोध पर नियंत्रण नहीं ला सकते हैं। ऐसी स्थिति में उस स्थान को छोड़ देना, पैदल घूमने के लिए जाना, यहाँ तक कि बीस श्वास गिनना भी उत्तम होता

है। ऐसे में हमें मन को थोड़ा शान्त करने का कोई साधन ढूंढना चाहिए। वास्तव में शान्ति क्रोध के विनाशकारी परिणामों से बचाने का सबसे उत्तम आंतरिक साधन है। दलाई लामा कहते हैं कि कई ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जब व्यक्ति पर क्रोध करना व्यर्थ होता है। जैसे अगर हम आग से जलते हैं, तो अग्नि पर क्रोध करने का कोई अर्थ नहीं है। अग्नि का स्वभाव है जलाना।

अपने आचरण को सहज रूप से नैतिक बनाने के लिए हमारे चित्त एवं हृदय का परिवर्तन आवश्यक है और इसके लिए आवश्यक है कि हम सद्गुणों के अभ्यास को अपनी दिनचर्या के केन्द्र में रखें। ऐसा इसलिए है कि मैत्री एवं करुणा, शान्ति, उदारता, विनम्रता इत्यादि परस्पर पूरक हैं। यद्यपि सद्गुणों का अभ्यास बहुत ही कठिन काम होता है। दलाई लामा ने लिखा है कि तिब्बत में एक लोकोक्ति है कि सद्गुणों के आचरण का अभ्यास गधे को पहाड़ की ऊँचाई की ओर हाँकना जैसा कठिन होता है एवं दुर्गुणों के आचरण का अभ्यास पत्थर को पहाड़ से नीचे की ओर लुढ़काने जैसा आसान होता है। इसीलिए सद्गुण के कार्य में प्रवृत्त होना एक शिशु का पालन-पोषण कर उसे बड़ा करने जैसा है। हम जैसे हैं वैसा बनने में बहुत लम्बा समय लगा है तथा हमारी आदतें रातों-रात नहीं बदलती है। हममें जब तक दूसरों के कल्याण की चिंता रहती है, तब तक हममें परिवर्तन की क्षमता रहती है और उतना ही दूसरों के हित के लिए कार्य करना सरल हो जाता है। हम अपने चिंतन के दायरे को अपने हित के साथ-साथ दूसरों के हित को सम्मिलित करने के लिए जितना ही अधिक विस्तृत करते हैं, हम अपने सुख की नींव को उतना ही मजबूत बनाते हैं। दूसरों के हित की चिंता करने की आदत बनाना और सुबह जागते ही नैतिकता पूर्ण अनुशासित जीवन के मूल्य पर मनन करने में थोड़ा समय देना सभी के लिए उत्तम है, चाहे हम धर्म में विश्वास करते हों या नही। हमें अपने जीवन में सबसे ज्यादा खुशी एवं संतुष्टि वही कार्य देते हैं, जो दूसरों के कल्याण के लिए करते हैं। यह सुख सद्गुणों वाले कारणों से उत्पन्न होता है। अगर हम वास्तव में सुख चाहते हैं, तो सद्गुण के मार्ग के अलावा और कोई मार्ग नहीं है। यह वह उपाय है जिससे हमें सुख प्राप्त हो सकता है। इसमें हम यह भी जोड़ सकते हैं कि सद्गुणों की नींव अर्थात् आधार भूमि नैतिक अनुशासन है।

करूणा एवं नैतिकता :

असहाय, असमर्थ, दुःखी अथवा संकट में पड़े व्यक्ति को देखकर मन में होने वाली दुःख की ऐसी अनुभूति, जो उसका कष्ट या दुःख दूर करने को प्रेरित करती है, करूणा कहते हैं। सामान्य दुःखी के प्रति सहानुभूतिपरक प्रेम को करूणा कहते हैं। करुणा को दूसरों के दुःख को समझने एवं कुछ हद तक उन्हें साझा करने की हमारी क्षमता के रूप में देखा जाता है। करूणा की उत्पत्ति हमारे हृदय में होती है, जिससे प्रेरित होकर हम तदनुसार आचरण करते हैं। विश्व के सारे प्रमुख धर्म करूणा एवं स्नेह के महत्त्व पर जोर

देते हैं। दलाई लामा के अनुसार करूणा और पारस्परिक सम्मान औरों से संबंध बनाने का अधिक ठोस आधार देते हैं। जैसे हमारा किसी के लिए स्नेह मुख्यतः आकर्षण के कारण है, चाहे वह सौन्दर्य के प्रति हो अथवा किसी और बाहरी गुण के प्रति, वह आकर्षण समय के साथ निश्चय ही लुप्त हो जायेगा, जब उस व्यक्ति की वह लुभाने वाली विशेषता खत्म हो जाती है अथवा हमें संतुष्टि मिलना बंद हो जाती है। यद्यपि वह व्यक्ति वही है जो पहले था। यही कारण है कि केवल आकर्षण पर आधारित संबंध सर्वदा अस्थायी होते हैं। दूसरी तरफ जब हम अपनी करूणा को विकसित करने का प्रयास करते हैं, तब हमारी प्रवृत्ति पर न तो दूसरों के रूप का प्रभाव होता है, न ही उसके व्यवहार का। हमारा उस व्यक्ति से संबंध केवल करूणा एवं स्नेह के आधार पर स्थायी हो सकता है।

दलाई लामा कहते हैं कि अगर हम औरों से समता के आधार पर संबंध बनाना आरंभ करेंगे, हमारी करूणा इस तथ्य पर आश्रित नहीं रहेगी कि कौन मेरा पति हैं, मेरी पत्नी है, मेरे संबंधी हैं, मेरे मित्र हैं। बल्कि दूसरों के प्रति घनिष्ठता के भाव का बोध इस साधारण सी मान्यता से हो सकता है कि मेरी ही तरह सभी सुखी रहना चाहते हैं एवं दुःख से दूर रहना चाहते हैं। हम जितना अधिक करूणामय होंगे उतना ही अधिक सुखी रहेंगे। करूणा की नैतिकता हमें संयम एवं सद्गुण विकसित करना, दोनों के लिए आवश्यक आधार एवं प्रोत्साहन देती है। दलाई लामा कहते हैं कि बहुत शिक्षित होने में ही कोई अद्भुत बात नहीं है, धनवान होने में भी कोई अद्भुत बात नहीं है। जब किसी व्यक्ति का हृदय करूणामय होता है, तभी शिक्षा अथवा धन का कोई मूल्य होता है। इसीलिए करूणा का जीवन के हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्नेह, मैत्री एवं करूणा सिर्फ विलासिता की बातें नहीं है। ये आन्तरिक एवं बाहरी दोनों प्रकार की शान्ति के स्रोत के रूप में, हम मनुष्यों के जीवित रहने के लिए नितांत आवश्यक हैं। जहाँ स्नेह, करूणा एवं मैत्री विद्यमान होता है, वहाँ नैतिक आचरण सहज हो जाता है। करूणा से प्रभावित होने पर नैतिक आचार खुद-ब-खुद प्रकट हो जाते हैं।

दुःख एवं नैतिकता :

दलाई लामा कहते हैं- दुःख एवं पीड़ा जीवन के अपरिहार्य सत्य हैं। मेरी परिभाषा में एक सचेतन प्राणी वह है, जिसमें पीड़ा एवं दुःख की संवेदनशीलता की क्षमता है। कोई यह भी कह सकता है कि हमारा दुःख का अनुभव ही हमें औरों से जोड़ता है। यह हमारी सहानुभूति की क्षमता का आधार है। वे कहते हैं कि दुःख को आपस में जुड़े हुए दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में इस प्रकार के दुःख हैं, जिनसे बचना संभव है जो युद्ध, निर्धनता, हिंसा, अपराध, यहाँ तक कि अशिक्षा एवं कुछ रोगों के कारणवश प्रकट होते हैं। दूसरे वर्ग में वे दुःख हैं, जिनसे बचना संभव नहीं है, जैसे रोग, वृद्धावस्था एवं मृत्यु। इन तीनों अपरिहार्य दुःख के कारणों के अलावा कोई अप्रिय घटना और दुर्घटना का सामना

होना, खेतों में कमरतोड़ परिश्रम के पश्चात भी फसल नहीं होना, व्यवसाय पर दिन-रात कार्य करने पर भी सफलता नहीं मिलना, इस दुःख में वह भी शामिल है, जो अनिश्चितता के कारण होते हैं। ये हमारी बिना किसी गलती के दुःख हैं। हमें कभी पता नहीं होता कि कब और कहाँ हमें विपत्ति का सामना होगा। परंतु जहाँ तक परिहार्य दुःखों- हिंसा, अपराध, अशिक्षा, युद्ध, निर्धनता आदि- जो कि नकारात्मक भावनाओं और विचारों के कारण होते हैं, निश्चय ही हमारे पास यह विकल्प है कि हम दुःख की घटनाओं के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करते हैं। अगर हम चाहे तो उसके निदान का प्रयास संयम एवं विवेक के साथ कर सकते हैं। अगर हम अपने दुःख के प्रति नकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया करने की इच्छा को नहीं रोकते हैं, तो यह नकारात्मक विचारों एवं मनोभावों का स्रोत बन जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि दुःख के प्रति हमारा मूलभूत रवैया क्या है? हम दुःख को कैसे अनुभव करते हैं? इसका हम पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अगर हम वास्तव में अपना ध्यान स्वयं से हटाकर दूसरों की तरफ मोड़ लेते हैं, तो हम अपने दुःख से मुक्ति का अनुभव करते हैं। स्वयं में डूबे रहने एवं अपनी ही चिंता में लगे रहने में कुछ ऐसा है, जिससे हमारा दुःख और विराट दिखता है। इसके विपरीत अगर हम इसे औरों के दुःख के सन्दर्भ में देखते हैं, तो हमें आभास होता है कि अपेक्षाकृत हमारा दुःख उतना अहसनीय नहीं है। इससे हमें अपनी मानसिक शान्ति बनाये रखने में सहायता मिलती है। बनिस्पत ऐसी अवस्था के जब हम सबकी समस्या को छोड़कर अपनी ही समस्या पर ध्यान देते हैं। दलाई लामा कहते हैं कि जब हम किसी दुःख एवं समस्या में हों तो विवेकपूर्ण बात यह होगी कि हम अपनी पूरी ऊर्जा समस्या के समाधान को ढूढ़ने एवं उस पर कार्य करने में लगा दें। दूसरी, अगर हम पायें कि उस समस्या का कोई समाधान नहीं है तो फिर उस पर चिन्ता करना व्यर्थ है।

विवेक एवं नैतिक अनुशासन :

दलाई लामा कहते हैं कि लोग अनुशासन को ऐसे समझते हैं जिसे उन पर उनकी इच्छा के विरुद्ध थोपा गया है। जब हम नैतिक अनुशासन की बात करते हैं तो हमारा ध्येय ऐसे अभ्यास से है, जिसका अनुशीलन हम अपनी भलाई को भली-भांति समझकर स्वेच्छा से करते हैं। अपने चिकित्सक की सलाह पर हम ऐसे भोजन से परहेज करते हैं, जो हमारे लिए हानिकारक है, भले ही वह भोजन हमें कितना ही प्रिय क्यों न हो। नैतिक अनुशासन अत्यावश्यक है, क्योंकि यही वह साधन है, जिसकी सहायता से हम स्वयं की खुशी के अधिकार एवं औरों के समान अधिकार के प्रतियोगी दावे के बीच एक संतुलन बरकरार रख सकते हैं। नैतिक अनुशासन का तात्पर्य सिर्फ संयम से कहीं ज्यादा है। इसमें सद्गुणों का विकास भी सम्मिलित है। करूणा, मैत्री, सहिष्णुता (क्षान्ति), सहनशीलता, क्षमाशीलता इत्यादि अनिवार्य गुण हैं। नैतिक अनुशासन अथवा आचार का पालन हम सिर्फ इसलिए नहीं करते हैं, क्योंकि यह अपने-आप में सही है। हम ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि हम जानते

हैं कि जैसे मैं सुखी एवं दुःख से दूर रहना चाहता हूँ, वैसे ही सभी अन्य लोग भी। नैतिक द्वन्द्व से बाहर निकलने में हमारी तर्क करने एवं कल्पना करने की शक्ति काम आती है। यही योग्यता हमें पशुओं से विशिष्ट करती है। दलाई लामा कहते हैं कि नैतिक द्वन्द्व की स्थिति में सर्वप्रथम हमें उस परिस्थिति की विशिष्टता पर बौद्ध दर्शन के 'प्रज्ञा (विवेक) एवं उपाय के समन्वय' के प्रकाश में विचार करना चाहिए। 'उपाय' को हमें उस प्रयासों की दृष्टि से समझना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो जाये कि हमारा कार्य करूणा से प्रेरित है।

'प्रज्ञा' (विवेक) का अर्थ विश्लेषण करने की क्षमता से है, जिससे हम नाना प्रकार के तत्त्वों की प्रतिक्रिया में किसी भी परिस्थिति में 'किसी का अहित नहीं करने' के आदर्श का पालन करते हैं। हम इसे विवेकपूर्ण क्षमता कह सकते हैं। इसी कारण दलाई लामा नियमों के पालन करने से श्रेष्ठ विवेकपूर्ण समझदारी को मानते हैं। वो कहते हैं कि नैतिक आचरण दूसरों का अहित नहीं करने के सिद्धांत के प्रयोग पर निर्भर करता है। लेकिन निश्चित ही ऐसी परिस्थितियाँ होंगी, जब कोई भी प्रयास किसी-न-किसी नियम को भंग करता दिखेगा। ऐसी स्थिति में हमें अपनी बुद्धिमता (प्रज्ञा/विवेक) का प्रयोग कर ऐसा मार्ग चुनना होगा, जो दीर्घकाल में सबसे कम हानिकारक हो। हमें स्थिति के हर पहलू पर विचार करते हुए एवं झूठ बोलने एवं सच बोलने के लाभ की तुलना कर ऐसा कार्य करना होगा, जो हमें सब कुछ मिलाकर सबसे कम हानिकारक लगता हो। अन्य शब्दों में किसी कार्य की नैतिकता का आकलन समय, स्थल एवं परिस्थिति के सन्दर्भ में किया जाता है एवं सबके वर्तमान एवं भविष्य के सम्पूर्ण हित का ध्यान करके होता है। इसका अर्थ यह है कि जो कार्य एक परिस्थिति में नैतिक है वही दूसरी परिस्थिति में अनैतिक हो सकता है। अपनी विवेवकपूर्ण बुद्धि का नैतिक क्षेत्र में प्रयोग करने का अर्थ है, अपने आचार एवं उसकी आधारभूत भावना दोनों का उत्तरदायित्व लेना। अगर हम अपनी भावना का उत्तरदायित्व नहीं लेते हैं, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक तो हानि की संभावना अधिक है। हर कार्य का प्रभाव सिर्फ हमारे निकट के लोगों पर ही नहीं होता है, बल्कि हमारे सहकर्मियों, मित्रगण, समाज एवं अंततः पूरे विश्व पर होता है।

वैश्विक उत्तरदायित्व और नैतिकता :

दलाई लामा का विचार है कि हमारे हर कर्म का एक वैश्विक आयाम है। इस कारण से नैतिकतापूर्ण अनुशासन, सदाचार तथा विवेक, अर्थपूर्ण एवं सुखी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में छोटे-छोटे समुदायों के लोग एवं परिवार कमोवेश एक-दूसरे के सहारे के बिना रह सकते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है। दुनिया एक-एक छोर पर व्यापार के डूबने, पर्यावरण का नुकसान हो या महामारी इन सबका प्रभाव दुनिया के दूसरे छोर पर स्थित देशों पर भी होता है। इसीलिए हमारे अन्दर वैश्विक उत्तरदायित्व की भावना को

जागरूक करना महत्त्वपूर्ण है। इसका एक महत्त्वपूर्ण लाभ है कि यह हमें सिर्फ अपने निकटस्थ लोगों के लिए ही नहीं, बल्कि सबके प्रति संवेदनशील होने में सहायता करता है। अगर हम हर व्यक्ति को अपने समान देखें, एक अपनी ही तरह के मनुष्य के रूप में, जिसके एक नाक, दो आखें इत्यादि हैं, एवं रूप-रंग की भिन्नता की उपेक्षा करें, तो फिर दूरी की भावना अपने-आप समाप्त हो जाएगी। दलाई लामा कहते हैं कि अगर एक समूह अथवा एक जनजाति अथवा एक राष्ट्र के लिए अपने सीमा में ही रहकर आत्मनिर्भर एवं स्वछन्द होकर पूर्णतया संतुष्ट एवं तृप्त रहना संभव होता तो शायद बाहर के लोगों के साथ भेदभाव करने को उचित ठहराने के पक्ष में तर्क दिया जा सकता था। वास्तव में आधुनिक विश्व ऐसा है कि एक विशेष समुदाय के हित की कल्पना सिर्फ उसकी अपनी सीमा में सीमित होकर नहीं की जा सकती है। हम अपनी आवश्यकता का मूल्यांकन दूसरों के हित के सन्दर्भ में करें एवं विचार करें कि हमारे कार्य करने और न करने से उसका दूरगामी प्रभाव दूसरों पर क्या होगा? जो अपने प्रियजनों के लिए भयभीत रहते हैं, उनकी आलोचना करना कठिन है। लेकिन बृहत समाज के कल्याण के लिए यदा-कदा थोड़ा संकट मोल लेना जरूरी होता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि विश्व में पर्यावरण के साथ आर्थिक समस्या एवं महामारी से एक साथ मिलकर लड़ा जाय। इन समस्याओं से न तो एक अकेला व्यक्ति या न ही पूरा राष्ट्र अपनी सारी समस्याओं को अपने-आप सुलझा सकता है। वस्तुतः हमें एक-दूसरे की आवश्यकता है।

निष्ठा और नैतिकता :

दलाई लामा यहाँ हर व्यक्ति को अपनी वर्तमान जीवन पद्धति को त्यागकर कोई नया नियम या विचारधारा अपनाने का सुझाव नहीं दे रहे हैं बल्कि उनका कहना है कि हर व्यक्ति अपनी जीवन पद्धति को बरकरार रखते हुए, स्वयं में परिवर्तन ला सकता है, बेहतर बन सकता है, अधिक करूणाशील एवं सुखी व्यक्ति हो सकता है। किसी छोटे कार्य में लगे हुए व्यक्ति का समाज के कल्याण में योगदान एक चिकित्सक, शिक्षक, भिक्षु अथवा भिक्षुणी से तुच्छ नहीं है। सभी मानवीय प्रयास में महान एवं भव्य होने की क्षमता है। एक व्यवसायी के लिए उचित है कि अपने हर उद्यम में दूसरों के हित को ध्यान में रखे। एक वकील के लिए यह उचित है कि वह अपनी निपुणता का उपयोग अन्याय का विरोध करने के लिए करे। अगर आप टपक रहे नल के पास से गुजर रहे हों तो आप उसे बंद कर दें। अगर आपको व्यर्थ में बिजली का बल्ब जलता दिखाई दे तो उसे बन्द कर दें। अगर आप एक धार्मिक व्यक्ति हैं और कल आप किसी अन्य धर्म के अनुयायी से मिलते हैं तो आप उनके प्रति वही आदर प्रदर्शित करें जो आप उससे स्वयं के लिए आशा करते हैं। अथवा अगर आप एक वैज्ञानिक हैं और आप देखते हैं कि आपका अनुसन्धान दूसरों की हानि कर सकता है तो फिर अपनी जिम्मेदारी समझते हुए ऐसे कार्य को रोकें।

मैं इससे ज्यादा निष्ठा अथवा प्रतिबद्धता के लिए नहीं कर रहा हूँ। हमारी एक ही दुनिया में ऐसे स्थल हैं, जहाँ लोग बचे हुए भोजन को फेंक देते हैं, जबकि उनके निकट हमारे साथी मनुष्यों और निर्दोष बच्चों को कूड़े में से खाना ढूँढना पड़ता है एवं कई को भूखे रहना पड़ता है। यद्यपि समृद्ध लोगों की विलासिता में कोई बुराई नहीं है। संभव है, उन्होंने धनोपार्जन गलत तरीके से नहीं किया हो और वे अपना ही पैसा खर्च कर रहे हैं, तो भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि ऐसा करना व्यर्थ है और धन को बर्बाद करना है। सुख की कामना में एवं दुःख से बचने की इच्छा में हम सभी समान हैं। हम सभी को सुखी रहने का समान अधिकार है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि हमें बिना अति किये यथासंभव निष्ठावान जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

समाज एवं नैतिकता :

समाज में नैतिकता के लिए शिक्षा एवं संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। साथ ही हमारा पर्यावरण, राजनीति एवं आर्थिक नीति के भी योगदान को नकारा नहीं जा सकता। दलाई लामा कहते हैं कि बच्चे मानवता की सबसे बहुमूल्य संपत्ति होते हैं। उनका नैतिक दृष्टिकोण उनके पालन-पोषण पर निर्भर करता है। अतः यह महत्त्वपूर्ण है कि हम उन्हें उचित शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लें। सामान्यतः आधुनिक शिक्षा-प्रणाली नैतिक विषयों की चर्चा को अनदेखा करती है। यह शायद सोच-समझकर नहीं किया गया है बल्कि यह एक वास्तविक ऐतिहासिक घटनाक्रम का उपफल है। धर्म निरपेक्ष शिक्षा-प्रणाली की स्थापना ऐसे समय हुई थी, जब धार्मिक संस्थाएँ सम्पूर्ण समाज में काफी प्रभावशाली थीं। क्योंकि नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को तब भी और अब भी धर्म के क्षेत्र की परिधि के अन्दर समझा जाता था, यह माना जाता था कि बच्चों की शिक्षा का यह भाग उनके धार्मिक पालन-पोषण के द्वारा सम्पन्न हो जाएगा। यह धारणा तब तक सफल रही जब तक धर्म का प्रभाव क्षीण नहीं होने लगा। लेकिन यद्यपि इसकी आवश्यकता अभी भी है, नैतिकता की शिक्षा बच्चों को नहीं मिल रही है। इसीलिए हमें बच्चों में मूलभूत मानवीय आदर्शों के विकास के लिए प्रयास जरूर करना चाहिए। इसके लिए पारिवारिक वातावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि इसे हम अपने आचरण के द्वारा ही सीखा सकते हैं। अगर घर में करूणा एवं स्नेहपूर्ण देखभाल के वातावरण का अभाव है, बच्चों की देखभाल ठीक से नहीं किया जाय तो उसका बच्चों पर दुष्परिणाम आसानी से देखा जा सकता है। बच्चे असहाय एवं असुरक्षित अनुभव करते हैं एवं उनका चित्त अक्सर उत्तेजित रहता है। इसके विपरीत अगर बच्चों को निरन्तर स्नेह एवं सुरक्षा मिलती है तो वे प्रसन्न रहते हैं एवं उनका अपनी योग्यता पर अधिक विश्वास होता है। उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और हम पाते हैं कि वे सिर्फ अपने ही नहीं बल्कि दूसरे के भी हित का ख्याल रखते हैं। घर का वातावरण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बच्चे अपने माता-पिता से सकारात्मक एवं नकारात्मक

व्यवहार सीखते हैं। दलाई लामा आगे कहते हैं कि बच्चे नैतिक आचरण के बारे में जो विद्यालय में सीखते हैं उसके अभ्यास की जरूरत है। इसमें शिक्षकों का विशेष उत्तरदायित्व है। वे अपने व्यवहार से ही बच्चों पर जीवन-भर के लिए अपना अमिट छाप छोड़ सकते हैं। अगर उनका व्यवहार अनुशासित, सैद्धांतिक एवं करूणामय है तो उनकी शिक्षा बच्चों के चित्त पर अच्छा छाप छोड़ती है। ऐसा इसलिए कि एक अध्यापक के द्वारा अच्छी प्रेरणा से दी गई शिक्षा बच्चे के मन पर गहराई से प्रभाव छोड़ती है।

दलाई लामा आगे कहते हैं कि बच्चों के मन को मूलभूत मानवीय मूल्यों के महत्त्व की ओर जागृत करने के लिए उत्तम यह होगा कि समाज की समस्याओं को सिर्फ नैतिक अथवा धार्मिक विषय-वस्तु के रूप में प्रस्तुत न करें। बल्कि इस बात पर जोर देना आवश्यक होगा कि यह हमारे 'अस्तित्व' का प्रश्न है। दूसरा छात्रों को एक विवादास्पद विषय देकर उस पर बहस करवाना बच्चों को अपने मतभेदों को अहिंसात्मक ढंग से सुलझाने की कला को सिखाने का उत्तम तरीका है। उन्होंने जनसंचार को शिक्षा के बाद दूसरा सबसे शक्तिशाली साधन माना है जो विश्व में खुशहाली एवं शान्ति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आज अखबार एवं किताब, रेडियो, फिल्म एवं टेलीविजन मिलकर व्यक्ति पर ऐसा प्रभाव डालते हैं, जिसकी सौ साल पहले कल्पना करना भी असंभव था। इसीलिए संचार माध्यमों को नैतिक रूप से यह जिम्मेदारी बनती है कि बहुत सारी हिंसात्मक घटनाएँ हो रही है, जिनकी संख्या निश्चय ही बहुत कम है, के साथ विश्व-भर में जो अरबों करूणात्मक कार्य हो रहे हैं, उन्हें जरूर सामने लाना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि शिक्षा एवं जनसंचार माध्यमों- दोनों का पर्यावरण के प्रति विशेष उत्तरदायित्व है। इन्हीं दोनों माध्यमों से ही लोगों में इसके प्रति जागरूकता फैलाकर इसे बचाया जा सकता है। क्योंकि हम मनुष्य ही एक ऐसे प्राणी हैं जिनमें पृथ्वी अथवा पर्यावरण को विनाश करना अथवा रक्षा करना जानते हैं। हमें उद्योग अथवा अन्य चीजों के लिए ऐसे तरीके ढूढने चाहिए जिससे इसका विनाश न हो। समाज में नैतिकता के लिए किसी देश की राजनीति और आर्थिक नीति का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आर्थिक असमानता की समस्या सारी मानवजाति के सामने बड़ी चुनौती होती है। लेकिन विश्व की आर्थिक स्थिति जैसे-जैसे ठीक हो रही है, वैसे-वैसे सभी देश परस्पर आश्रित हो रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप हर राष्ट्र कम या ज्यादा अन्य राष्ट्रों पर निर्भर होता जा रहा है। पर्यावरण की तरह, आधुनिक अर्थव्यवस्था को भी सीमा का बोध नहीं रहा। यहाँ तक कि जो राष्ट्र खुले रूप से एक-दूसरे के शत्रु हैं, उन्हें भी विश्व के संसाधनों के प्रयोग में मिल-जुलकर कार्य करना पड़ रहा है। वास्तव में नई सहस्त्राब्दि की चुनौती है कि ऐसे उपाय ढूढ़ा जाय जिनसे सभी राष्ट्र एक-दूसरे के सहयोग प्राप्त करें, जिसमें मानवीय विविधता को स्वीकार किया जाय एवं सबके आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों का आदर हो।

विश्व शांति, निःशस्त्रीकरण एवं नैतिकता :

दलाई लामा कहते हैं कि हम इतिहास को देखते हैं तो पाते हैं कि समय के साथ क्रूरता एवं अत्याचार पर शांति, न्याय एवं स्वतंत्रता के लिए मानवीय प्रेम की ही विजय होती है। हिंसा से हिंसा होती है एवं हिंसा का एक ही परिणाम है- दुःख। जब हम व्यक्तिगत रूप से स्वयं का निःशस्त्रीकरण करते हैं- नकारात्मक विचार एवं भावनाओं का प्रतिकार कर एवं सकारात्मक गुणों का विकास कर- तब हम बाहरी निःशस्त्रीकरण की परिस्थिति का निर्माण करते हैं। वास्तव में विश्व में सच्ची स्थायी शांति तभी संभव होगी, जब हममें से हर एक व्यक्ति आंतरिक प्रयास करेगा। क्लेशात्मक भावनाएँ लड़ाई में ऑक्सीजन का कार्य करती हैं। इसलिए यह अनिवार्य है कि हम दूसरों के प्रति संवेदनशील रहें, सबके सुख पर समान अधिकार का सम्मान करें, कुछ ऐसा न करें जिससे दूसरों का कष्ट बढ़े। हमें आवश्यकता है कि हम उन लक्ष्यों को स्थापित करें जिनकी सहायता से हम धीरे-धीरे निःशस्त्रीकरण कर सकते हैं और फिर हमें ऐसा करने के लिए राजनैतिक संकल्प को विकसित करना होगा।

धर्म एवं नैतिकता :

जब नैतिकता एवं मूल्यों की बात होती है तो इसे ऐसे लिया जाता है जैसे कोई आउटडेटेड बात कह दी गई हो। इसे धर्म के साथ भी गडमड कर दिया जाता है। यद्यपि धर्म के नियम ही नैतिक मूल्य हैं, जिनका स्वतंत्र अस्तित्व भी संभव है। दलाई लामा जी भी कहते हैं कि कोई व्यक्ति भले ही धर्म का अभ्यास करे या ना करे किन्तु स्नेह एवं करूणा, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता, विनम्रता आदि आध्यात्मिक गुण अनिवार्य हैं। धार्मिक विश्वास अपने-आप में, नैतिक आचरण और सुख की पूर्व शर्त नहीं है। यद्यपि धर्म में मानवता की भलाई करने की अपार क्षमता है। यदि उचित ढंग से इसका पालन किया जाए तो मानव के सुख की स्थापना के लिए यह अत्यंत प्रभाव साधन है। विशेषकर यह लोगों में एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व की भावना एवं स्वयं में नैतिक अनुशासन के विकास को प्रोत्साहित करने में मुख्य भूमिका निभा सकता है। साथ ही सभी धर्मों के बीच सद्भाव के लिए यह जरूरी है कि हम दूसरों की धर्म परम्परा के मूल्य के प्रति आदर भाव रखें। विभिन्न धर्म परम्पराओं के बीच संवाद स्थापित कर मतभेदों को दूर किया जा सकता है। यदि हम समझदारी के साथ मतभेद दूर कर पायेंगे तो पायेंगे कि सभी धर्मों एवं परम्पराओं में एक ही तरह की आध्यात्मिक प्रेरणा एवं नैतिक मार्गदर्शन की स्रोत मौजूद है। यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि दर्शन एवं अन्य भिन्नताओं के बावजूद विश्व के सभी प्रधान धर्मों का प्रयास व्यक्ति को अच्छा मनुष्य बनाने से है। सभी धर्म मैत्री एवं करूणा, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता, विनम्रता इत्यादि पर जोर देते हैं। दलाई लामा जी कहते हैं कि अन्य धर्मों के अनुयायियों के साथ संवाद करने के साथ यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है कि वह अपने

धर्म के उपदेश को अपने दैनिक जीवन में कार्यान्वित करे। यद्यपि धर्म का अभ्यास करने का अर्थ सिर्फ "मैं आस्था रखता हूँ" से ज्यादा है। केवल मंदिर अथवा गिरिजाघर या पुण्य स्थान जाने से आगे है। अगर यह चित्त में प्रवेश नहीं करे और केवल बुद्धि के स्तर पर ही रह जाय तो इसका उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। हम सच्चे मन से स्वयं में आध्यात्मिक परिवर्तन लाने का जो प्रयास करते हैं वही हमें धर्म का सच्चा साधक बनाता है। दलाई लामा आगे कहते हैं कि धर्म परम्पराओं में विविधता बहुत ही समृद्ध एवं लाभकारी है। इसलिए इसकी कोई जरूरत नहीं है कि हम यह कहने का उपाय ढूँढे कि अंततः सभी धर्म एक ही हैं। उनमें समानता यह है कि वह सभी नैतिक अनुशासनों के प्रसंग में स्नेह एवं करूणा की परम आवश्यकता पर जोर देते हैं। लेकिन ऐसा कहने का तात्पर्य यह नहीं कि वे सभी वास्तव में एक ही हैं। यही कारण है कि दलाई लामा किसी 'सर्वोत्तम' अथवा नवीन 'विश्वधर्म' की वकालत नहीं करते हैं। ऐसा करने का परिणाम यह होगा कि हम विभिन्न धार्मिक परम्पराओं के विशिष्ट लक्षणों को खो देंगे। किसी खास विचारधारा अथवा धर्म का दामन थाम लेने मात्र से अथवा धर्म परिवर्तन कर लेने से ही कोई व्यक्ति ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा दयालु, ज्यादा अनुशासित अथवा अच्छे हृदय वाला मनुष्य नहीं बन जाता। बल्कि जरूरी यह है कि व्यक्ति सद्गुण, करूणा एवं आत्मनियंत्रण के बल पर स्वयं में सकारात्मक बदलाव लाने का प्रयास करे। वास्तव में सभी धर्मों अथवा विचारधाराओं की अच्छी बातें, जो मानवता के लिए उपयुक्त अथवा संगत हों, उसे ग्रहण एवं आत्मसात करके ही एक अच्छे समाज का निर्माण किया जा सकता है।

दलाई लामा अंत में कहते हैं कि मन में रखने वाली बात यह है कि धर्म का सम्पूर्ण उद्देश्य है स्नेह एवं करूणा, धैर्य, सहनशीलता, विनम्रता, क्षमाशीलता इत्यादि को बढ़ावा देना। अगर हम इनकी उपेक्षा करते हैं तो फिर धर्म परिवर्तन से कोई लाभ नहीं होगा। इसी प्रकार से हम भले ही अपने धर्म में उत्साह से विश्वास करते हों, लेकिन हमें इससे कुछ हासिल नहीं होगा, अगर हम इन गुणों का दैनिक जीवन में अमल नहीं कर सके। ऐसा साधक उस रोगी से बेहतर नहीं है जिसे कोई जानलेवा रोग हो और जो सिर्फ चिकित्सा के अनेक ग्रंथ पढ़ता हो लेकिन उनमें बताए उपचार को अमल करने में असफल रह जाये।

निष्कर्ष : एक विनम्र आग्रह

दलाई लामा कहते हैं कि हमें अपने जीवन के अंत में पछताना न पड़े इसके लिए सबसे उत्तम उपाय है, वर्तमान समय में हमारा व्यवहार उत्तरदायित्वपूर्ण और दूसरों के लिए करूणामय हो। वास्तव में ऐसा करना हमारे हित में है क्योंकि हमारा सुख दूसरों के सुख के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यदि हमारा समाज दुःख में होता है तो हम दुःखी रहते हैं। इस बात से नकारा नहीं जा सकता है कि हमारे हृदय एवं मन में दूसरों के प्रति जितना ही द्वेष होगा हम उतना ही दुःखी होते हैं। हमारे जीवन को अर्थपूर्ण बनाने वाली

चीजों में करूणा का प्रधान स्थान है। करूणा समस्त स्थायी सुख और आनन्द का स्रोत है। करूणा अच्छे दिल की नींव है, एक ऐसे व्यक्ति का हृदय जो दूसरों को हित करने की इच्छा से कार्य करता है। सबके प्रति करूणा से, स्नेह से, ईमानदारी से, सच्चाई एवं न्याय के साथ व्यवहार कर हम अपना ही कल्याण सुनिश्चित करते हैं। इस बात में मंदिर, गिरिजाघर, मस्जिद की कोई जरूरत नहीं है और न ही जटिल दर्शनों, सिद्धांतों या मतों की। हमारा अपना हृदय, अपना मन ही मंदिर है। करूणा हमारा सिद्धांत है। दूसरों के लिए स्नेह, दूसरों के अधिकार एवं मर्यादा का आदर चाहे वे जो भी हों, अंततः ये ही हमारी आवश्यकता है। जब तक हम लोग इन बातों को अपने दैनिक जीवन में अभ्यास नहीं करते हैं, तब तक इसका कोई महत्त्व नहीं कि हमने क्या सीखा या क्या नहीं सीखा, हम बुद्ध में विश्वास करते हैं या ईश्वर में या किसी और धर्म के अनुयायी हैं या किसी भी धर्म को नहीं मानते हैं। यदि हममें दूसरों के प्रति करूणा है और हमारा आचरण उत्तरदायित्व की भावना से नियंत्रित है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि हम सुखी होंगे। दलाई लामा प्रश्न करते हैं कि यदि सुखी रहना इतना आसान है तो इसकी प्राप्ति इतनी कठिन क्यों है? इसके जवाब में वे लिखते हैं कि दुर्भाग्य से ज्यादातर लोग खुद को करूणावान तो समझते हैं, लेकिन अपने नकारात्मक विचार एवं भावनाओं का सामना न करके उन्हें अनदेखा करते हैं। हम दूसरों के कल्याण में सहायक होने के अवसर पाकर खुश होने के बदले जहाँ तक हो सकता है केवल अपने आनन्द में ही लिप्त रहते हैं। हम बहुत व्यस्त होने के बहाने से दूसरों की मदद करने से कतराते हैं। हम हर काम का हिसाब लगाते हुए बायें और दायें दौड़ते रहते हैं। हम एक काम करते हैं लेकिन चिंता करते हैं कि अगर कुछ और आ पड़ा तो हमें कुछ और करना चाहिए। लेकिन इन सबके चक्कर में हम चित्त के सबसे अपरिष्कृत और निम्न स्तर पर ही सीमित रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त, दूसरों की आवश्यकता पर ध्यान नहीं देने के कारण, हम अंततः उनकी हानि कर बैठते हैं। हम खुद को बुद्धिमान समझते हैं, लेकिन अपनी योग्यता का गलत उपयोग करते हैं।

दलाई लामा आगे लिखते हैं कि स्थायी संतुष्टि सिर्फ वस्तुओं का संकलन करने से नहीं प्राप्त हो सकती है। सांसारिक वस्तुओं पर ध्यान देने से आवश्यक बातें हमसे छिपी रहती हैं। अगर हम ऐसा करते हुए वास्तव में सुखी रहते तो ऐसे जीना बिल्कुल ठीक होता। लेकिन ऐसा होता नहीं है। बहुत हुआ तो हमलोग अपना जीवन बिना किसी बड़ी परेशानी के काट लेते हैं। लेकिन जब कठिनाइयाँ आक्रमण करती हैं, जो अवश्य होंगी, तब हम उनके लिए तैयार नहीं होते हैं। हम पाते हैं कि हम उनका सामना नहीं कर सकते। हम निराश और दुःखी होते हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम अपना जीवन यथासंभव अर्थपूर्ण (Meaningful) बनाएँ। इसमें कोई रहस्य नहीं। हमें दूसरों के कल्याण की चिंता से कार्य करने से ज्यादा कुछ नहीं है। ईर्ष्या को त्याग दें, दूसरों पर विजय पाने की इच्छा को छोड़

दें। इसके बदले, दूसरों का कल्याण करने का प्रयास करें। सरल बनें। निष्पक्ष होने का प्रयास करें। सभी के साथ ऐसा बर्ताव करें जैसे कि वे आपके घनिष्ठ मित्र हों। यदि हम इस कार्य को ईमानदारी और निरन्तरता के साथ करेंगे तो धीरे-धीरे अपनी आदतों और अपनी प्रवृत्तियों में सार्थक परिवर्तन ला सकते हैं जिससे हम अपने संकीर्ण स्वार्थ के बारे में कम सोचेंगे और दूसरों के लिए ज्यादा। ऐसा करने में हम पाएंगे की शांति और सुख का आनन्द स्वयं ही ले रहे हैं। यदि आप किसी भी कारणवश (इच्छा, अज्ञान अथवा मूर्खता) दूसरों का कल्याण अथवा उसके जीवन को बेहतर बनाने के लिए कुछ नहीं कर सकते हैं तो कम-से-कम उसको नुकसान न पहुँचाए। वास्तव में जब हम दूसरों को नुकसान अथवा अहित करने का प्रयास करते हैं तो स्वयं का अहित सबसे पहले होता है, भले ही मूर्खतावश उसका एहसास हमें न होता हो। इस पुस्तक का अंत दलाई लामा ने अपनी बहुत ही सुन्दर एवं प्रेरणादायी कविता से किया है-

'काश मैं ऐसा बन पाऊँ हर क्षण,
अभी और हमेशा के लिए
असुरक्षित का रक्षक बनूँ
पथ भटके को पथ दिखलाऊँ
उनका बनूँ जहाज जिन्हें सागर पार जाना है
नदी पार जाने वालों का पुल बन जाऊँ
संरक्षक उनका बनूँ जो संकट में हैं
अंधकार में फंसे जनों का दीप बनूँ
शरणस्थली बनूँ उनकी जो शरणरहित हैं
और सभी जरूरतमंदों के लिए सेवक बनूँ।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

- 'नैतिकता का सुख', परम पावन दलाई लामा, अनुवादक- तेंज़िन रवि वर्मा, भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2019.

●●●

तुलसी की ब्रह्म-भावना का व्यावहारिक मूल्य

विचित्रसेन गुप्त*

ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष दर्शनशास्त्र जैसे गूढ़ विषय के विवेच्य माने जाते हैं और सामान्यतः इन्हें आमजन के बुद्धि-विवेक से परे विद्वतजनों के वाग्विलास के रूप में ही देखा और परखा जाता है। लेकिन, गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस स्वानुभूति एवं आत्मीयता के साथ इन अनुभवातीत सत्ता को अपने साहित्य में निरूपित किया है वह सर्वसाधारण के लिए न केवल सामाजिक और व्यावहारिक मूल्यों के दृष्टिकोण से विशिष्ट एवं मौलिक है बल्कि ब्रह्मत्त्व का ईश्वरत्त्व में और देवत्त्व का पुरुषत्त्व में अभूतपूर्व रूपांतरण लौकिक-व्यावहारिक मूल्यों के अनुरूप भी है। तुलसी की ब्रह्म-भावना इससे अछूती नहीं है। वस्तुतः तुलसी का ब्रह्म दार्शनिक कलेवर में आवृत्त होते हुए भी पूर्णतया व्यावहारिक मानवीय मूल्यों- दया, करुणा, कृपा आदि से संपृक्त है।

भारतीय संस्कृति और परम्परा में 'ब्रह्म' विवेचन वैदिक काल से ही व्यवस्थित रूप में होता चला आ रहा है। ब्रह्म-भावना तुलसी के लिए कोई नई संकल्पना या अवधारणा नहीं है। ब्रह्म-भावना को अपनी अपूर्व साधना से जनमानस की भावना बना देना ही तुलसी की मौलिकता और नवीन दृष्टि है जिसका सार्वदेशिक सामाजिक और व्यावहारिक मूल्य है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने साहित्य में स्वतंत्र रूप से 'ब्रह्म' शब्द का विवेचन किया है। उनकी समस्त कृतियों में भगवान राम के ब्रह्म-रूप की सर्वतोभावेन प्रतिष्ठा का प्रयास निहित है। सत्य तो यह है कि 'राम' ही गोस्वामी जी के लिए सर्वस्व हैं। गोस्वामीजी द्वारा उल्लिखित ब्रह्म विषयक विचार उनकी अमर कृति श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली तथा दोहावली में मुख्य रूप से देखे जा सकते हैं।

ब्रह्म की अवधारणा

'ब्रह्म' शब्द की निष्पत्ति 'बृह्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है- 'बृहत्'। 'बृहत्' शब्द का सामान्य व्यावहारिक अर्थ 'बड़ा' होता है। 'ब्रह्म' शब्द वृद्ध्यर्थक 'बृह्' धातु से निष्पन्न होने के कारण महत्व की भी अभिव्यंजना और अभिधान करता है। इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से ब्रह्म का अर्थ 'महत्' अर्थात् व्यापक तथा महत्त्व वाला होने के कारण चेतन भी बनता है। सर्वव्यापी तत्त्व अचेतन नहीं हो सकता, वह व्यापक चेतन ही होगा।

---

* **हिन्दी अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

अतः शंकर के अद्वैत मत के अनुसार चराचर सृष्टि इस व्यापक ब्रह्म चेतन[1] की ही अभिव्यक्ति है। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति[2] का भी अभिप्राय सबको प्रकाशित करने वाला व्यापक ब्रह्म से ही है।

तुलसीदासजी जब 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना'[3] कहते हैं तो वे ब्रह्म-राम के व्यापकत्त्व का ही निदर्शन करते हैं। उनकी उक्ति 'व्यापक व्याप्य अखंड अनंता'[4] भी भगवान राम के व्यापक एवं सर्वरूप होने का संकेत करती है। व्यापक पदार्थ में लिंगादि का अभाव होने के कारण वह अनुमान का विषय नहीं रहता। अतः वेदमात्र ही उसके ज्ञान में एकमात्र साधन हैं। प्रमाण के रूप में उक्त व्यापकता को अनुभवगम्य बनाने के लिए आत्मा जो कि निरूपाधिक, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है, उसे ब्रह्म[5] कहा गया है। व्यापकता की सिद्धि के लिए ही गोस्वामीजी ने जीव और जगत् से अभिन्न राम को ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित किया है।

ब्रह्म का लक्षण

बादरायण के ब्रह्मसूत्र का पहला सूत्र है- अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। अथ, अतः, ब्रह्म, एवं जिज्ञासा- इन चार शब्दों पर शंकराचार्य का भाष्य जिज्ञासा-भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें शंकराचार्य ने साधन-चतुष्टय तथा ब्रह्म-जिज्ञासा के स्वरूप का वर्णन किया है। ब्रह्म का लक्षण ब्रह्मसूत्र के दूसरे सूत्र में किया गया है जिसे जन्मादि-सूत्र कहा जाता है। यह सूत्र है- जन्माद्यस्य यतः (जन्मादि+अस्य+यतः)।

ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए, ऐसा प्रथम सूत्र में कहा गया है। शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म का लक्षण ''जन्माद्यस्य यतः''[6] है। इसके (जगत् के) जन्मादि जिससे होते हैं वह ब्रह्म है। जन्म अर्थात् उत्पत्ति है आदि में जिसके, वे जन्म आदि हैं। यहाँ ''जन्मादि'' में तद्गुहण-संविज्ञान ब्रहुब्रीहि समास है। इस समस्त पद का अर्थ है- जन्म, स्थिति और नाश। श्रुतिनिर्देश और वस्तुस्थिति की अपेक्षा से जन्म का पहले उपादान किया गया है। श्रुतिनिर्देश है- 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति... तद् ब्रह्म'[7] इस वाक्य में जन्म, स्थिति और लय का क्रमशः दर्शन होता है। ऐसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और नाश जिस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान कारण से होते हैं वह ब्रह्म है।

उपनिषद् में ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन मिलता है। अपर ब्रह्म को सगुण, सविशेष, सविकल्पक और सोपाधिक कहा गया है। इसी को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर समस्त विश्व का कर्ता, धर्ता, नियन्ता और आराध्य है। परब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निर्विकल्पक, निरूपाधिक, निष्प्रपंच, अनिर्वचनीय और अपरोक्षानुभूतिगम्य है।

ब्रह्म के दो लक्षण कहे गए हैं- (1) तटस्थ लक्षण तथा (2) स्वरूप लक्षण। तटस्थ लक्षण वस्तु के आगन्तुक और परिणामी धर्मों का वर्णन करता है जबकि स्वरूप लक्षण वस्तु के तात्त्विक स्वरूप को प्रकाशित करता है[8]। शंकराचार्य का मत है कि ब्रह्म का विचार दो दृष्टियों से किया जा सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् को सत्य माना जाता है और

ब्रह्म को इसका मूलकारण, सृष्टिकर्ता, पालक, संहारक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान कह सकते हैं। इसी रूप में उसे ईश्वर या सगुण ब्रह्म भी कहा जाता है। इसी रूप में ईश्वर की उपासना भी जाती है। जगत् कर्तृत्व ब्रह्म का स्वरूप लक्षण नहीं, केवल तटस्थ लक्षण है अर्थात् सृष्टि का कर्ता होना ब्रह्म का औपाधिक गुण है, वास्तविक स्वरूप नहीं। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म इस जगत् का उपादान कारण एवं निमित्तकारण दोनों है। यह जगत् ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नहीं। जगत् ब्रह्म की प्रतीति मात्र है, विकार या तात्त्विक परिवर्तन नहीं। ब्रह्म कूटस्थ नित्य है अतः उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन संभव नहीं है। माया या अविद्या के कारण ब्रह्म जीव व जगत् के रूप में प्रतीत होता है। अतएव, जगत्कारणता सगुण ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। सगुण ब्रह्म या ईश्वर इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सबका स्वामी है। यह सब कुछ ब्रह्म है- सर्वं खलु इदं ब्रह्म। गोस्वामीजी भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं- "जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि[9] एवं जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार"।

स्वरूप लक्षण

ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म[10]; (ब्रह्म सत्, चित् और अनन्त (आनन्द) है); विज्ञानमानन्दं ब्रह्म[11] (ब्रह्म चित् और आनन्द) है। श्रुतियाँ बार-बार ब्रह्म को नित्य सत्, शुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द बताती हैं। ब्रह्म त्रिकालबाध सत् है। जो सत् है वही चित् है और वही आनन्द है। सत् और चित् दोनों आनन्दान्तर्गत हैं। अतएव, आनन्द ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म के धर्म या गुण नहीं हैं। अपितु, ये ब्रह्म के आवश्यक और अपृथक् गुण भी नहीं हैं। ये तीन नहीं हैं, एक ही हैं। बुद्धि इनको तीन भिन्न गुण मानती है। किन्तु तात्त्विक रूप में ये एक हैं। यह ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म और इनमें कोई भेद नहीं है। जो सत् है, वही चित् है, वही आनन्द है, वही ब्रह्म है। गोस्वामीजी ने भी ब्रह्मस्वरूप भगवान राम के उक्त लक्षण- राम सच्चिदानन्द दिनेसा[12] य सोइ सच्चिदानन्द घन रामा[13] का बहुधा उल्लेख किया है। ब्रह्म के दो लक्षण के लिए विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक प्रो. टी.आर.वी. मूर्ति का- "Two definition of Brahman" नामक लेख द्रष्टव्य है जिसमें ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण में उक्त दोनों लक्षणों का अत्यन्त तार्किक विश्लेषण किया गया है।

वेद, उपनिषद, पुराण एवं भारतीय दर्शन के अंतर्गत ब्रह्म का यथोचित निरूपण और निदर्शन किया गया है। वेदान्तर्गत ब्रह्म को परम तत्त्व एवं त्रैलोक्य का स्वामी कहा गया है[14]। उपनिषदों में ब्रह्म को अचल, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, ज्ञानस्वरूप तथा आदि और अन्त कहा गया है। वह अविनाशी तथा दूर से दूर तथा निकट से निकट सभी में व्याप्त है[15]। उपनिषदों की भाँति ही पुराणों में ब्रह्म का विवेचन प्राप्त होता है। इसमें ब्रह्म को अजन्मा, नित्य, अक्षय, अव्यय, एकरूप तथा हेय गुणों से रहित कहा गया है। वह सर्वरूप

तथा अविनाशी है[16]। ब्रह्मसूत्र के अनुसार इसे कारणरहित तथा आत्मा का भी अन्तरात्मा[17] कहा गया है। ब्रह्म की सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यह स्वयं सिद्ध है, स्वप्रकाश है[18]।

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म का स्वरूप

अद्वैत दर्शन में इसे एक निर्विकल्प, निरुपाधि तथा निर्विकार सत्ता कहा गया है। ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है। वह सत्, चित्त तथा आनन्द स्वरूप है और यही ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। वेदान्त में आनन्दरूप की अभिव्यक्ति मिलती है। रामानुज ब्रह्म को चित् (जीव) और अचित् (जड़ जगत्) दोनों तत्त्वों से युक्त मानते हैं। ब्रह्म एकमात्र सत्ता है। प्रलय की अवस्था में भी जो ब्रह्म वर्तमान रहता है उसे कारण ब्रह्म तथा जो सृष्टि में स्वयं को प्रकट करता है वह कार्य ब्रह्म है। शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्म निराकार, सच्चिदानन्द तथा सर्वसमर्थ है। श्रीवल्लभाचार्य जी के अनुसार ब्रह्म सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। वह व्यापक, नाशरहित और सर्वशक्तिमान है। परब्रह्म स्वतंत्र, सर्वज्ञ, अद्वैत, सर्वत्रव्याप्त, अनन्तरूप, अविभक्त अनादि, जगत का आधार, मायापति तथा आनन्दस्वरूप है। ब्रह्म निर्दोष तथा सर्व निर्दोष (अप्राकृत) गुणों से युक्त है। परमब्रह्म ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य - इन छः अप्राकृत धर्मों से व्यक्त होता है। इस प्रकार ब्रह्म की चार अवस्थाएं[19] हैं : (1) परब्रह्म- शुद्ध सत्, चित्तस्वरूप, सत्य, अनन्त, ज्ञानस्वरूप। (2) ईश्वर- सृष्टिकर्ता, पालक, संहारक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि। (3) हिरण्यगर्भ तथा (4) वैश्वानर।

राम का ब्रह्म स्वरूप

'राम' शब्द का तात्पर्य है- रमन्ति इति रामः अर्थात् जो रोम-रोम में रहता है अथवा जो समस्त ब्रह्माण्ड में रमण करता है, वही राम है। इसी प्रकार कहा गया है कि- रमते योगिनो यस्मिन् स रामः अर्थात् योगीजन जिसमें रमण करते हैं, वही राम हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी कहा गया है कि- रामशब्दोविश्ववचनोमश्वापीश्वर वाचकः अर्थात् 'रा' शब्द परिपूर्णता का बोधक है और 'म' परमेश्वर वाचक है। चाहे निर्गुण ब्रह्म हो अथवा दशरथ सुत राम हो, विशिष्ट तथ्य यह है कि राम शब्द एक महामंत्र है। तुलसीपीठ के अधीश्वर जगद्गुमरु रामभद्राचार्यजी ने 'राम' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'रा' राष्ट्र का तथा 'म' मंगल का वाचक है अर्थात् जिससे राष्ट्र का मंगल हो, वही राम है। इस व्याख्या से भी राम की व्यापकता और ब्रह्मत्त्व सिद्ध है।

'राम' व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के हैं और समस्त ब्रह्माण्ड उनका है। 'राम' पर जितना अधिकार संत-महात्माओं का है, उतना ही एक सामान्य गृहस्थ का भी। राम जीवन का मंत्र है। राम गति का नाम है, निरन्तरता का नाम है। वस्तुतः राम भारतीय लोक-जीवन में चिरन्तन महाओज[20] का नाम है। तुलसी द्वारा स्थापित ब्रह्म-राम का इससे बड़ा व्यावहारिक मूल्य भला और क्या हो सकता है..।

मानव जीवन के व्यावहारिक मूल्यों के संस्थापन के क्रम में गोस्वामीजी ने मध्ययुगीन सभी विचारधाराओं एवं साधना पद्धतियों के सर्वग्राह्य पक्षों के समन्वित स्वरूप के माध्यम से राम में 'ब्रह्मत्त्व' तथा 'ईश्वरत्त्व' का एकीकरण कर दिया है। वस्तुतः तुलसीदासजी का धर्म 'रामधर्म'[21] है। उन्होंने भगवान राम में ब्रह्म के समस्त लक्षण देखे हैं अर्थात् उनके पूर्ण ब्रह्म की भावना राम में ही द्रष्टव्य है।

श्रीरामचरितमानस में शिव-पार्वती के संवाद से राम के ब्रह्म स्वरूप पर प्रकाश पड़ना प्रारंभ होता है। पार्वतीजी का यह प्रश्न कि- परमार्थ तत्त्व अर्थात् ब्रह्म के ज्ञाता और वक्ता मुनिगण श्रीरामचन्द्रजी को अनादि ब्रह्म कहते हैं। शेष, सरस्वती, वेद, और पुराण भी श्रीराम का गुणगान करते हैं। आप भी अहर्निश राम-राम जपा करते हैं। ये राम अयोध्या के राजा के पुत्र हैं? अथवा अजन्मा, निर्गुण और अगोचर[22] कोई और राम हैं? यदि वे राज-पुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? और यदि ब्रह्म हैं तो स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गई? वस्तुतः यही तुलसी की ब्रह्म-भावना का उत्स है। सतीजी की आशंका कि जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित[23] है, और जिसे वेद भी नहीं जानते क्या वह भला देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?

प्रत्युत्तर में सतीजी की शंका का समाधान करते हुए शंकरजी कहते हैं कि ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मल चित्त से जिनका ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र नेति-नेति[24] कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं; उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी मायापति, नित्य परम स्वतंत्र ब्रह्मरूप भगवान श्रीरामजी ने अपने भक्तों के हितार्थ अपनी इच्छा से रघुकुल के मणिरूप में अवतार लिया है। इस संबंध में ध्यातव्य है कि ब्रह्म तत्त्वतः निर्गुण और निर्विशेष है। अतः अलक्षण है। इन्द्रिय, बुद्धि-विकल्प और वाणी द्वारा ग्राह्य न होने के कारण उसे अगोचर या अतीन्द्रिय, निर्विकल्प और अनिर्वचनीय कहा जाता है। समस्त अनुभव का अधिष्ठान होने के कारण ब्रह्म स्वतःसिद्ध और स्व-प्रकाश आत्मचैतन्य है। उसका वर्णन निषेधामुख[25] ही किया जा सकता है। 'नेति नेति' से ब्रह्म के गुणों का, विशेषणों का, निर्वचनों का निषेध होता है, स्वयं ब्रह्म का नहीं।

परमब्रह्म होकर भी भगवान श्रीराम ने नर रूप क्यों धारण किया? इसका कारण बताते हुए गोस्वामीजी विनय-पत्रिका में कहते हैं कि समस्त पृथ्वी का भार हरने के लिए प्रभु ने ऐसा किया है-

भूमिभर-भार-हर प्रगट परमात्मा, ब्रह्म नररूपधर भक्त हेतु।

-वि. प., 52/7

यह तुलसी की व्यावहारिक मूल्य दृष्टि ही है जो ब्रह्म को नररूप में अवतरित होने का औचित्य दर्शाती है। तदन्तर, तुलसी ने पार्वतीजी की शंका के निवारण के लिए भगवान शिव के मुख से जो कहलवाया है, वह राम के ब्रह्म-स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त

है। ध्यातव्य है कि रामतापनीय उपनिषद् और अध्यात्म रामायण में कई जगहों पर समानता है। साम्प्रदायिक रामायणों में अध्यात्म रामायण अत्यधिक प्रतिष्ठित है। इस कृति में राम के परमब्रह्म होने के पहली बार प्रमाण मिलते हैं। प्रायः विद्वान अध्यात्म रामायण को रामानुज सम्प्रदाय के श्रीरामानन्द की रचना मानते हैं। तत्त्वतः अध्यात्म रामायण निर्विशेष अद्वैतवाद की प्रतिपादक कृति है जिसका विषयवस्तु रामानन्द से भिन्न है। तुलसीदासजी की रामकथा का आधार अध्यात्म रामायण ही है। श्रीरामचरितमानस तथा अध्यात्म रामायण में पार्वतीजी की ब्रह्म के बारे में शंका संबंधी विषय एवं उसके निवारणार्थ प्रयुक्त व्यावहारिक मूल्यों को दर्शाने वाली तर्क-प्रणाली[26] स्तुतः एक जैसी है।

वस्तुतः गोस्वामीजी द्वारा वर्णित भगवान राम का बह्म स्वरूप दार्शनिक विचारों पर आधारित है। राम के ब्रह्म-स्वरूप के निरूपण में समकालीन दार्शनिक मतों का प्रभाव सरलतापूर्वक परिलक्षित किया जा सकता है। विवेक चूड़ामणि में कहा गया है कि ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप तथा अनंत है। यह ब्रह्म माया से आवृत्त रहने से सगुण बन जाता है। भक्ति के साधन से सगुण ब्रह्म की उपासना करने पर उपाधिरहित निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार सुलभ होता है-

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतःसिद्धम्।
नित्यानन्दैकरसं प्रत्यगभिन्नं निरन्तरं जयति।।

-विवेक-चूड़ामणि, 227

गोस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत राम का ब्रह्म स्वरूप अत्यंत विलक्षण है। उन्होंने भगवान श्रीराम के परम ब्रह्म के रूप में अवतरित होने की पुष्टि अनेक प्रसंगों में की है। राम परम ब्रह्म हैं। वे व्यापक, अकल (निरवयव), इच्छा रहित, अजन्मा और निर्गुण हैं। उनका न तो कोई नाम है और न ही कोई रूप[27]। वे भगवान अपने भक्तों के लिए नाना प्रकार के अनुपम चरित्र करते हैं-

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नानाविध करत चरित्र अनूप।।

ब्रह्म (राम) के संबंध में गोस्वामीजी कहते हैं कि योगी लोग जिनके लिए क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर योगसाधन करते हैं वे सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणों की राशि हैं और उन्हें न तो मनसहित वाणी से और न ही तर्क से[28] जाना जा सकता है। उनका सभी लोग केवल अनुमान ही करते हैं। उनकी महिमा को वेद नेति-नेति कहकर वर्णन करते हैं और वे सच्चिदानन्द तीनों कालों में सर्वदा और सर्वथा निर्विकार अर्थात् एकरस[29] रहते हैं। भगवान श्रीराम प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द-कन्दस्वरूप[30] सूर्यकुल के ध्वजारूप हैं और वे मनुष्यों के समान चरित्र (लीला) करते हैं जो संसाररूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान है।

भगवान श्रीराम आप्तकाम, आनन्द की राशि, अजन्मा और अविनाशी होने पर भी मनुष्य की मर्यादा के अनुरूप मनुष्य की भाँति ही आचरण करते हैं-

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी।।

-रामच., अर. का., 29/9

गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका में भी भगवान श्रीराम के ब्रह्म स्वरूप को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि सत्, चित्, व्यापक और आनन्दस्वरूप परब्रह्म[31] श्रीराम की जय हो जिन्होंने लीला करने के लिए व्यक्त अर्थात् साकार रूप में अवतार लिया है। पुनः गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी को कोई जीत नहीं सकता है क्योंकि वे उपाधिरहित, इन्द्रियजन्य ज्ञान से परे, अप्रकट, केवल, दूषण-रहित, अजन्मा और अद्वितीय[32] हैं। गोस्वामीजी ने लक्ष्मणजी के मुख से कहलवाया है कि श्रीरामजी परमार्थस्वरूप परब्रह्म हैं। वे जाने न जा सकने वाले अविगत, स्थूल दृष्टि से देखे न जा सकने वाले अलख, आदि रहित अर्थात् अनादि, उपमारहित अर्थात् अनुपम, सब विकारों से रहित और भेदशून्य हैं और वेद उनका नित्य नेति-नेति कहकर निरूपण करते हैं-

राम ब्रह्म परमारथ रुपा। अबिगत अलख अनादि अरुपा।।
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा।।

-रामच., अयो. का., 92/4

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।

-रामच., अयो. का., सो. 126

देवगण परमार्थियों की भाँति भगवान श्रीराम के स्वरूप का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से ही उदासीन अर्थात् शत्रु-मित्र-भावरहित, अखण्ड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, कभी व्यर्थ न होने वाली अमोघशक्ति और दयामय[33] हैं। राम मनुष्यों के राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं। वे (संपूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भण्डार) भगवान हैं, निरामय अर्थात् विकार रहित हैं, अजन्मा हैं, व्यापक हैं, अजेय हैं, अनादि और अनन्त ब्रह्म[34] हैं। वे श्रीरामचन्द्रजी अन्तरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (समस्त रूपों में प्रकट), एक (अद्वितीय), और करुणामय[35] हैं।

भगवान शंकर भी पार्वती जी से यही कहते हैं कि अयोध्या में रहने वाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं क्योंकि यहाँ कोई और नहीं बल्कि स्वयं सच्चिदानन्दघन ब्रह्म श्रीरघुनाथजी ही राजा हैं। श्रीराम के ब्रह्म होने के बारे में गोस्वामीजी द्वारा निरूपित इस तथ्य से बढ़कर भला कौन सा प्रमाण हो सकता है-

उमा अवधवासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनायक जहँ भूप।।

-रामच., उ. का., 47

भगवान श्रीरामचन्द्रजी काकभुशुण्डि को जब वरदान मांगने के लिए कहते हैं और वे सब सुखों की खान उनकी भक्ति को ही वर के रूप में मांगते हैं तो श्रीरामचन्द्रजी स्वतः अपने श्रीमुख से कहते हैं कि माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझकों नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, प्रकृति के गुणों से रहित अर्थात् अगुण, गुणातीत दिव्य गुणों की खान ब्रह्म[36] समझना। श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं तथा अपनी अलौकिक प्रभा से सबको प्रकाशित-प्रज्ज्वलित कर रहे हैं-

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना।।

-रामच., उ. का., 116/3

आगे गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी वही सच्चिदानन्दघन हैं जो अजन्मा, विज्ञानस्वरूप, रूप और बलों के धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप), अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण, अमोघशक्ति और छः ऐश्वर्यों से युक्त भगवान हैं। अतः ब्रह्म तत्त्व अद्वैत है। वह निर्गुण (माया के गुणों से रहित), महान, वाणी तथा इन्द्रियों से परे, सर्वद्रष्टा, निर्दोष, ममतारहित, निराकार (मायिक आकार से रहित), मोहरहित, मायारहित नित्य और अनंत सुख की राशि[37] हैं। विवेक चूड़ामणि[38] में भी ऐसा ही उल्लिखित है। तुलसी ने ब्रह्म (राम) के तटस्थ लक्षण की अभिव्यक्ति करते हुए उन्हें घट-घट में व्याप्त तथा जगत् का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता[39] कहा है।

गीतावली में भी गोस्वामीजी ने भगवान राम (ब्रह्म) को अज और अविनाशी स्वीकार किया है-

रघुनाथ तुम्हार चरित मनोहर गावहिं सकल अवधबासी।
अति उदार अवतार मनुज-बपु धरे ब्रह्म अज अविनासी।।

-गीताव., उ. का. 38/1

राम का परब्रह्म स्वरूप

सगुण रूप में राम में समस्त मानवीय तथा दैवीय गुणों के प्रतिष्ठापक तुलसीदासजी राम को परम ब्रह्म मानते हैं। यही नहीं, आचार्य केशवदास[40] ने भी अपने महाकाव्य रामचन्द्रिका में राम को निराकार, साकार और नराकार परम ब्रह्म के रूप में वर्णित किया है। कबीर के आराध्य भी राम ही हैं। वे अपने राम को निर्गुण, व्यापक, विश्वोतीर्ण व विश्वमय ईश्वर मानते हैं। वे अवतारी राम का खंडन करते हुए निर्गुण ब्रह्म[41] को राम, करीम, रहीम, अल्ला, खुदा इत्यादि न जाने कितने नामों से पुकारा है। उनका स्पष्ट कहना है कि उनके राम दशरथ के पुत्र नहीं हैं, उनके राम असीम सत्ता वाले हैं-

दशरथ कुल अवतरि नहीं आया, नहिं लंका के राव सताया।

वास्तव में राम अनादि हैं, निर्विकार हैं, निर्गुण हैं। तथापि, वे भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर तथा ब्रह्मा आदि देवों की प्रार्थना पर 'दाशरथि राम' बनना स्वीकार करते

हैं। निर्गुण और सगुण राम का यह भेद मनुष्य ही नहीं अपितु देवताओं को भी भ्रमित कर देता है। जगज्जननी पार्वती के इसी प्रकार के भ्रम का निवारण करते हुए शिवजी कहते हैं कि जैसे जल और ओले में भेद नहीं है, दोनों जल ही हैं, वैसे ही सगुण, साकार और निराकार एक ही हैं। श्री रामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। वे प्रकाश के भण्डार हैं, जीव, माया व जगत् के स्वामी हैं। वे ही रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं उसे राम मंत्र देकर मुक्त कर देता हूँ।

यथार्थ में राम अनादि ब्रह्म हैं। वे परमार्थ रूप परम ब्रह्म हैं- 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा'। अनेकानेक सन्तों ने राम को अपने आराध्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। राम नाम के इस अत्यंत प्रभावी एवं अद्‌भुत दिव्य बीज मंत्र को सगुणोपासक मनुष्यों में प्रतिष्ठित करने के लिए रामकथा का आविर्भाव तथा दाशरथि राम का अवतरण हुआ है। कबीरदास जी ने कहा है- 'आतम राम अवर नहिं दूजा'।

तुलसीदासजी ने जिस राम का उल्लेख किया है वे वास्तव में परम ब्रह्म हैं। तथापि, वे सन्तों के हितार्थ मनुष्यरूप धारी भी है। राम का जितना परम-ब्रह्मत्व सत्य है उतना ही उनका मर्यादा पुरुषोत्तमत्व भी। वे सभी वेदादि-शास्त्रैकसमधिगम्य, अदृश्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त और त्रिविधपरिच्छेद[12] शून्य हैं। त्रिविधपरिच्छेद का अर्थ है कि कोई भी देश, काल और वस्तु ब्रह्म से रहित नहीं है।

वेद राम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभव से ही जाना जाता है और मन से परे है[13]; जो लोग इस प्रकार कहकर उस ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किन्तु हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। पार्वतीजी शिवजी से कहती हैं कि यह सत्य है कि श्रीरामचन्द्रजी परम ब्रह्म है, ज्ञानस्वरूप अर्थात् चिन्मय हैं, अविनाशी हैं और सबसे रहित एवं सबके हृदयरूपी नगर में निवास करने वाले हैं तो भला उन्होंने मनुष्य का शरीर क्यों धारण किया, यह बात मुझे समझाकर कहिए। विभीषणजी रामभक्त थे। तथापि, वे अपने अग्रज रावण का सम्मान करते हैं और रावण द्वारा परामर्श लेने पर विभीषण उससे राम के बारे में कहते हैं-

ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता।।

-रामच., सु. का., 38/1

वास्तव में, परम-ब्रह्मस्वरूप राम अविनाशी, मोह-ममता से निर्लिप्त, सदामुक्त, मानातीत, ज्ञान-विग्रह, सच्चिदानन्द और जगत् के आदि कारण[14] (यहाँ पर ब्रह्म के स्वरूप एवं तटस्थ दोनों लक्षणों की अभिव्यक्ति एक साथ हुई है) हैं। वे सबकी रक्षा करने वाले तथा सबका लय करने वाले, यम के भी स्वामी हैं। वे निर्विकार, अत्यंत तेजमय और भक्तों पर सदैव कृपा करने वाले हैं। इसी प्रकार वानर-सेना के निराश होने पर जामवंत अंगद से कहते हैं कि श्रीरामजीको मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा[15] समझो।

वस्तुतः गोस्वामीजी ने राम के ब्रह्म रूप का अभिभावन आध्यात्मिक तथा दार्शनिक धरातल पर किया है। ब्रह्म विषयक प्रचलित सभी सिद्धांतों को अपनी दृष्टि में रखकर ही उन्होंने राम का ब्रह्म तथा परम-ब्रह्म स्वरूप निर्धारित किया है। ब्रह्म अलक्षण है, इस तथ्य के प्रतिपादन में गोस्वामीजी ने ब्रह्म की एकरसता[16] का श्रीरामचरितमानस में कई जगहों पर उल्लेख किया है।

तुलसी के अनुसार परम-ब्रह्म भगवान श्रीरामचन्द्रजी का सच्चिदानन्दस्वरूप परंपरा से ही लोक-कल्याणकारी अर्थात् मानवीय मूल्यों के रक्षार्थ और बहुप्रचलित है क्योंकि वे संतों के संताप हरने वाले, विश्व को विश्राम देने वाले अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, उसके पोषण व संहार करने वाले) तथा 'कल्याण-स्वरूप' नाम वाले देवता शिवजी को भी आनंद देने वाले विशुद्ध ज्ञान के धाम एवं सत्, चित् और आनन्दघन, सन्तों (सज्जन पुरुषो) का आनन्दवर्धन[17] करने वाले हैं। काकभुशुण्डि गरूड़ को श्रीरामचन्द्रजी का परिचय देते हुए कहते हैं कि वे प्रकृति से परे, सर्वसमर्थ, सदा सबके हृदय में बसने वाले, इच्छा रहित, विकाररहित अविनाशी ब्रह्म हैं-

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

-रामच., उ. का., 71ख/4

ब्रह्म-राम के दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी अन्यत्र कहते हैं कि वे पाप-रहित, अद्वैत, निर्दोष, अप्रकट, अजन्मा, अपार, विकार-रहित और आनन्द के सागर[18] हैं। वे एकरस हैं और इनके निवास का कोई पता भी नहीं हैं क्योंकि ये एक ही काल में सर्वत्र रमने वाले हैं[19]। ब्रह्मस्वरूप भगवान श्रीरामचन्द्रजी के प्रति शिवजी का प्रणत भाव उल्लेखनीय है, जहाँ वे कहते हैं कि श्रीराम प्रसिद्ध पुरुष हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत् के स्वामी[50] हैं। उक्त भाव-साम्य सार्वजनीन वेदना के प्रतिबिम्ब 'विनय-पत्रिका'[51] में भी विद्यमान हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने अपने पूर्ववर्ती विभिन्न साहित्यों में, दार्शनिक विचारधाराओं में, सिद्धान्तों में तथा सम्प्रदायों में परम्परा से चले आ रहे ब्रह्म-विषयक विचारों को स्वीकार किया है; कहीं भी उनका परिहार करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं दिखती। तथापि, राम को एक साथ ब्रह्म-परमब्रह्म-मर्यादा पुरुषोत्तम (नर-चरित्र) के लोकोन्मुखी और सर्वस्वीकार्य रूप में अत्यन्त सहजता व सजीवता के साथ प्रस्तुत कर भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं को, सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्यों को तथा सिद्धान्तों को पुनर्जीवित करने का अनुपम और स्तुत्य प्रयास किया है जिसे उनकी मौलिकता और विशिष्टता के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

ब्रह्म का रूप अभेद

स्वरूप की दृष्टि से गोस्वामीजी ने ब्रह्म के दो रूप स्वीकार किए हैं- सगुण और निर्गुण। किन्तु, वे इन दोनों में अभेद मानते हैं और दोनों को तत्त्वतः एक ही बताते हैं।

सगुण-निर्गुण की यह अभेद मान्यता गोस्वामीजी की मौलिक सोच है। वास्तव में, इनमें कोई विभेद है ही नहीं क्योंकि मुनि, पुराण, पण्डित और वेदों का कहना है कि सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है; जो निर्गुण निराकार, अलख और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है-

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

-रामच., बाल. का., 115/1

सगुण-निर्गुण- ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं किन्तु, 'राम' नाम इन दोनों से बड़ा है जिसने अपने बल-पराक्रम से दोनों को वश में कर रखा है-

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरुपा। अकथ अगाध अनादि अरुपा।।
मोरे मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें।।

-रामच., बाल. का., 22/1

विनय-पत्रिका में भी उपरोक्त भाव की ही पुनरावृत्ति देखने को मिलती है, जहाँ कहा गया है कि भगवान श्रीराम अविद्या से सदैव-सर्वथा मुक्त, दिव्यगुणविशिष्ट (सगुण-निर्गुण दोनों के अलौकिक लक्षणों से विभूषित), माया के गुणों से रहित, अनन्त ऐश्वर्य आदि षड्गुणों से पूरित, जगत-नियंता अर्थात् नियमों के विधायक और सब पर शासन करने वाले हैं। वे ही समस्त विश्व के पालक-पोषक, जगत् के आदि कारण हैं[52]।

गोस्वामीजी ने ब्रह्म ज्ञान को अग्नि के समान माना है। निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अन्दर विद्यमान है, किन्तु उसका प्रत्यक्ष नहीं होता और सगुण ब्रह्म का ज्ञान प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वस्तुतः सगुण और निर्गुण ब्रह्म ज्ञान दोनों एक ही है, इनमें भिन्नता केवल प्रकट-अप्रकट के भेद से ही प्रतीत होता है। सगुण और निर्गुण एक होने पर भी बड़ी कठिनाई से जाने जाते हैं अर्थात् इनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। तथापि, नाम से दोनो सरलतापूर्वक जाने जा सकते हैं। इसी से नाम को ब्रह्म के दोनों स्वरूपों से बड़ा कहा गया है। क्योंकि ब्रह्म व्यापक, एक, अविनाशी, चौतन्य, सत्ता और आनन्दघन[53] की राशि है।

निर्गुण ब्रह्म

निर्गुण का सामान्य अर्थ है- गुणों से रहित। यह परमेश्वर का वह स्वरूप है जो सत्व, रज और तम- इन तीनों गुणों से रहित होता है। निर्गुण शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- 'निर्गतोगुणेभ्यः' अर्थात् गुणों से शून्य। 'गुण' शब्द का प्रयोग एवं अर्थ अनेक प्रकार से होता है। दार्शनिक क्षेत्र में गुण से तात्पर्य प्रकृति के तीन गुण- सत्व, रज और तम से है। ऐसा ही वर्णन गोस्वामीजी ने भी श्रीरामचरितमानस[54] तथा वैराग्य-संदीपनी[55] में किया है।

उन्होंने ब्रह्म के सगुण रूप के साथ-साथ निर्गुण[36] रूप को भी उल्लिखित किया है। उनके अनुसार निर्गुण ही सगुण रूप धारण करता है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है-

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।

-रामच., बाल. का., 115/1

फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा।।

-रामच., किष्किं. का, 16/1

गोस्वामीजी के अनुसार निर्गुण ब्रह्म सूक्ष्म, अनुभवगम्य तथा अव्यक्त है। इसलिए जीव को हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान, नेत्रों के सामने उसके सगुण स्वरूप की झाँकी और जिह्वा से सुन्दर राम-नाम का जप करना चाहिए। यह ऐसा है मानो सोने की सुंदर डिबिया में मनोहर रत्न सुशोभित हों। गोस्वामीजी के मतानुसार राम-नाम निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण ब्रह्म दोनों से बड़ा है- 'मोरें मत बड़ नाम दुहू तें'। नाम की इसी महिमा को ध्यान में रखकर यहाँ नाम को रत्न कहा गया है तथा निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर को उस अमूल्य रत्न को सुरक्षित रखने के लिए सोने का संपुट बताया गया है-

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम।।

-दोहाव., 7

आगे, गोस्वामीजी 'राम-नाम' को सगुण-निर्गुण दोनों से श्रेष्ठ तथा संजीवनी स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि सगुणरूप के ध्यान में तो प्रीतियुक्त रूचि नहीं होती और निर्गुण स्वरूप मन से दूर[37] है अर्थात् समझ में नहीं आता है। ऐसी दशा में रामनाम-स्मरणरूपी संजीवनी का ही सदा सेवन करना चाहिए।

गोस्वामीजी का स्पष्ट मानना है कि सगुण के बिना निर्गुण की सिद्धि असंभव है क्योंकि अज्ञान के बिना ज्ञान, अंधकार के बिना प्रकाश और सगुण के बिना निर्गुण की सिद्धि नहीं हो सकती है; निर्गुण कहते ही सगुण की सिद्धि हो जाती है। अतएव, जो लोग सगुणोपासना छोड़कर निर्गुणोपासना करना चाहते हैं, उनको यथार्थ निर्गुण तत्त्व का ज्ञान होना बहुत ही कठिन है-

ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरि तुलसीदास।।

-दोहाव., 251

गोस्वामीजी का कहना है कि सगुण की तुलना में निर्गुण कम प्रामाणिक है क्योंकि निर्गुण ब्रह्म अंक (1, 2, 3) के समान है जबकि सगुण अक्षर (एक, दो, तीन) की भाँति। ठीक तो दोनों ही हैं किन्तु, अंक में शून्य घटा-बढ़ाकर परिवर्तन संभव है लेकिन अक्षर के साथ नहीं। इसी तरह निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों सत्य हैं। वस्तुतः एक ही चीज दो

रूपों[58] में है। निर्गुण में भ्रम की गुंजाइश रह सकती है परन्तु, सगुण में न तो कोइ भ्रम रह सकता है और न किसी प्रकार से कोइ छल ही कर सकता है। तुलसीदासजी परम्परा के विरुद्ध ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को सुलभ तथा सगुण रूप को अगम[59] कहते हैं।

गोस्वामीजी ने सगुण तथा निर्गुण में कोई भेद नहीं माना है। उनके अनुसार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। साधक के लिए दोनों आवश्यक हैं। तुलसी के ब्रह्म राम सगुण-साकार होने के साथ-साथ निर्गुण निराकार भी हैं, किन्तु लोक-संग्रह और व्यावहारिक मूल्य की दृष्टि से गोस्वामीजी ने निर्गुण-निराकार की अपेक्षा ब्रह्म के सगुण तथा साकार रूप को अधिक उपयुक्त[60] माना है। तुलसी के राम निर्गुण तो हैं ही; वे सगुण तथा समरूप भी हैं-

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं।।
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं।।

-रामच., अर. का., 10/6

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि तुलसीदासजी ने ब्रह्म संबंधी परम्परागत मान्यताओं को सादर स्वीकार किया है- चाहे उसके लक्षणों की बात हो या फिर स्वरूप की। साथ ही, उन्होंने समन्वय की अपनी मौलिक साधना से उसे लौकिक पक्ष से संबद्ध बनाये रखने का विलक्षण और सार्थक प्रयास किया है। उनकी ब्रह्म भावना उनके राम के रूप में पूर्ण हुई है। गोस्वामीजी की विभिन्न कृतियों में स्पष्ट प्रतिष्ठापन है कि राम पूर्ण ब्रह्म हैं। वस्तुतः तुलसी की ब्रह्म-भावना 'ब्रह्म' के विवेचन मात्र के लिए नहीं है अपितु, इसका प्रयोजन समाज में उदात्त व्यावहारिक मूल्यों की स्थापना करना और मानवमात्र का कल्याण सुनिश्चित करना है।

संदर्भः-

1. मंगला डॉ. प्रेमसुख : राचरितमानस में अद्वैतमीमांसा, पृ. 75
2. कठ. उप. 2/5/15
3. रामच., बाल. का., 115/4
4. वही- उ. का., 71ख/2
5. मंगला डॉ. प्रेमसुख : राचरितमानस अद्वैतमीमांसा, पृ. 76
6. पाण्डेय संगमलाल : मूल शांकरवेदान्त, पृ. 8
7. तैत्ति. उप. 3/1
8. शर्मा, चन्द्रधर : भारतीय दर्शन, पृ. 250
9. रामच., बाल., का., 7ग
10. तैत्ति. उप. 2/1
11. वृहदा. उप. 3/9/28
12. रामच. उ.का. 116/3
13. रामच. उ.का. 71 ख/2
14. ऋग्वेद, 2/2/156/5

15. ईश. उप., 4, 5, 12-13
16. वि. पु., 1/2/13, 1/15/57
17. अर्भकौकस्त्वात्तद्व्य पदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च। -ब्र. सू. 1/2/7
अन्तरा भूतग्रामवस्त्वात्मनः। -ब्र. सू. 3/3/35
18. मिश्र डॉ. उमेश : भारतीय दर्शन, पृ. 354, 366
19. डॉ. चन्द्रशेखर : तुलसी की दार्शनिक शब्दावली का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 17
20. भण्डारी, डॉ. मनोहर : रोम-रोम में बसने वाले राम (www-abhivyakti-hindi-org) पर उपलब्ध आलेख।
21. नायर, डॉ. सी.पी. राजगोपालन : राम का स्वरूप, पृ. 47
22. प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी।।
सेस सारदा वेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना।।
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सारद जपहुँ अनंग आराती।।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई।। -रामच., बाल. का., 107/3-4
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमित बुद्धि अति मोरि।। -रामच., बाल. का., 108
23. ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद।। -रामच., बाल. का., 50
24. रामच., बाल. का., 51
25. शर्मा, चन्द्रधर : भारतीय दर्शन, पृ. 251
26. कुमार, श्रीश : रामचरितमानस का तत्त्वदर्शन, पृ. 43
27. रामच., बाल. का., 205
28. राम अतर्क्य बुद्धि, मन बानी। मत हमार अस सुनहु भवानी।। -रामच., बाल. का. , 120घ/2
29. रामच., बाल. का., 340/3-4
30. रामच., अयो. का., दो 87
31. वि. प., 43/1
32. वि. प., 53/3
33. तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय।। -रामच., लंका. का, 109ख/3
34. तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता।। -रामच., सु. का., 38/1
35. जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।। -रामच., उ. का., 33/1
36. रामच., उ. का., दो. 85क
37. सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा।।
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।। -रामच., उ. का., 71ख/2-3

38. भ्रान्तस्य यद्यदभ्र मतः प्रतीतं, ब्रह्मैव तत्तद्वजतं हि शुक्तिः।
इदन्तया ब्रह्म सदैव रूप्यते, त्वारोपितं ब्रह्मणि नाममात्रम्।। -विवेकचूड़ामणि, 238
अतः परं ब्रह्म सद्वितीयं, विशुद्धविज्ञानघनं निरंजनम्।
प्रशान्तमाद्यन्त विहीनमक्रियं, निरन्तरानंदरस स्वरूपम्।। -विवेकचूड़ामणि, 239
39. जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, दीन-दुनी को।। -कवितावं., उ. का.,146
40. राम सदा तुम अंतरयामी। लोक चतुर्दश के अभिरामी।।
निर्गुण एक तुम्है जग जानै। एक सदा गुणवन्त बखानै।। -रामचन्द्रिका, प्रकाश 20, छं. 15
41. वेबसाइट लिंक irgu-unigoa-ac-in/drs/---/Hindi_Anushilan_49 ¼3 to 4½21&26-pdf पर डाला गया। डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र का आलेख 'कबीर के राम'
42. कुमार, डॉ. श्रीश : रामचरितमानस का तत्वदर्शन, पृ. 39
43. जे ब्रह्मअजमद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।। -रामच., उ. का., छं. 6
44. रामच., बाल. का., 119/3-4
45. वि. प., 53/6
46. रामच., किष्किं. का., 25/6
47. अगुन अलेप अमान एकरस। राम सगुन भए भगत पेम बस।। -रामच., अयो. का., 218/3
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एक रस रहई।। -रामच., बाल. का., 340/4
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एक रस सहज उदासी।। -रामच., लं. का., 109/3
48. वि. प., 55/1
49. वि. प., 56/8
50. रामच., बाल., दो. 116
51. वि. प., 54/1
52. वि. प., 55/9
53. पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।।
उभय अगम, जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें।।
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत् चेतन घन आनंद रासी।। -रामच., बाल. का., 22/2-3
54. रामच., बाल. का., 117/3
55. वै. सं., 3
56. रामच., बाल. का., 20/4; रामच., बाल. का., 23; रामच., बाल. का., 143/2
57. दोहाव., 8
58. दोहाव., 252, रामच., लंका. का., 112/छं. 7
59. रामच., उ. का., दो 73ख
60. रामच., बाल. का., दो. 23

●●●

लोक साहित्य में उपस्थित मूल्य चेतना

प्रियदर्शिनी*

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास और विस्तार में समाज की बहुत बड़ी और प्रभावशाली भूमिका होती है। जहाँ वह प्रथम शिक्षिका के रूप में 'माँ' से बहुत कुछ सीखता है वहीं, 'माँ' भी उसे लोक ज्ञान, कहानी, मुहावरों, गीतों, प्रश्नोत्तर के बहाने से बहुत कुछ विचारणीय शिशु के भीतर भरती है। मनुष्य के आंतरिक व्यक्तित्व मूल्य निखारते है। मूल्यों के कारण ही मनुष्य में उचित-अनुचित के बोध का विवेक निर्मित होता है। ''मानव मूल्य से तात्पर्य उन उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों, अपेक्षाओं तथा वांछित स्थितियों से है, जिनके प्रति मानव समाज में प्रेम और आदर है। कोई भी समाज निरे यथार्थ पर नहीं चलता। कह सकते हैं कि पशु समाज और मानव समाज में फर्क ही यह है कि पशुओं के जीवन में मूल्य नहीं होते और उनका व्यवहार उनकी तात्कालिक आवश्यकता से निर्धारित होता है जबकि मनुष्य के सामने कुछ आदर्श होते हैं जिनका पालन वह करता है अथवा करना चाहता है।''[1]

सामाजिक मूल्यों को माने बिना उनको अपनाये बिना जीवन जीने के स्पष्ट दृष्टिकोण को नहीं जाना जा सकता। हर समाज, हर व्यवस्था के कुछ स्थिर मूल्य और आदर्श होते हैं। इन्हीं स्थिर मूल्यों और आदर्शो के कारण मनुष्य को जीवन जीने और व्यवस्थित रूप से परिस्थितियों की विवेचना करने की शक्ति मिलती हैं। ''सभी धर्मों में आचरण के कुछ प्रकार अच्छे माने गये हैं और कुछ प्रकार बुरे। महाभारत में विदुर ने धर्म के आठ अंग बताये हैं। जैसे- महाभारत में विदुर ने धर्म के ये आठ अंग बताए हैं- इज्या (यज्ञ-याग, पूजा आदि), अध्ययन, दान, सत्य, दया, क्षमा, अलोभ। मनुस्मृति के अनुसार धर्म के दस लक्षण हैं- धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शौच (स्वच्छता), इंद्रियों को वश में रखना, विद्या, सत्य और क्रोध न करना। तुलसी दास रामचरित मानस में लिखते हैं कि- ''परहित जैसा कोई धर्म नहीं है और दूसरे को पीड़ा देने जैसी अधमता कुछ और नहीं।''[2] महाभारत के यह मूल्य हमारे लोक में बहुत ही गहरे रूप से विन्यस्त है। व्यक्ति इन मूल्यों की शिक्षा लोक के विविध स्वरूपों के माध्यम से ग्रहण करता है। लोक संस्कृति में मनुष्य के व्यक्तित्व के परिष्कार और परिमार्जन की बहुत संभावनाएँ होती हैं। लोककथा, लोकगीत, लोकोक्तियाँ, मिथकीय कथाएँ इत्यादि के माध्यम से लोक मनुष्य को चेतना संपन्न और मूल्यों के माध्यम से व्यवस्थित बनाये रखने की चेष्टा करता है। ''लोक ऐसा

* **सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद।**

मानव समुदाय है जो शहरीकृत नहीं है, लेकिन ऐसा नहीं है कि लोक का व्यक्ति शहर तक नहीं जाता, लेकिन शहर से लौटकर वह फिर लोक का ही हो जाता है। लोक का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। वह अपने इर्द-गिर्द के परिवेश से जीवन को पोषण लेता है, अपने जीवन व स्वभाव को निर्मित करता है और उसी प्राकृतिक जीवन की प्रकृत अवस्था में अपना विस्तार करता है। ऐसी स्थितियों में उसका सामासिक रूप इस रूप में निर्मित होता है कि हर व्यक्ति की उपलब्धियाँ उस व्यक्ति की न होकर, संपूर्ण लोक की हो जाती हैं।''[3] लोक में उपस्थित कहानियाँ अपने मानवीय मूल्यों को रोचकता में पगा कर छोटे-छोटे बच्चों के मन में नैतिक शिक्षा का बीजारोपण करती हैं। लोक साहित्य में लोक कथाओं का बहुत महत्व रहा है। इनका भी आरंभ शिशुओं के आश्वासन शिक्षा और कौतुहल से रहा है। सोते समय दादी-नारी जो कहानियाँ बच्चों को सुनाती हैं, वह दादी-नानी की कहानियों के रूप में प्रसिद्ध हो गयीं। धीरे-धीरे इनका क्षेत्रगत विस्तार होने लगा और यह कहानियाँ भी विविध रूपों में आयीं। इन कहानियों में राजा-रानी की कहानियाँ, राजकुमारों के विवाह प्रताप, उनके कला-प्रदर्शन की कहानियाँ, सौतेली माताओं की कहानियाँ, ऋतुओं की कहानियाँ, जंतुओं-भेड़ियों की कहानियाँ, गरीब लड़कियों के साथ राजाओं के दुर्व्यवहार की कहानियाँ, डायन, भूत-प्रेत की जादुई कहानियाँ, लकड़हारा और पेड़ की कहानियाँ, ईश्वरीय चमत्कारों वाली कहानियाँ, मेहनतकश गरीब लड़के के मेहनत व अपने आचरण के दम पर अपने जीवन के संकटों से स्वयं को मुक्त करने वाली कहानियाँ। यह कहानियाँ वह कहानियाँ हैं जो सहज रूप से बच्चों को लोकभाषा के माध्यम से नैतिक मूल्यों का पाठ पढ़ाती है। ये कहानियाँ अतिथि सत्कार करना, जीवों से प्रेम करना, अहंकार व लोभ न करना, क्षमा करना, बड़ों का आदर करना और कृतज्ञ एवं विनम्र रहने की सीख देती है। यह सभी कहानियाँ मनुष्य के मन, वचन व आचरण को हर परिस्थिति में संयमित रखने और क्रोध, घृणा, प्रतिशोध इत्यादि मनोभावों को नियंत्रित करने की पुरजोर कोशिश करती हैं। यह कहानियाँ अपने अंत में दूसरे उदार व उदात्त चरित्र के लोगों से उनके जीवनादर्शों से प्रेरित होने को भी प्रोत्साहित करती हैं। ''भारतीय परंपरा में पारलौकिक को लौकिक से अधिक ऊँचा स्थान दिया जाता है।'' अंत भला तो सब भला के अनुसार ही हमारी लोककथाएँ भी सुखांत हुआ करती हैं। शायद ही ऐसी कोई कथा हो जो दुखांत हो। प्राचीन काल से ही भारतीय लोक कथाओं की यही प्रवृत्ति रही है। संस्कृत नाटकों की ही भाँति इनका भी अंत संयोग में होता है। ये कथाएँ अपने मूल में मंगल कामनाओं का स्वर लेकर आती हैं। इसलिए प्रायः इन कथाओं के अंत में एक सूत्र वाक्य निश्चित सा होता है कि- ''जैसे उनके दिन फिरे वैसे ही हमारे दिन भी फिरे।''[4] लोक गीतों की ही भाँति लोक कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके लेखक अज्ञात होते हैं। इसके बावजूद भी इन लोक कथाओं के निष्कर्ष से समस्त लोक की एक 'मौन सहमति' होती है। इन कथाओं को कहने-सुनने का ढंग परिवर्तित हो सकता है लेकिन नैतिक मूल्य चेतना से युक्त निष्कर्ष

कदापि भिन्न नहीं हो सकता। लोक साहित्य की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि यह मानवीय मूल्यों के समर्थन में पूरी शक्ति व दृढ़ता के साथ खड़ा होता है। मानव-जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखने वाले गुण मानव मूल्य कहलाते हैं। 'मूल्य' उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है जिनमें मानव-जीवन का हित समाविष्ट हो और जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानता है। यह मूल्य परम्परा मानव जीवन व व्यक्तित्व का प्राणतत्व है। ये ही जीवन के आदर्शों के निमार्ण में 'रीढ़' की भूमिका का निर्वाह करते हैं। मूल्यों को अपनाकर जाति, धर्म, समाज और मानव-जीवन को सुंदर बनाने का प्रयास किया जाता है। मूल्य सामाजिक मान्यताओं के साथ परिवर्तित हो सकते हैं किंतु अपनी संरचना में अंर्तनिहित लोक-कल्याण की मंगलकामना और सार्वजनिक हित की भावना को कभी तिरोहित नहीं होने देते। नये परिवेश में जब पुरानी मान्यताएँ परिवर्तित होने लगती हैं तो समाज नयी मान्यताओं और मूल्यों के 'नैरेशन' को ग्रहण करता है। तब यह नये 'नैरेशन' ही नये समाज में मूल्य बनकर स्थापित हो जाते हैं। जैसे प्राचीन काल में जीवन मूल्यों के रूप में- धर्म, आस्था, श्रद्धा, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि को मनुष्य के नैतिक आदर्शों के रूप में स्वीकृति दी गयी तो वही आधुनिक समय में इन मूल्यों के स्थान पर अहिंसा, सत्य, सहानुभूति, करूणा, समभाव इत्यादि मूल्यों की स्थापना हुई। नये हो या पुराने 'मूल्य' अपने मूल उद्देश्य से कभी भी विरत व्यवहार नहीं करते। मूल्यों का आधार ही है मनुष्य के चारित्रिक गुणों का विस्तार करना और समाज को एक सकारात्मक आदर्शवादी जीवन दृष्टि प्रदान करना।

लोक साहित्य (लोक कथाएँ, गीत, गाथाएँ, घटनाएँ, मिथक, लोकोक्तियाँ इत्यादि) का उद्देश्य लोक मंगल हेतु रास्ता दिखाना और ऐसे आदर्श को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को महत्व मिल सके। लोक कथाएँ जहाँ हमें आत्म-सम्मान, साहस और पारम्परिक सद्भावना के साथ जीवन जीने का तरीका सीखाती हैं; वहीं लोकगीत हमें अपने मूल्यों, धार्मिक, व्रत-कथाओं, उपवासों, कृषि गीतों, मंगल गीतों, जतसारी जैसे श्रम के महत्व बताने वाले गीतों के माध्यम से हमारे भीतर के मनुष्य को अधिक सामाजिक, उत्सवधर्मी तथा अभावों में भी जीवन मूल्यों की सुंदरता और संबंधों के महत्व को दृढ़ता से निभाने की अपील करते हैं। ''लोक साहित्य जन-साधारण द्वारा रचित सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य है, मानव हृदय की सरल, सहज एवं सुरम्य अभिव्यक्ति लोक-साहित्य में उपलब्ध होती है। यह साहित्य व्यक्ति-विशेष द्वारा रचित न होकर काल परम्परा के अनुसार जन समुदाय द्वारा रचित और परिभाषित होता है। मौखिक आवर्तन में जिंदा रहने वाला साहित्य भी लोक साहित्य है। जो साहित्य में सांस्कृतिक ढांचों, सामाजिक प्रसंगों व सामाजिक उपकरणों के माध्यम से जीवित रहता है उसे भी लोक-साहित्य कहा जा सकता है।''[5] लोक हमें सदैव प्रेरित ही करता है। समाज को देखने की लोक के पास अपनी एक अलग ही मूल्य दृष्टि है; जो कि आदर्शात्मक है। लोक अपने इन्हीं आदर्शों की

स्थापना के लिए अपने साहित्य (लोक-साहित्य) के माध्मय से बहुविध प्रयत्न करता है। लोक व्यवहार में सभी मानव एक जैसे नहीं होते हैं, उदारता, अनुदारता, नृशंसता, दयालु, करूणा, सबल-दुर्बल, विवेकी-अविवेकी, पापी-पुण्यात्मा, सज्जन-दुर्जन आदि विविध मनोवृत्तियों से युक्त होते हैं। लोक अपनी मूल्य चेतना व आदर्श दृष्टि से अपने साहित्य की मदद लेते हुए व कुवृत्तियों का प्रतिकार करता है और सुवृत्तियों की ओर आगे बढ़ने को प्रेरित करता है। "हर युग में भिन्न-भिन्न किस्म के रचनाकार आते हैं जो लोक-जीवन को अपने में समाहित किये होते हैं। लोक-जीवन से जुड़े बिना मनुष्य जीवन के करीब नहीं हो सकता। लोकभाषा, लोकशब्द, मुहावरे साहित्य सब उसको समृद्ध करते हैं। लोक-साहित्य में लोकमन मुक्त रहता है और उस मुक्त लोकमन की भूमिका में वह अपने को समाज को जोड़कर चलता है, प्रत्येक गाँव में जगह-जगह चीजें होती हैं।"[6] लोक मनुष्य के जीवन में एक गुप्त शिक्षक की भूमिका का निर्वहन करता है। जो जीवन के मनुष्यता के तमाम तत्वों से मनुष्य का परिचय विविध-प्रसंगों के माध्यम से कारता रहता है। लोक कथाओं के साथ ही लोक-गीतों ने भी लोक साहित्य में निहित मूल्य चेतना को एक आशय प्रदान किया है। लोक-गीतों के माध्यम से सामाजिक जीवन का चित्रण, आदर्श सतीत्व, भाई-बहन के परस्पर प्रेम, व्रत-त्यौहारों का महत्व और महात्म्य, दान-पुण्य की महिमा, विविध फलों और फूलों के विशेष अर्थों में होने वाले प्रयोग, विवाह संस्कारों में गाये जाने वाले विविध गीत, ननद-भौजाई के साखत्व और नोंक-झोंक से लेकर सौतिया डाह और बारह मासा के बहाने से प्रत्येक ऋतु की विशेषता और उनके मूल्यात्मक उपदेश लोक अपने भीतर समाहित किये रहता है।

लोक-साहित्य- विशेषकर लोक गीतों में सामान्य जनता की धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, भोगौलिक परिस्थितियों के चित्र बड़ी ही जीवंतता से गीतों के माध्यम से प्रस्तुत होते हैं। "यद्यपि नयी सभ्यता तथा शिक्षा के चाक-चिक्य के कारण हमारी प्राचीन धारणाओं और मान्यताओं में भी परिवर्तन होने लगा है। परंतु लोक-संस्कृति की सरिता आज भी अक्षुण्ण गति से प्रभावित हो रही है। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी प्रकार से व्रत रख रही हैं और अपने अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिए देवताओं की पूजा करती हैं। लोक-गीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख पाया जाता है उनमें शिव अधिक प्रचलित हैं। भगवान शिव देवता के रूप में नहीं चित्रित किये गये बल्कि वे एक साधारण पति के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं। इनकी पूजा प्रत्येक गाँव में की जाती है। कोई भक्त स्त्री कहती है कि- ए सखी! शिव के दर्शन करने के लिए चलो। कोई इनके मंदिर में अक्षत-चंदन चढ़ाता है और कोई लाल चुनरी चढ़ा कर अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना करता है।"[7] यह लोक की सुंदरता ही है कि लोक ईश्वर से भयभीत नहीं होता बल्कि सीधा संवाद कायम करता है। मनुष्यता के समस्त गुणों से लोक अपने ईश्वर को युक्त देखता है। लोक के देवता मानवीय आवश्यकताओं और व्यवहार के अधीन होते हैं। वो भक्त को अपनी आवश्यकतायें कहते हैं और उनसे मदद भी मांगते हैं। भक्त-भगवान के बीच मनुष्यता का यह सहज संवाद मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था को और गहरा कर देते हैं।

गाँवों में देवी पूजन का भी बहुत महत्व है। भोजपुरी का एक बहुप्रसिद्ध देवी गीत भक्त-भगवान के मध्य सहज-संवाद का एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस देवी गीत में स्वयं शीतला माता को झूला-झूलते हुए प्यास लगती है। यह पानी की तलाश करते-करते एक मालिन के घर पहुँचती हैं, और मालिन से पानी पिलाने की प्रार्थना करती हैं। गीत कुछ इस प्रकार है-

निबिया की डार मईया नावेली झलूववा हो कि, झूली-झूली ना।।
मईया मोरी गावेली गीतिया हो कि, झूली-झूली ना।।
झूलत-झूलत मईया के लागल पियसिया, हो कि चली भईली ना।।
भीतर बाटू की बहरे मलिनियाँ हो कि एक बूँद ना।।
हमके पनिया पीआवा हो कि बूंद एक ना।।

फिर मालिन कहती है-

कइसे क पनिया पीयाओ शीतल मईया हो कि मोरी गोदी ना,
बाटे सेवक तुहार मईया मोरी गोदी ना।।

स्वयं मैया का मालिन से पानी पिलाने की यह प्रार्थना, ईश्वर-मनुष्य के मध्य यह सरल संवाद अगाध साहचर्य, प्रेम और विश्वास की भावना और मनुष्यता में सहयोगी, सहयोग के मूल्य को स्थापित करता है। 'लोक आस्था के महापर्व छठ में भी ईश्वर और मनुष्य के मध्य ऐसा संवाद देखने को मिलता है। यथा-

"गोड़वा दुःखइले रे डाड़वा पिरइले,
कबसे जे बानी हम ठाढ़।।
आरे हाले हाली उग एक आदिमल
अरघ दियाऊ।।"[8]

अर्थात्- मैं आपको अर्ध्य देने के लिए कबसे खड़ी हूँ। लंबे समय से खड़े रहने के कारण अब मेरे पैर व कमर दुःखने लगे हैं। अतः हे सूर्य देवता आप जल्दी-जल्दी प्रकट होइये जिससे कि आपको अर्ध्य दे सकूँ। पहले गीत में देवी सहायत माँगती हैं और दूसरे गीत में स्त्री गुहार लगाती है। लोक में ईश्वर से भय नहीं है बल्कि सीधी बातचीत की खुली परंपरा है। भगवान को भी मदद की जरूरत पड़ सकती है और मनुष्य को भी। इन गीतों के माध्यम से परस्पर विश्वास और सहयोग की एक लंबी शृंखला जुड़ती है और हमें मानवीय मूल्यों से जोड़ने अथवा जुड़े रहने की प्रेरणा भी देती है।

इन गीतों से भारतीय जन-मानस का जुड़ाव बहुत गहराई तक होता है। सुख-दुःख, संयोग-वियोग, रोपनी-सोहनी से लेकर द्वारपूजा, सिंदुर दान से सिंदुर बहुराई तक की सुकोमल मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों के माध्यम से होती रही हैं।

आज भी इन गीतों के बिना किसी भी परिवार में मंगल-कार्य संपन्न नहीं किये जाते। यह मूल्यों की समृद्धि नहीं तो और क्या है? कि जब बेटी घर से विदा लेती है तो वह अपने विदागीत में - घर, गाँव से जुड़ी अपनी हर स्मृति को याद करती है। पेड़ की गाँछ, घर का चूल्हा, गाय-बैल, सहेलियाँ, पिता-भाई का स्नेह, माँ का दुलार, तुलसी का चौरा, भाभी के साथ की चुहल, गाँव की नहर, नगर, खेत, खलिहान सबकी स्मृतियों को याद करती है और इन सभी से निवेदन भी करती है कि ये लोग भी उसे अपनी स्मृतियों में बनाएँ रखें। यह मानवीय करूणा, यह अनन्य आत्मीयता जो सजीव हो या निर्जीव दोनों के ही प्रति एक सी विह्वलता उत्पन्न करती है। यही तो लोक की ताकत हैं। लोक साहित्य इन्हीं सूक्ष्म संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों को गीतों के माध्यम से कंठस्थ करके अगली पीढ़ी को हस्तानांतरित कर उनके भीतर मूल्य चेतना की भावना को प्रवाहित करता है। "लोक गीत धरती के गीत हैं, ये विजय के गीत हैं, ये मंगल के गीत हैं, ये हमारी आशाओं के गीत है। जनता के द्वारा रचे गये, जनता के जीवन से संबंध रखने वाले ये गीत, जनता की ही संपत्ति हैं।"[9]

प्रत्येक प्रांत के लोकगीत भिन्न होते हैं किंतु उनमें निहित भाव व प्रकृति-मनुष्य के बीच के रागात्मक संबंधों की उष्मा और उनमें विनयस्त मूल्य एक से ही होते हैं। लोक कहीं का भी हो वह अपने मूल्यों से, परम्पराओं से अपने साहित्य से गहरा प्रेम रखता है। "विभिन्न समाजों में साहित्य और कला के अलग-अलग रूप मिलते हैं, पर उनके केंद्रीय कथ्य में कोई अंतर नहीं होता। वैसे अंतर एक ही पीढ़ी के दो लेखकों और कलाकारों में दिखाई देता है, पर साहित्य विवेक का काम यही माना जाता है कि वह प्रगतिशील और प्रतिगामी मूल्यों के संघर्ष का विश्लेषण करें और संवेदना में विस्तार और गहराई लाए। प्रतिगामी मूल्य अपने समय में चाहे जितने आकर्षक लगे, पर धीरे-धीरे उनकी ऊर्जा कम हो जाती है। अच्छाई और प्रगति में विश्वास ही मूल्य चेतना का निर्णायक बिंदु है।"[10] मूल्य बदलते रहते हैं लेकिन उनके स्थान पर अच्छे मूल्य निर्मित भी होते रहते हैं। अपने भीतर मूल्यों का विकास और मूल्यों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण जीवन को कई प्रकार की दृढ़ और सुकोमल अनुभूतियों से बांधे रखता है।

समाज मूल्यों के बिना प्राणवान, विचारवार और क्षमतावान नहीं बन सकता। मूल्य हमें 'लोकमंगल' की दृष्टि और चेतना प्रदान करते हैं। इस चेतना को लोक और लोक-साहित्य अपना आधार देते हैं। सामाजिक, नैतिक व मानव मूल्यों के अभाव में कोई भी समाज सुव्यवस्थित और आदर्श आचरण कर पाने में असमर्थ होता है। कभी लोक-साहित्य के विविध रूपों के माध्यम से, कभी प्रेरणादायी कालजयी चरित्रों के माध्यम से तो कभी विविध गीतों में उपस्थित चेतना और श्रम की आवाजों के माध्यम से मनुष्य अपने लोक से प्रेरणा ग्रहण करता है और लोक से निर्मित मूल्यों के कारण सदैव मनुष्यता

के भाव-बोध से संवेदित होता है। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, द्वेष-अनुराग सभी भावनाओं से संबंधित, दुविधा और जटिलताओं से संबंधित और उनसे उबरने के तमाम रास्तों से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं का निष्कर्ष और उनसे मिली हुई सीख लोक बहुत ही सहजता से मनुष्य के भीतर उतार देता है। यह सहजता ही लोक की सबसे बड़ी विशेषता है और यही उसकी शक्ति भी है।

संदर्भ सूची-

1. संपा. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञान कोश, भाग-5, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, पृष्ठ सं. 2917.
2. वहीं
3. भोजपुरी लोकगीतों में सामाजिक चेतना : प्रो. हरिश्चंद्र मिश्र के आलेख से, पृ.2.
4. हिंदी कहानी : वेब पेज पर, डॉ. रवींद्र भारतीय के लेख से उद्धृत अंश।
5. 'लोक साहित्य' (आलेख से), रामचंद्र बोड़ा, पृ. 28.
6. मिश्र, प्रो. हरिश्चंद्र, लोक साहित्य संदर्भ, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल, पृ. 266.
7. उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक साहित्य की भूमिका, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 250.
8. वहीं.
9. वहीं, पृ. 274.
10. संपा. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञान, कोश-5, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, पृ. 2817.

●●●

समाचार पत्र, मानवीय सरोकार और भूमंडलीकरण

सुभाष कुमार गौतम*

भारत विविधताओं का देश है। यहां विविध संस्कृतियां विद्यमान हैं। पूरी दुनियां में जब भूमंडलीकरण का कोई नामोनिशान नहीं था उस समय भारत में इसकी चर्चा थी। आज का भूमंडलीकरण मानवीय नहीं हैं पर हमारे यहा भूमंडलीकरण मानवीय था। उसमें मनुष्य और मानवीयता थी, गलाकाट प्रतिस्पर्धा नहीं थी।

भूमंडलीकरण ने जहाँ एक ओर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र में असीम संभावनाएँ बढ़ाई हैं वहीं दूसरी ओर इसने समाज में असमानता को भी जन्म दिया है। आज इसके प्रभाव से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। संचार और सूचना क्रांति ने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को और भी आसान बना दिया है। भूमंडलीकरण से सबसे अधिक व्यावसायिक लाभ अगर किसी क्षेत्र को हुआ है तो वह है मीडिया और विज्ञापन एजेंसियाँ। अंग्रेज़ी के समाचारपत्र हों या हिंदी के, भूमंडलीकरण के कारण इनके प्रचार-प्रसार, विज्ञापन और सर्कुलेशन में इजाफ़ा हुआ है। 1991 से इसकी शुरुआत मानी जाती है। पहले पाठकों को समाचारपत्र पूरी क़ीमत देकर ख़रीदना पड़ता था पर आज पचास रुपये की लागत वाला समाचारपत्र उन्हें पांच रुपये में मिल जाता है। यह सब संभव हो पाया है नई आर्थिक नीतियों के कारण जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

भूमंडलीकरण को सबसे अधिक गति आर्थिक और तकनीकी विकास के माध्यम से मिल रही है। वर्तमान भूमंडलीकरण एक शुद्ध आर्थिक व राजनीतिक प्रक्रिया है। भूमंडलीकरण की शुरुआत 20वीं सदी के अंतिम दशक से मानी जाती है। भूमंडलीकरण की यह अवधारणा मुख्य रूप से आर्थिक है जिसका संचालन बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किया जा रहा है। वर्तमान भूमंडलीकरण अमानवीय है क्योंकि इसमें हर वर्ग को उसका लाभ नहीं मिलता। इसके आने से हाशिए का समाज और हाशिए पर चला गया है। भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करने में नई तकनीक और सूचना क्रांति का बड़ा योगदान है। कंप्यूटर और इंटरनेट के प्रयोग ने भौगोलिक दूरियों को कम कर दिया है। सूचनातंत्र की भूमिका दो स्थितियों में महत्त्वपूर्ण है। पहला राजनैतिक आंदोलन और दूसरा बाज़ार नियंत्रित अर्थव्यवस्था के समय जब राष्ट्र-राज्य का हस्तक्षेप कम होता है। आज भूमंडलीकरण और मुक्त अर्थव्यवस्था का युग है। सूचनातंत्र और तकनीकी क्रांति के माध्यम से आज पूंजी

*** सहायक आचार्य (अतिथि), दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म, दिल्ली विश्वविद्यालय।**

विश्वबाज़ार या भूमंडलीय बाज़ार की अवस्था में पहुँच गई है। टेलीविज़न के आविष्कार ने मानव की जीवन-पद्धति को ख़ासा प्रभावित किया है वह इसे निर्देशित भी कर रहा है। टीवी व इंटरनेट जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने आज समूचे विश्व को विश्वग्राम यानी 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित कर दिया है।

ग़ौरतलब है कि जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समूची दुनिया पर साम्राज्यवाद की पकड़ ढीली पड़ी थी, अधिकांश गुलाम देश आज़ाद हुए थे। साम्राज्यवाद के शोषण एवं उत्पीड़न का दायरा सिकुड़ा तो समूची दुनिया में समाजवादी शिविरों का जन्म हुआ और दुनिया को देखने का नज़रिया बदला। यही कारण है कि बीसवीं सदी के नब्बे के दशक में जब भूमंडलीकरण का उदय हुआ तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में पूंजी का स्वरूप, सूचनातंत्र और उसके सांस्कृतिक रूपों में आए बदलाव आदि को देखने-परखने की एक सामयिक दृष्टि अपनाई गई। देखा यह गया कि भूमंडलीकरण अपने विचार और उद्देश्य में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर एकीकरण का वह सूत्र है, जो अपने कैनवास पर किसी अन्य राजनीतिक मानचित्र को नकारता है। भूमंडलीकरण के इस नकार में राजनीतिक वर्चस्व को भी शामिल किया जा सकता है।

आज भूमंडलीकरण के इस दौर में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा गौण हो गई है। गाँवों में गुजर-बसर करनेवाले मज़दूरों और कलाकारों को सरकार ने उनके भाग्य पर छोड़ दिया है। बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई के कारण अमीरी-ग़रीबी का फ़ासला बढ़ता जा रहा है, जिसे किसानों की आत्महत्या, भुखमरी जैसी सामाजिक विषमता के रूप में देखा जा सकता है। निस्संदेह, आज विश्व भूमंडलीकृत बाज़ार में तब्दील हो गया है, जिसे विकसित देशों की राजनीतिक संस्थाएँ संचालित कर रही हैं। महत्त्वपूर्ण निर्णय व विकास के लिए विकासशील देशों को अमेरिका का मुँह ताकना पड़ रहा है। इसका उदाहरण विश्व व्यापार संगठन है। पूरे विश्व में मनुष्य के विकास और ग़रीबी उन्मूलन के लिए पिछली शताब्दी से ही तीन विचारधाराएँ चली आ रही हैं-पूंजीवाद, साम्यवाद तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था। किसी समय त्रिगुट विश्वव्यवस्था अस्तित्व में थी। एक गुट का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था, तो दूसरे गुट का सोवियत संघ, तो तीसरे का नेतृत्व विकासशील और अर्द्धविकसित देशों के पास था। पहले और दूसरे गुट सबसे अधिक प्रभावशाली थे और अपने हिसाब से तमाम तंत्रों को संचालित कर रहे थे।

साम्यवाद के शुरुआती दौर में पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच द्वंद्व था। विगत सदी के सातवें दशक के पश्चात् अमेरिका और सोवियत संघ के द्वंद्व ने शीतयुद्ध का रूप धारण कर लिया। वस्तुतः यह पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच का शीतयुद्ध था जिसमें पूंजीवाद विजयी योद्धा की भाँति उभरा। आज भूमंडलीकरण के समय में साम्यवाद अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। इस प्रकार पूरा विश्व द्विध्रुवीय से एकध्रुवीय विश्व में बदल गया है और अमेरिका तथा उसके सहयोगी देशों का वर्चस्व क़ायम हो गया। फिर तो

एकध्रुवीय दुनिया में भूमंडलीकरण के तहत सूचना की संस्कृति में भी व्यापक बदलाव आने लगे। आज स्पष्ट है कि सूचना क्रांति ने जहाँ एक ओर ख़बरों के प्रवाह को बढ़ाया है, दो देशों के बीच की दूरियाँ मिटा दी हैं, वहीं फेसबुक जैसी सोशल साइट्स ने व्यक्ति को समाज से अलग-थलग भी कर दिया है, वह एक आभासी दुनिया में जी रहा है।

इस तरह देखें तो भूमंडलीकरण के इस युग में भारत में भी पूंजी पर एक वर्ग का एकाधिकार बढ़ गया है। पूंजीपतियों की आय में बेतहाशा इजाफा हुआ है। वहीं एक वर्ग ऐसा है जो अपने जीवनयापन के लिए जद्दोजहद कर रहा है। आज भूमंडलीय पूंजी ने समाज को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है। एक वह समाज जो संसाधन व उत्पादन के मालिक है, दूसरा वह जिसके पास जीवनयापन के लिए अपना श्रम है। इस दौर में असमानता की खाई निरंतर चौड़ी और गहरी हुई है। किसान वर्ग सबसे अधिक इस व्यवस्था में बदहाल हुआ है। किसान आत्महत्या जैसी घटनाएँ इसी दौर में बढ़ी हैं।

भूमंडलीकरण पूरी तरह से पूंजीवाद का पोषक है। यही कारण है कि आज भारत जैसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी विषमताएँ पैदा हो गई हैं। अमीरी-ग़रीबी की खाई लगातार बढ़ रही है। इसने कल्याणकारी अर्थव्यवस्था को कमज़ोर किया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में खुलापन और प्रतिद्वंद्विता पर ज़ोर देने से पूंजी का पक्ष मज़बूत हुआ है जिससे अधिक से अधिक पूंजी निवेश हो रहा है। विदेशी निवेश के कारण घरेलू सामाजिक नियंत्रण काफ़ी कमज़ोर हो गए हैं। विदेशी निवेश का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मज़बूत हो।

हिन्दी समाचारपत्र और स्थानीय पत्रकारिता का एक पुराना इतिहास रहा है, जिसने स्वतंत्रता की लड़ाई से लेकर ग्लोबल पत्रकारिता तक का सफ़र तय किया है। स्वतंत्रता आंदोलन ने स्थानीय अख़बारों को उभरने का मौक़ा दिया जिनकी अपनी स्वायत्त और स्वतंत्र अभिव्यक्ति थी। इसने एक प्रकार की स्थानीय हिन्दी और भाषाई पत्रकारिता को जन्म दिया। मुद्रण के क्षेत्र में आधुनिक तकनीक ने समाचारपत्र क्रांति का काम आसान कर दिया। स्वाधीनता के पश्चात् समाचारपत्रों के क्षेत्र में कोई ख़ास विकास नहीं देखा गया। समाचार विश्लेषण में स्थानीय और क्षेत्रीय की जगह अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय महत्व की ख़बरों को स्थान दिया गया। विकास से जुड़ी ख़बरें व उससे जुड़े प्रश्नों को तरजीह दी गई। उस दौर में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि पत्रकारिता राजसत्ता के प्रति निष्ठावान थी। इसी कारण उस दौर की पत्रकारिता में साहसिक क़दम का अभाव बना रहा। हिन्दी समाचारपत्र इन सबके बावजूद पुष्पित-पल्लवित होते रहे। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी समाचारपत्रों में व्यावसायिक प्रवृत्ति हावी हो गई। समाचारपत्रों का प्रकाशन एक प्रकार से बड़ी पूंजी का खेल हो गया। आज़ादी के बाद हिन्दी समाचारपत्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। आज़ादी के बाद व्यावसायिक घरानों ने नए समाचारपत्रों का प्रकाशन शुरू किया और उनकी अपनी लाभप्रद नीतियों के कारण समाचारपत्रों में विज्ञापन का महत्त्व बढ़ने

लगा। हिन्दी समाचारपत्रों ने आज़ादी के बाद के प्रथम दौर में आर्थिक क्षेत्र में किए जानेवाले सरकारी प्रयासों को भरपूर समर्थन दिया। इस समय हिन्दी पत्रकारिता ने पूंजीवादी देशों के प्रति कड़ा रवैया अपनाया। लेकिन स्वतंत्रता के दो दशक बाद समाचारपत्रों का राजनीति से मोहभंग होने लगा था। राजनीतिक उठा-पटक, गुटबंदी, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही के कारण आर्थिक विकास लक्षित गति से नहीं हो पा रहा था। आज़ादी के बाद हिन्दी पत्रकारिता का बहुमुखी विकास हुआ। भाषा, शैली, अभिव्यक्ति की विविधता, समाचार प्रस्तुतीकरण, लेआउट आदि में बदलाव देखने को मिला। इस प्रकार पत्रकारिता एक व्यावसायिक उद्यम बन गया, जिसमें मुनाफ़ा कमाने की प्रवृत्ति आ गई। 1975 का साल पत्रकारिता के लिए संकट का दौर था। जनता में राजनीतिक असंतोष देखने को मिला, वहीं राजनीति में अराजकता भी अपने चरम पर थी, जिसका परिणाम आपातकाल के रूप में सामने आता है। इस दौर में बहुत कम समाचारपत्र ऐसे थे जिन्होंने सरकार का विरोध किया हो। आपातकाल के बाद का समय हिन्दी समाचारपत्रों के लिए क्रांतिकारी रहा है। 1979 में हिन्दी समाचारपत्रों ने प्रसार के मामले में पहली बार अंग्रेज़ी समाचारपत्रों को पीछे छोड़ दिया। उनमें नई प्रौद्योगिकी का प्रवेश होने लगा। बाज़ार के विस्तार से उनमें विज्ञापनों की संख्या भी बढ़ी जिसके कारण आर्थिक रूप से मज़बूत भी होने लगे। विज्ञापन और शिक्षा के प्रसार ने हिन्दी समाचारपत्रों की प्रसार-संख्या में वृद्धि की। हिन्दी समाचारपत्रों ने पाठकों की अभिरुचि और आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं को ढालना प्रारंभ कर दिया।

इसी समय राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था के पतन और पूंजी नियंत्रित अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई। देश की अर्थव्यवस्था को शेष विश्व की अर्थव्यवस्था से जोड़े जाने की पहल की जाने लगी थी। इस दशक में अर्थव्यवस्था राजकोषीय घाटे, विदेशी क़र्ज़, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार के कारण एक नए संकट की ओर बढ़ रही थी। 1991 तक आते-आते यह संकट गहरा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि 24 जुलाई, 1991 को भारत ने अंतरराष्ट्रीय दबाव में उदारीकरण की नीतियाँ लागू करने की औपचारिक घोषणा कर दी। मीडिया के साथ-साथ हिन्दी समाचारपत्रों ने भी मुक्त व्यापार की नीतियों को अपना भरपूर समर्थन दिया। इसके पीछे मुख्य रूप से दो कारण थे। पहला कारण हिन्दी समाचारपत्रों को देश में उदार नीतियों का विकल्प कुछ और नज़र नहीं आ रहा था और आर्थिक संकट के समाधान के लिए तत्काल अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहायता की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। दूसरे, आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के दुष्परिणाम सामने आने लगे थे। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह राय बनने लगी थी कि आर्थिक क्षेत्र में सरकार कुशल प्रबंधक साबित नहीं हुई है। अतः यह कार्य उसे निजी क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि भूमंडलीकरण में हिन्दी समाचारपत्रों को अपना हित नज़र आने लगा था। उन्हें भूमंडलीकरण में एक विशाल विज्ञापन राजस्व और उच्च प्रौद्योगिकी के द्वारा खुलने की संभावना दिखाई दे रही थी। 90 के दशक के पश्चात् हिन्दी समाचारपत्रों के

विश्लेषण से पता चलता है कि उसका अनुमान बहुत ग़लत नहीं था। हिन्दी समाचारपत्रों में विज्ञापन के फलस्वरूप राजस्व, मुनाफ़े और प्रसार-संख्या में बेतहाशा इजाफ़ा हुआ जो आज भी जारी है, और यह सब कहने की आवश्यकता नहीं कि उच्च तकनीक के प्रयोग से ही यह संभव हो पाया। समाचारपत्रों के अनेक संस्करण प्रकाशित किए जाने लगे और उनमें परस्पर गलाकाट प्रतिस्पर्धा होने लगी। उनकी अंतर्वस्तु से लेकर समाचार प्रस्तुतिकरण आदि में परिवर्तन हुआ और कलेवर में ग्लोबल रुझान प्रबल होने लगे।

आज देखा जाए तो मीडिया कारपोरेट जगत पर निर्भर हो गया है और उसी के हितों को आगे बढ़ाने वाला, उसी के इशारों पर चलने वाला मीडिया बन गया है। दिल्ली की पत्रकारिता यहाँ की गतिविधियों का दपर्ण है, जिसमें यहाँ की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों की अधिक से अधिक जानकारियाँ प्रेषित होती हैं। दिल्ली की पत्रकारिता में सबसे महत्त्वपूर्ण दौर 1857 से 1911 तक का है, जिसमें एक अलग फेज देखने को मिलता है। इस दौर की पत्रकारिता में गंगा-जमुनी तहज़ीब का मिला-जुला असर देखने को मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन के समय दिल्ली की पत्रकारिता देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत रही, वहीं समाचारपत्रों का प्रसार बहुत नहीं था पर उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। लेकिन उस दौर में भी पूरे देश की पत्रकारिता के साथ-साथ यहाँ की पत्रकारिता का दमन जारी था।

पत्रकारिता के इस चरम युग में स्थिति यह है कि गाँव व छोटे क़स्बों से शहरों की ओर पलायन लगातार बढ़ रहा है। पलायन करने वाले वे लोग हैं जो शहर में नौकरी कर अपनी गाढ़ी कमाई का हिस्सा गाँव भेजते हैं ताकि वहाँ की अर्थव्यवस्था को सुधारा जा सके। लेकिन इस परिदृश्य में कंपनियों की निगाह जब गाँवों पर गई तो उनको अपने मक़सद में लाभ नज़र आया। फिर तो समाचारपत्रों के माध्यम से कंपनियाँ गाँवों व क़स्बाई इलाक़ों में पहुँचीं और काफ़ी हद तक सफल भी रहीं। इतना ही नहीं, समाचारपत्रों की भूमिका इस तरह दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई कि वह सूचना और मनोरंजन के साथ-साथ उपभोक्ता संस्कृति को भी बढ़ावा देने लगे। यही कारण है कि क्षेत्रीय समाचारपत्र अपनी सत्ता क़ायम करने में सफल रहे हैं। जबकि केन्द्र के समाचारपत्र इस योजना में उतने सफल नज़र नहीं आते हैं। आज समाचारपत्र स्थानीय जनता की समस्या पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। विदित है कि आज समाचारपत्रों के माध्यम से जिस प्रकार की सूचनाएँ जनता तक पहुँचाई जा रही हैं उससे एक ख़ास प्रकार का उपभोक्ता वर्ग उसने तैयार कर लिया है। ऐसे में देखने में आ रहा है कि आज जाने-अनजाने भूमंडलीकरण के दौर में समाचार भी एक उपभोग की वस्तु बन चुका है। उदाहरण के तौर पर पिछली बार, एक राज्य के ग्रामपंचायत चुनाव में सभी समाचारपत्रों में एक ही तरह की ख़बर छाई हुई थी कि किस गाँव में कितनी शराब और पैसे मतदाताओं को बाँटे गए और मतदाताओं को कैसे प्रभावित किया गया। लेकिन ग्रामपंचायत के उद्देश्यों और विकास की ख़बरों को किसी भी हिन्दी भाषी समाचारपत्र ने

प्रमुखता नहीं दी। अमूमन ऐसी ख़बरों के बारे में संपादकों को कहते सुना जाता है कि पाठक यही पसंद करते हैं। इस प्रकार इन अख़बारों को भारत की ग़रीबी और ग़रीब जनता की मूलभूत समस्याओं से कुछ लेना-देना नहीं, उनकी नज़र में वे उनके द्वारा विज्ञापित वस्तुओं के संभावित उपभोक्ता हैं। इस तरह स्थानीयता की आड़ में बाज़ार का विस्तार जारी है। समाचारपत्रों के लिए स्थानीयता भी एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। यही कारण है कि आज एक स्थान से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों के अनेक संस्करण निकलने लगे हैं। राष्ट्रीय स्तर के समाचारपत्र भी स्थानीयता की तरफ़ रुख़ कर रहे हैं। पर ये क्यों और कैसे स्थानीय बन रहे हैं यह भी चिंता का विषय है। निस्संदेह भूमंडलीकरण के इस दौर में स्थानीय समाचारपत्रों का महत्त्व बढ़ा है, लेकिन स्थानीय स्तर के समाचारपत्र संसाधनों के अभाव में सिमटते जा रहे हैं जो एक चिंता का विषय बना हुआ है।

नब्बे के दशक में देश के भीतर मीडिया में आमूल-चूल परिवर्तन देखा गया। समाचारपत्र के लगभग हर क्षेत्र को इस बदलाव की धारा से गुज़रना पड़ा। विज्ञापन-नीति में बदलाव के चलते समाचारपत्रों ने अपनी क़ीमत जिस तरह घटाई वो अब भी जारी है। यही वह दौर था जब देश में पाठकों की संख्या तेज़ी से बढ़ी। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव के चलते पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के उलट भारत में समाचारपत्रों के पाठकों की संख्या लगातार बढ़ी। कभी जो समाचारपत्र ब्लैक एंड व्हाइट प्रकाशित होते थे, अब उनके पन्ने रंगीन होने लगे। परिशिष्टों की संख्या में इजाफ़ा हुआ और इन सबका कारण कहीं ना कहीं समाचारपत्रों के राजस्व के मॉडल से जुड़ा था। लेआउट को आकर्षक बनाने की तरफ़ लगभग हर समाचारपत्र ने ध्यान दिया और पुराने तौर-तरीक़ों के बदले आकर्षक और एक हद तक आक्रामक लेआउट को पाठकों के सामने परोसा गया। कई छोटे-मझोले साइज के समाचारपत्र इस दौरान बड़े बन गए। उद्योग के कुल राजस्व में बेतहाशा वृद्धि दर्ज की गई। भूमंडलीकरण के बाद उदारीकृत अर्थव्यवस्था का असर समाचारपत्रों पर भी देखा गया और प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश को इसी दौरान मंजूरी मिली। विदेशी निवेशकों के आने से मीडिया में आए विविध बदलावों को देखा गया। इस बदलाव के तहत यह भी देखा गया कि 'हिंदुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' जैसे बड़े मीडिया घरानों ने एक ही समाचारपत्र के अनेक क्षेत्रीय संस्करण शुरू किए और विज्ञापन हासिल करने के लिए ये संस्करण इन घरानों के लिए किस तरह उपयोगी साबित हुए। भूमंडलीकरण की अवधारणा के उलट इस दौरान ज़्यादातर समाचारपत्रों के विविध संस्करणों में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ख़बरों के बजाए स्थानीय ख़बरों को अहमियत दी गई। प्रसार के मामले में आगे रहने के बावजूद हिंदी समाचारपत्र विज्ञापन के मामले में अंग्रेज़ी समाचारपत्रों से क्यों पीछे हैं और भूमंडलीकरण के बाद के बदले परिदृश्य वाले इस देश में इसके क्या मायने हैं? जब इन तथ्यों की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि भूमंडलीकरण के ज़रिए आज हिन्दी समाचारपत्र भी एक उद्योग बन चुका है। जिस प्रकार एफ़डीआई अन्य क्षेत्रों में खोली गई

उसी प्रकार समाचारपत्र उद्योग में खोलकर एक प्रकार से इसे मुनाफ़े का धंधा बना दिया गया और मुनाफ़ा कमाने की होड़ में आमजन के सरोकारों को भूल कर यह ग्लोबल हो गई है। अगर हम 1991 के समय का समाचारपत्र देखें तो प्रथम पृष्ठ पर ज़्यादातर ख़बरें भारत की समस्या या दुख-दर्द से संबंधित होती थीं, जैसे- 4 नवम्बर, 1991 में 'नवभारत टाइम्स' के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित समाचार आकाशवाणी अधिकारी का अपहरण, दिल्ली में फैलता सुरातंत्र का जाल आदि इन समाचारों में अपने मुल्क की समस्या है पर आज के समय में ऐसी ख़बरें किसी छोटे कालम में जगह पाती हैं। विद्वानों ने भूमंडलीकरण को अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने विश्व स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक, तकनीक व पर्यावरण को बदलने में मुख्य भूमिका ही नहीं निभाई है, बल्कि इसने समूचे विश्व को आपस में जोड़ दिया है। एक साझा मंच प्रदान किया है। भूमंडलीकरण के कारण आज आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में विचारों, सूचनाओं, मानव संसाधन से नई वस्तुओं व पूंजी का आदान-प्रदान संभव हुआ है, साथ ही इसने आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों को परस्पर जोड़ा भी है। भूमंडलीकरण की ही देन है कि आज हिन्दी समाचारपत्रों का विस्तार बढ़ा है और इस क्षेत्र को गति मिली है। प्राचीन समय में लोग पत्र लिखकर सूचनाओं का आदान-प्रदान करते थे। मगर एक राज्य को दूसरे राज्य के विषय में कोई जानकारी नहीं होती थी। प्रेस की उत्पत्ति इस दिशा में कारगर साबित हुई। प्रेस का उदय भी सूचना क्रांति के बाद ही हुआ और इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सका। समाचारपत्रों ने प्रचार-प्रसार में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया। भूमंडलीकरण के कारण ही पत्रकारों के मध्य एक तंत्र विकसित हुआ जिसके चलते सूचना के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव आया। यह भूमंडलीकरण ही था जिसके कारण किसी भी सूचना का संप्रेषण समय पर संभव हो पा रहा है। भूमंडलीकरण के कारण सूचना की क़ीमत में कमी हुई तो इससे सूचनाओं का आदान-प्रदान विश्व स्तर पर आसान हो गया। भूमंडलीकरण ने सबसे पहले अपने साधन के रूप में समाचार माध्यमों को लक्ष्य बनाया और इसी के बल पर अपना विस्तार किया। अख़बारों में लोगों की आज भी आस्था है, पर इनका स्वरूप बदल रहा है, स्थानीय से ग्लोबल हो रहे हैं। सन् 2008 के बाद लगभग सभी समाचारपत्रों ने ऑनलाइन संस्करण शुरू कर दिए हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि आनेवाले समय में ऑलनाइन संस्करण का प्रभाव बढ़ेगा। समाचारपत्रों की दुनिया में यह बड़ा बदलाव है और तकनीक संपन्न समाचारपत्र ही इस क्षेत्र में टिक पाएँगे। इसे भूमंडलीकरण के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। जो छोटे समाचारपत्रों के लिए ख़तरे का विषय भी है। पूंजीवादी व्यापार के तौर-तरीक़ों और लाभ कमाने की होड़ ने हिन्दी समाचारपत्रों को अपनी गिरफ़्त में ले लिया है, आज इससे क़तई इनकार नहीं किया जा सकता। यह शुद्ध रूप से मुनाफ़ा कमाने का उद्योग बन गया है।

1990 में समाचारपत्रों में वर्गीकरण की शुरुआत से पहले पाठकों और उसके

उपभोक्ताओं में कोई वर्गीकरण देखने को नहीं मिलता है। यह वर्गीकरण 90 के बाद ही देखने को मिलता है, जैसे-हर वर्ग की आय को केन्द्र में रखकर समाचारपत्रों का प्रकाशित होना जो एक तरह से भूमंडलीकरण की ही देन है। भूमंडलीकरण के दौर के बाद दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले दैनिक समाचारपत्रों की छपाई की नई तकनीक के आगमन से समाचारपत्रों में रोजगार की स्थितियों में बदलाव आया है। अब हाट मेटल प्रिंटिंग की जगह ऑफ़सेट प्रिंटिंग मशीनों ने ले लिया है। 1991 में भी बहुत कम अख़बार थे जो अपने रंगीन पृष्ठ छापते होंगे। उस समय तक समाचारपत्र ब्लैक एंड व्हाइट ही छपते थे, विशेषांक पृष्ठ रंगीन छपते थे। बहुत से अख़बारों के पास इस तरह के साधन नहीं थे कि वह रंगीन पृष्ठ छापें। 1995-1996 में जब कम्प्यूटर और आफ़सेट प्रिंटिंग मशीन का तेज़ी से आगमन हुआ तो रंगीन छपाई की दृश्य माध्यमों से प्रतिस्पर्धा होने लगी और अख़बारों में विज्ञापनों के चित्रों के साथ-साथ तस्वीरें छपने लगीं। उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर ज़्यादा पृष्ठ के अख़बार मिलने शुरू हुए। और यह सब विज्ञापनदाताओं की ओर से मिल रही रियायतों और मालिकों के दूसरे मुनाफ़े के व्यापारों के कारण ही संभव हो सका। सब मिलाकर यह कह सकते हैं कि विज्ञापन के बढ़ने से अख़बार तो ज़्यादा पृष्ठ के हुए पर सामग्री में कोई ख़ास इजाफ़ा नहीं हुआ। हाँ, यह ज़रूर हुआ कि उसकी साज-सज्जा में भारी परिवर्तन आया। 1991 में भारत में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की नीतियों के साथ संचार क्रांति का आगमन भी हुआ, जिसने समाचारपत्रों की साज-सज्जा को लेकर आवरण और समाचार तक को प्रभावित किया। उन दिनों दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दो बड़े समाचारपत्रों 'हिन्दुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' के कलेवर पर भी भूमंडलीकरण का प्रभाव पड़ा। 'हिन्दुस्तान' 1991 में 12 पृष्ठों का ब्लैक एंड व्हाइट समाचारपत्र हुआ करता था। सप्ताह में रविवार के दिन 'रविवासरीय' प्रकाशित होता था। आज यह 24 पृष्ठों का रंगीन समाचारपत्र है। आज 'नवभारत टाइम्स' दिल्लीवासियों के लिए ख़ास समाचारपत्र माना जाता है। जो दिल्ली की संस्कृति में रच बस गया उसे यह अख़बार बहुत पसंद आता है। इस समाचारपत्र का अपना कल्चर है जिसने एक बहुत बड़े वर्ग को प्रभावित किया है। 'नवभारत टाइम्स' ने दिल्ली में पहली बार पूर्णकालिक संवाददाता रखने की परंपरा की शुरुआत की थी। यही कारण था कि वह 'हिन्दुस्तान' के समानान्तर बहुत जल्द खड़ा हो गया।

भूमंडलीकरण के बाद हार्ड न्यूज़ का प्रचलन घटा और सॉफ्ट न्यूज़ का प्रचलन बढ़ा है। यह बात आमतौर पर देखने को मिलती है। यही नहीं बल्कि ख़बरों की जगह अब सनसनी और भ्रामक तथ्य समाचारपत्रों में परोसे जाने लगे हैं। क्रिकेट और फ़िल्मी ख़बरें ज़्यादा छपने लगीं। इस दौर में हिंदी का प्रभाव भी बढ़ा है। यह प्रभाव सबसे अधिक समाचारपत्रों में देखने को मिलता है। फ़िल्म की तरह प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री भी चमकीली हो गई है। लेकिन इस उद्योग की चमक में अच्छे पत्रकारों की कमी भी दिखती है। आज वही

पत्रकार मीडिया हाउस में टिक पाता है जो मीडिया हाउस के लिए व्यवसाय कर सके या फिर उसके अनुरूप काम करे। गाँव में भी जिन पत्रकारों की नियुक्ति होती है उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे कितना विज्ञापन जुटा सकते हैं और समाचार भी। ऐसी स्थिति में क्षेत्र का पत्रकार पत्रकारिता कम और विज्ञापन जुटाने में अधिक लगा रहता है। उसी विज्ञापन के कमीशन से उसे पगार भी मिलती है। इस तरह के प्रचलन ने ख़ासकर हिन्दी पत्रकारिता को नुक़सान पहुंचाया है। इस प्रकार दिल्ली से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' के विवेचन व अवलोकन से यह बात निकल कर आती है कि भूमंडलीकरण के दौर में समाचारपत्र के लेआउट से लेकर समाचारपत्रों के प्रस्तुतिकरण व भाषा तक में बदलाव आया जिसकी ज़रूरत बाज़ार की ज़रूरत थी।

भूमंडलीकरण के दौर के बाद विज्ञापन पर लगातार बढ़ती निर्भरता और इसके प्रभाव-क्षेत्र की चपेट में आई समाचार सामग्रियों के आर्थिक मॉडल के साथ-साथ इसके राजनैतिक गठजोड़ को समझना भी अपने-आप में दिलचस्प है। विज्ञापन की आर्थिक चाहरदीवारी से निकलकर इस गठजोड़ को पत्रकारिता में हुए बदलाव के साथ जोड़कर देखा जाना ही बेहतर होगा। अध्ययन के दौरान इसके व्यापक नतीज़े देखने को मिले हैं। देखने को यह भी मिला कि लैंगिक तौर पर बँटे समाज में पितृसत्ता के साथ प्रिंट मीडिया के संबंध और स्त्रियों के प्रति मीडिया, ख़ासकर हिंदी समाचारपत्रों का नज़रिया भी कई बार बाज़ार से प्रभावित नज़र आता है।

समाचारपत्रों की विषय वस्तु के चयन और प्रोडक्ट पर सभी चर्चा करते हैं मगर इसके महत्त्वपूर्ण पहलू सर्कुलेशन वाले हिस्से पर सामान्यतः कम ध्यान दिया जाता है, जबकि अकादमिक तौर पर भूमंडलीकरण के बाद से यह बेहद ज़रूरी हिस्सा बन गया है जो सीधे तौर पर विषय की सामग्री से जुड़ा हुआ है। ध्यान देने की ज़रूरत है कि समाचारपत्रों के आर्थिक मॉडल में विज्ञापन और सब्सक्रिप्शन मूल्य के अनुपात में आए बदलाव के बाद से अध्ययन व विवेचन की ज़रूरत पिछले दो दशकों से लगातार महसूस की गई है, क्योंकि आज की पत्रकारिता सिद्धांत, नैतिकता, आचार संहिता आदि मूल्यों के विपरीत है। जहाँ तक दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख हिंदी समाचारपत्रों पर भूमंडलीकरण के प्रभाव की बात है तो 1991 में पीवी नरसिंहा राव की सरकार के समय भारत में भूमंडलीकरण की नींव पड़ी थी। इसकी शुरुआत कुछ विद्वान राजीव गांधी की सरकार के समय से मानते हैं। भूमंडलीकरण को एक भ्रामक संज्ञा माना जाता है जिसका एकाधिकारवाद पर ज़्यादा जोर है। इसका समाचारपत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा, इसके समानांतर संचार और मुद्रण का विकास भी हुआ। इन दोनों के परिणामस्वरूप समाचारपत्र एक व्यापार बन गया है। भूमंडलीकरण के पश्चात् जब बड़ी पूंजी की आवश्यकता हुई तो समाचारपत्रों को लेकर स्वामित्व का चरित्र भी बदला। 2002 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने प्रिंट मीडिया में विदेशी पूंजी निवेश के लिए जो दरवाज़े खोले उससे समाचारपत्र का चरित्र पूरी तरह से

बदल गया। भूमंडलीकरण के दौर के बाद स्थानीय स्तर पर अच्छा, बुरा जो भी घटित हो रहा है, आमजन तक इस ख़बर को पहुँचाने में दिल्ली के समाचारपत्र सबसे अधिक सक्रिय और प्रभावशाली हैं। लेकिन ख़बर करने की इस गति में समाचार के मुख्य तत्त्व ही ग़ायब हो जाते हैं। दिल्ली के संदर्भ में देखा जाए तो यहाँ से प्रकाशित होने वाले प्रायः सभी समाचार अपने उपभोक्ताओं की अनदेखी करते हुए साम्राज्यवादी व्यवस्था के तौर पर अपना प्रसार कर रहे हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि पिछले कई वर्षों में बदलाव के कारण ही दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों का कलेवर पूंजीवादी ताक़तों के हित के अनुरूप परिवर्तित हो गया है। समाचारपत्रों के प्रथम पृष्ठ पर एक ख़ास तबके को जगह मिल रही है। उनके मनोरंजन के लिए रंगीन पृष्ठों के माध्यम से अश्लीलता परोसी जा रही है जिससे समाचारपत्रों के स्तर में निरंतर गिरावट देखने को मिल रही है। इसके पीछे निश्चित रूप से पूंजी का दबाव काम कर रहा है। यही कारण है कि आज दिल्ली के हिंदी समाचारपत्रों में विज्ञापन पाने की होड़ मची रहती है। समाचारपत्रों में विदेशी पूंजी के निवेश ने उनकी नैतिकता को भ्रष्ट कर दिया है और इसके माध्यम से साम्राज्यवादी ताक़तों का वर्चस्व बढ़ा है। ख़बरों पर अगर नज़र डालें तो आज हम पाते हैं कि उन ख़बरों को ज़्यादा कवरेज मिलता है जिन ख़बरों से अख़बार में विज्ञापनदाता को फ़ायदा होता है, जैसे- पर्सनालिटी, क्रिकेट आदि की ख़बरें, संपादक इन ख़बरों में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जो मैनेजमेंट तय करता है, वही छपता है। दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख समाचारपत्र 'हिन्दुस्तान' एवं 'नवभारत टाइम्स' में भूमंडलीकरण के प्रभाव के क्षेत्र व्यापक हैं। समाचारपत्रों में एक अघोषित आचार संहिता का निर्धारण और अनुपालन संस्था पिछले सदी से ही करती आ रही है। इस तरह साफ़ तौर पर दिखता है कि समाचारपत्र का संपादक या संस्था धीरे-धीरे अपने पतन की ओर अग्रसर हैं। आज मिर्च-मसाले वाली गपशप, ग्लैमर, नग्नता, फ़ैशन शो, कामोत्तेजक सामग्री, सौन्दर्य कंपटीशन, फ़िल्मी सितारों, मॉडलों, क्रिकेटरों जैसी ही अन्य शख़्सियतों के निजी जीवन से संबंधित फ़ोटो का समाचारपत्रों में प्रकाशन बढ़ा है।

भूमंडलीकरण से पहले समाचारपत्रों पर ग़ौर करें तो प्रथम पेज पर ख़बरों की संख्या अधिक होती थी और उनमें विविधता देखने को मिलती थी। लेकिन वहीं भूमंडलीकरण के दौर के बाद प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित ख़बरों को देखा जाए तो समाचारपत्रों के पन्ने तो बढ़े हैं, समाचारपत्र भारी हुए हैं, पर ख़बरें उस मात्रा में नहीं हैं। जैसे-जैसे रेवेन्यू बढ़ा है, वैसे-वैसे यह समाचारपत्र भारी होते गए हैं और अन्तर्वस्तु हल्की होती गई है। समाचारपत्रों में सूचना के मामले में आज विश्वसनीयता का संकट है। समाचारपत्र की विश्वसनीयता को बाज़ार ने प्रभावित किया है। समाचारपत्रों ने अपना सर्कुलेशन बढ़ाने के लिए समाचार की भाषा में भी बदलाव किए हैं। भूमंडलीकरण के दौर के बाद समाचारपत्रों की अंतर्वस्तु को एक तरह से क्रिएट किया जाने लगा है। आज जो ख़बर है वह ख़बर नहीं है, और जो ख़बर

नहीं है, उसे ख़बर बनाया जा रहा है। एक तरह से ख़बर का उत्पादन अपने ढंग से तथा पाठक की क्रय शक्ति को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। मुख्यतः जो ख़बरों में बने रहने के वास्तविक अधिकारी हैं या जिन विषयों को ख़बर बनाया जाना चाहिए उनको समाचार मीडिया ने हाशिए पर धकेल दिया है।

1991 के समाचारपत्रों का अवलोकन करने पर यह देखने को मिला कि उस दौर की पहली लीड ख़बर, दूसरी लीड ख़बर, तीसरी लीड ख़बर को अख़बार प्रमुखता से छापते थे लेकिन वर्तमान समय में एक या दो ख़बरों को प्रमुखता से छापा जाता है। ज़्यादातर समाचारपत्रों में प्रथम पृष्ठ पर एक ही ख़बर को प्रमुखता से छापा जाता है और अतिरिक्त जगह पर विज्ञापन पटे होते हैं। इस तरह का प्रचलन हिन्दुस्तान समाचारपत्र, नवभारत टाइम्स दोनों में देखने को मिलता है।

भूमंडलीकरण ने समाचारपत्रों की अंतर्वस्तु को कमज़ोर और विज्ञापनों को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बना दिया है। समाचारपत्र सरोकारविहीन हुए हैं। हाशिए का समाज चाहे वह दलित, अल्पसंख्यक, किसान और स्त्री ही क्यों न हो, उनकी आवाज़ को दबा दिया जाता है। बाज़ारीकरण के चपेट में स्त्री सबसे पहले आती है। रोज़मर्रा के हर सामान को बेचने के लिए विज्ञापन में स्त्री का सहारा लेकर स्त्री को टार्गेट किया जाता है। बाज़ार और उपभोक्ता के बीच हमेशा स्त्री होती है। समाचारपत्रों के पृष्ठों पर डियोड्रेंट के विज्ञापन में भी स्त्रियों को कामुक दिखाकर पुरुषों को बॉडी परयूम बेचा जाता है। इस तरह आज स्त्री पूरी तरह से उपभोग और उपभोक्ता की चक्की में पिस रही है। आज बाज़ार स्त्री को उपभोग और उपभोक्ता के सांचे में देखता है। आज अधिकतर विज्ञापनों का मुख्य पात्र स्त्री को बनाया जाता है। मीडिया भी स्त्री-छवि को उपभोक्तावाद की संस्कृति के लिए सही ठहरा रहा है और दिनोदिन बाज़ार का वर्चस्व क़ायम होता जा रहा है।

समाचारपत्रों की सफलता उसके प्रबंधकों के कुशल संचालन एवं प्रबंधन पर निर्भर करती है। किसी भी समाचारपत्र को चलाने के लिए एक सुगठित प्रबंधन की आवश्यकता पड़ती है। कहा जा सकता है कि प्रबंधन-नीति एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत प्रबंधक समाचारपत्र को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए नीतियाँ बनाते हैं। भूमंडलीकरण के बाद मार्केटिंग शब्द का प्रचलन तेज़ी से बढ़ा है। मार्केटिंग यानी एच.आर. विभागों में वेतन में बेशुमार बढ़ोतरी हुई है लेकिन नीचे के कर्मचारियों के वेतन में कोई विशेष इजाफा नहीं हुआ। यह भी देखा गया कि जिन लोगों का प्रोडक्शन (उत्पादन) में कोई हाथ नहीं होता, उनका सिर्फ़ आइडिया बिकने के कारण उनकी मांग बढ़ी है।

आज भूमंडलीकरण की आँधी के बीच समाचारपत्रों को बाज़ार की वस्तु के रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। समाचारपत्रों में प्रबंधन के बढ़ते ज़ोर से ही संपादक नाम की संस्था का महत्त्व कम हो गया है। जहाँ संपादक संस्था मौजूद है वहाँ या तो वह निष्क्रिय है या उसके कार्यों, अधिकारों और हस्तक्षेप का दायरा घटता जा रहा है। ज़ाहिर है जब

मामला बाज़ार या व्यवसाय का हो तो प्रबंधन की आवश्यकता, उपादेयता और महत्त्व निरंतर बढ़ता ही जाएगा।

संपादक नामक संस्था उदारीकरण के बाद बेहद कमज़ोर हुई है। ज़्यादातर मालिक जब संपादक बन बैठेंगे तो ज़ाहिर सी बात है वे अपने हित व मुनाफ़े की सोचेंगे। भूमंडलीकरण के बाद संपादक की परिभाषा ही बदल गई है। एक संपादक वह है जिसका समाचारपत्र के उत्पादन से सीधा संबंध होता है, दूसरा वह है जो ब्रांड संपादक होता है जिसका उत्पादन से कोई लेना-देना नहीं होता, पर उसका महत्त्व इसलिए बढ़ जाता कि वह अख़बार को बेचना जानता है। जबकि समाचारपत्र के लिए संपादन का वही महत्त्व है जो शरीर के लिए भोजन, जल तथा अन्य आवश्यक तत्त्वों का होता है। संपादक किसी भी समाचारपत्र संस्थान के संपादकीय विभाग के शीर्ष पद पर होता है। वह स्वयं द्वारा तय किए गए संस्थान के मिशन और दर्शन के आधार पर निर्णय लेता है कि उसके प्रकाशन में क्या जाना चाहिए और क्या नहीं। संपादक को केवल समाचारों का संकलन, संपादन और व्याख्या ही नहीं करनी पड़ती बल्कि वह अपने समाचारपत्र के माध्यम से अपने विचार भी प्रकट करता है। उसके विचारों अथवा दृष्टिकोण से सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं पर काफ़ी हद तक प्रभाव पड़ता है। आज समाचारपत्रों का संपादकीय पक्ष कमज़ोर होता जा रहा है। उसका स्तर गिरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण समाचारपत्रों पर मैनेजिंग एडिटर (प्रबंध संपादक) का प्रभुत्व बढ़ जाना है। आए दिन सुनने में आता है कि मालिकों का संपादकीय विभाग में दख़ल बढ़ रहा है। इसके बावजूद आज समाचारपत्र के सफल प्रकाशन के पीछे कुशल संपादकीय नीति ही है अगर वह न हो तो समाचारपत्र तो क्या, विज्ञापन का भी प्रकाशन मुश्किल हो जाए।

भूमंडलीकरण ने जहाँ एक ओर समाचारपत्रों की विश्वसनीयता के लिए एक बड़ा संकट पैदा कर दिया है वहीं दूसरी ओर विज्ञापनों के चलते इसकी आर्थिक स्थिति भी मज़बूत हुई है। समाचारपत्र के लिए समाचार सबसे महत्त्वपूर्ण होते हैं। समाचारपत्रों की आर्थिक स्थिति समाचारों पर निर्भर करती है क्योंकि जिन समाचारपत्रों की पाठक-संख्या अधिक और बाज़ार में माँग होती है उन्हीं समाचारपत्रों को विज्ञापनदाता या कंपनी वाले अपने उत्पाद का विज्ञापन देना पसंद करते हैं। विज्ञापनों का उद्देश्य ही होता है कि विज्ञापित उत्पाद के विक्रय के लिए ग्राहकों का ध्यान खींचना, उन्हें उत्पाद खरीदने के लिए प्रेरित करना, जो तभी संभव है जब समाचारपत्र पाठकों में लोकप्रिय हो। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाचारपत्र विज्ञापित वस्तुओं के प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, वहीं दूसरी ओर विज्ञापन के प्रकाशन से समाचारपत्रों की भी आर्थिक स्थिति मज़बूत होती है।

विचारणीय है कि भूमंडलीकरण के दौर में एक ही भाषा का वर्चस्व बढ़ा है यानी अंग्रेज़ी का। हिन्दी के समाचारपत्र अंग्रेज़ी समाचारपत्रों को फॉलो करते हैं, इस कारण भी यह स्थिति देखने को मिल जाती है। मुख्यधारा के हिन्दी समाचारपत्र मुख्य रूप से शहरी

मध्यवर्ग के पाठकों को ध्यान में रखकर अपने इस व्यापार का ताना-बाना बुन रहे हैं। आज समाचारपत्र एक ख़ास वर्ग के पाठकों के प्रतिनिधि बनकर रह गए हैं, ख़बरों का प्रकाशन उन्हीं के इर्द-गिर्द सिमट गया है। दिल्ली के समाचारपत्रों में लेआउट दिनों-दिन सुंदर हुए हैं, मगर भाषा और विषय-वस्तु पर कोई ध्यान नहीं दिया गया जिस कारण इन दोनों में गिरावट देखने को मिलती है।

किसी भी समाचारपत्र के लिए भाषा महत्त्वपूर्ण होती है, साथ ही उसका लेआउट भी उतना ही महत्त्व रखता है। समाचारपत्र का लेआउट और डिजाइनिंग जिसके तहत विषयवस्तु को फोटो और सामाचार सामग्री आदि के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें एक निरंतरता और लयबद्धता देखने तथा पढ़ने में आए, जिसको देखकर पाठक समाचारपत्र ख़रीदने के लिए आकर्षित हो। किसी भी विषयवस्तु या फोटो के कई अर्थ हो सकते हैं जिसकी छवि पाठक के मन पर अलग-अलग तरह की होती है।

1991 में भारत में भूमंडलीकरण ने अपना विस्तार करना शुरू किया जिसके के बाद समाचारपत्रों के क्षेत्र में पूंजी, तकनीक और सूचना का प्रवाह तेज़ हुआ। कम्प्यूटर, इंटरनेट और लेजर छापामशीन के आने से समाचारपत्रों के लेआउट पर ज़्यादा ध्यान दिया जाने लगा। कम्प्यूटर के आने से समाचारपत्रों में लेआउट को लेकर प्रतिस्पर्धा बढ़ी, सभी समाचारपत्रों ने सुन्दर दिखने के लिए अपना रंग-रूप बदलना शुरू कर दिया। तकनीकी और सूचना के क्षेत्र में आई क्रांति के साथ ही समाचारों के तेवर और समाचारपत्रों की साज-सज्जा भी बदली। मुद्रण-व्यवस्था पहले से ज़्यादा समृद्ध हुई। रेमिंग्टन टाइपराइटर की जगह अब कम्प्यूटर का प्रयोग होने लगा। गुणवत्ता की यदि बात की जाए तो डिज़ाइनिंग, लेआउट, विषयवस्तु और पेपर क्वालिटी में भी सुधार आया। नब्बे के दशक में समाचार पत्रों के रंगीन पृष्ठ वाले रविवारीय और रविवासरीय सप्लीमेंट भी प्रकाशित हुए, जिसके विषय में यह कहा जाता है कि उसकी वज़ह से पाठक-संख्या में बढ़ोतरी देखने को मिली।

भूमंडलीकरण के आने से नया बाज़ार आया, नए उत्पाद आए और एक यंत्र की तरह समाचारपत्र काम करने लगे। इसी दौरान पेड न्यूज या भुगतानशुदा ख़बरों का चलन भी शुरू हुआ। इस तरह के समाचारों ने समाचारपत्र के कंटेंट को गहराई से प्रभावित किया। किसी भी समाचारपत्र में ख़बरों के हिसाब से उसका चयन और स्थान-निर्धारण अपने आप में महत्त्वपूर्ण कार्य होता है, क्योंकि राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक ख़बरों के साथ-साथ खेल, फ़िल्म तथा प्रादेशिक, क्षेत्रीय और स्थानीय ख़बरें प्रमुखता से सही जगह छपें, यह काफ़ी मायने रखता है। इसलिए समाचारों के स्थान तय करने में संपादक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लेकिन आज संपादकों के कमज़ोर या अधिकार कम होने के कारण प्रबंधकों का दबाव क़ायम होता जा रहा है, जिससे समाचारपत्रों के कंटेंट भी प्रभावित हो रहे हैं।

उपरोक्त तमाम बातों के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण का सबसे

अधिक प्रभाव समाचारपत्र की प्रकृति पर पड़ा। एक तरफ़ इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का डर सता रहा था, तो दूसरी तरफ़ भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद अपना दबाव बढ़ाने में लगा था। यह समाचार-जगत् में संशय और संघर्ष की स्थिति थी जिससे मुक्ति पाने के लिए कई आयामों से जुड़ना समाचारपत्रों के लिए ज़रूरी हो गया था। आज यही कारण है कि अपने हालातों से निपटने के लिए समाचारपत्र अपने चरित्र के उलट औसतन चालीस फीसदी से भी अधिक विज्ञापन छापने लगे हैं। उनका पूरी तरह विज्ञापन-उद्योग पर निर्भर होना और विज्ञापन पाने की होड़ में अपनी प्रसार-संख्या को बढ़ाने के लिए 'मैटेरियल' की जगह 'पैकेजिंग' पर विशेष ध्यान देना मूल उद्देश्य बन गया है, क्योंकि आज देश की जनसंख्या का चालीस फीसदी युवा पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है और यही अखबारों की दृष्टि में पाठक वर्ग भी है। वहीं, आधुनिकता और विकास की अंधी दौड़ ने भी लोगों के पास समय कम छोड़ा है जिसके कारण पाठक गूढ़ खबरों की जगह सतही खबरों को ज़्यादा पढ़ने लगा है।

यह भूमंडलीकरण का ही नतीजा है कि आज पूरे विश्व में अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व बढ़ा है जिससे अनुवाद के क्षेत्र में विस्तार हुआ है, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय समाचारों को हिन्दी में बनाने के लिए अंग्रेज़ी की महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अनुवाद की वजह से भाषाई दूरियाँ भी ख़त्म हुई हैं और इससे एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति के क़रीब लाने में जो मदद मिली है उससे निस्संदेह एक दूसरे के बीच सहज संवाद स्थापित हुआ है। इस तरह देखा जाए तो आज 'नवभारत टाइम्स' और अन्य समाचारपत्रों में अंग्रेज़ी के शब्दों का जो प्रयोग धड़ल्ले से बढ़ा है, वह ग्लोबलाइजेशन की ओट में अगर एक तरह का सांस्कृतिक विस्तार है तो हिन्दी भाषा के अंतर्गत इस विस्तार में एक सांस्कृतिक हमला भी नज़र आता है।

सहायक ग्रंथ :-

- अरविन्द, साम्राज्यवादी वैश्वीकरण भारत पर एक अभूतपूर्व हमला, गार्गी प्रकाशन, सं. 2002.
- ओझा, लाल बहादुर, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, दिल्ली, छत्तीसगढ राज्य हिंदी अकादमी, प्र.सं., 2011.
- कमलनाथ, भारत की शताब्दी, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं., 2010.
- कावरा, कमल नयन, भूमंडलीकरण : विचार, नीतियां और विकल्प, प्रकाशन संस्थान, सं., 2005.
- कुमार, कृष्ण, उन्मादी संस्कृति की रचना, संकलित, समकालीन पत्रकारिताः मूल्यांकन और मुद्दे, संपादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, प्र.सं., 2009.
- खेतान, प्रभा, भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, सामायिक प्रकाशन प्र.सं., 2007.
- जेफ्री, रोबिन, भारत में समाचारपत्र, भारतीय जनसंचार संस्थान, (अ.), प्र.सं., 2004.

- जोशी, रामशरण, मीडिया मिथ और समाज, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं., 2007.
- जोशी, पी.सी. संस्कृति विकास और संचार क्रांति, ग्रंथ शिल्पी, 2002.
- जैन, नीरज, वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण, गार्गी प्रकाशन, प्र.सं., 2004.
- जोशी, प्रभाष, कहने को बहुत कुछ था, शर्मा, सुरेश (सं.) राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2014.
- जोशी, प्रभाष, 21वीं सदी पहला दशक, शर्मा, सुरेश (सं.) राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2010.
- झिंगरन, प्रभु, टेलीविज़न की दुनिया, भारत बुक सेंटर, सं., 2001.
- दास, अरविंद, हिन्दी में समाचार, अंतिका प्रकाशन, प्र.सं., 2013.
- दुबे, अभयकुमार, संपादक, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, दू.सं., 2003.
- पांडेय, व्रज कुमार व राय, दीपक कुमार, भूमंडलीकरण, विविध आयाम, विनोद बुक सेंटर, प्र.सं., 2008.
- पंत, पुष्पेश, भूमंडलीकरण, प्रकाशन विभाग, प्र.सं., 2009.
- पटनायक, प्रभात, साम्राज्यवाद नया और पुराना, लोक प्रकाशन गृह, प्र.सं., 2009.
- भाटिया, जितेन्द्र, सदी के प्रश्न, भारतीय ज्ञानपीठ, सं., 2009.
- भार्गव, जी. एस., भारत में प्रेस, नेशनल बुक ट्रस्ट, दू.सं., 2009.
- भानावत, संजीव, सम्पादन एवं मुद्रण तकनीक, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्र.सं, 2009.
- मोहन, अरविन्द, मीडिया, शासन और बाजार, वाग्देवी प्रकाशन, प्र.सं., 2006.
- मंडल, दिलीप, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं., 2011.
- मेहता, आलोक, भारत में पत्रकारिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, दू. सं., 2007.
- मिश्र, गिरीश, नव उदारवाद विभिन्न आयाम, ग्रंथ शिल्पी, प्र.सं., 2013.
- राय, रामबहादुर, सं., काली ख़बरों की कहानी, रेमाधव पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, प्र.सं., 2010.
- लेले, मधुकर, भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया, राजकमल प्रकाशन, 2011.
- वैदिक, वेदप्रताप, संपादक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, प्रभात प्रकाशन, सं. 2001.
- शर्मा, हर्षबाला (सं.), इक्कीसवीं सदी, औपनिवेशिक मानसिकता और भाषा, अंतिका प्रकाशन, प्र.सं., 2011.
- शर्मा, राधेश्याम, हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप और आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सं., 2002.

- सिन्हा, सच्चिदानन्द, भूमंडलीकरण की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, दू. सं., 2005.
- सिंह, अमित कुमार, भूमंडलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन, प्र.सं., 2009.
- सिंह, कंवल जीत, वैश्वीकरण वैश्वीकरण समर्थक बौद्धिक छल का खुलासा, संवाद प्रकाशन, प्र.सं., 2008.

अंग्रेज़ी पुस्तकें

- Bielsa Esperanca and Bassnett Susan, Translation in Global News, Routledge publication, 2008.
- John Baylis. Steve Smith, The globalisation of word politics, Oxford university Press, 2009.
- Joseph E. Stiglitz, Globalisation and it discontents, Penguin books, new delhi, 2002.
- Khandekar Vanita Kohali, The Indian Media Business, sage Publication, tp 2010.
- Ninan Sevanti, Headlines From The Heartland, Sage Publication, sp 2012.

●●●

आपद्काल और मूल्य अनुशीलन

धर्मजंग*

किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए आपद्काल का समय मुख्यतः दो कारणों से उपस्थित होता है। प्रथमतः या तो वो स्वयं मनुष्य द्वारा किये गये किसी कार्य के कारण एक पूरे समाज, राष्ट्र या मानवीय सभ्यता के सामने संकट की स्थिति खड़ी हो जाती है या फिर दूसरा कारण है किसी प्राकृतिक विक्षोभ के कारण सभी के सामने दुरुह और असहनीय स्थितियाँ उत्पन्न हो जायें। मानवजन्य आपद्काल से हम कई स्वरूपों में परिचित हैं। जब हिंसा और वैमनस्य, लोभ और लालच से वशीभूत होकर कोई एक राष्ट्र या समाज दूसरे किसी राष्ट्र या समाज पर अनाधिकार बल प्रयोग करके अपनी सत्ता और प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है तो परिणामस्वरूप दमित राष्ट्र के जनजीवन में एक महान आपद्काल की स्थिति उत्पन्न होती है। विश्व इतिहास का पुनरावलोकन करने पर हम विभिन्न कालखंडो में विश्व के समस्त हिस्सों में- उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप, एशिया, आस्ट्रेलिया- एक समाज द्वारा दूसरे समाज पर बलात अधिकार के कारण मूल समाज के जीवन में आए संकटों को स्पष्टतया देख-समझ सकते हैं। हमारा भारतीय समाज तो विशेष रूप से समय-समय पर विदेशी आक्रांताओं द्वारा दमित होकर और औपनिवेशिक शासन का शिकार होकर मानव जन्य दुर्भिक्ष, बीमारियों, हिंसा और शोषण का शिकार रहा है, जिसके कारण भारतीय समाज निरंतर मानवजन्य आपदुओं का शिकार होता रहा है। स्वतंत्रता के बाद भी पड़ोसी राष्ट्रों द्वारा आरोपित प्रत्यक्ष और छद्म युद्ध ने हमारे समाज को गहरे प्रभावित किया है। कभी-कभी युद्ध की विभिषका इतनी प्रबल होती है कि जिससे एक राष्ट्र या कई राष्ट्र वर्षों तक उस आपदा से ऊबर नहीं पाते हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण यूरोप और जापान में देखा जा सकता है तथा वर्तमान समय में विभिन्न खाड़ी देशों में लम्बे समय से चले आ रहे हैं युद्ध के कारण व्याप्त दुर्दशा के रूप में।

युद्ध के अलावा मानवजन्य आपदा के दूसरे स्वरूप भी हो सकते हैं जैसे-किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी द्वारा अपने लाभ के लिए किसी गरीब राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों के अपरिमित दोहन से उस दमित राष्ट्र में भयानक दुर्दशा उत्पन्न हो जाती है जिसका उदाहरण

*** मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

अफ्रीका के कई देश हैं। अत्यधिक प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से या खतरनाक रसायनों के प्रयोग/रिसाव से भी कई बार एक बहुत बड़े भूभाग के समक्ष पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न होती है जिसका एक भयानक उदाहरण चेरनेबिल परमाणु रिएक्टर का रिसाव था जिसने अपना व्यापक प्रभाव छोड़ा। अति भोगवाद से पीड़ित कुछ देशों के अत्यधिक उर्जा उपयोग और तज्जनित वैश्विक उष्मीकरण ने विश्व के समक्ष ऐसी पर्यावरणीय स्थितियाँ उत्पन्न कर दी है कि तेजी से बढ़ते समुद्री जलस्तर के कारण कई तटीय देश, द्वीपीय देश विलुप्ति की कगार पर पहुँच रहे हैं और शायद आने वाले वर्षों में विश्व के नक्शे से कई स्थान गायब हो जाए।

अब तक तो चर्चा आपदाकाल के उस प्रथम कारण की थी जिसके मूल में मनुष्य और उसके द्वारा किए गए कर्मों के कारण कृत्रिम आपदाएँ जनित हुई हैं या फिर मनुष्य के किन्हीं कार्यों के कारण प्राकृतिक विक्षोभ से आपदाओं का जन्म हुआ है। इन मनुष्यजानित आपदाओं के अतिरिक्त कई बार प्रकृतिजन्य परिस्थितियों से भी ऐसी आपदाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे अधिक मनुष्य जाति प्रभावित होती है पर वो न तो उसे नियंत्रित कर पाती है और न ही सहज रूप से अपना बचाव कर पाती है। इस प्रकार की आपदाओं का सहज उदाहरण- बाढ़, अकाल, सुनामी, ज्वालामुखी विस्फोट, भूकंप और महामारी के रूप में हमारे सामने है। इनमें से कई आपदाएँ, यथा- सुनामी, भूकंप इत्यादि इस त्वरा और आकस्मिक रूप से आती है कि किसी के भी पास बचाव का अत्यल्प समय रहता है। बाढ़ और अकाल जैसी आपदाओं से तो मनुष्य ने कुछ हद तक बचाव सीख लिया है। पर अन्तिम में भयानक विषाणु जनित या जीवाणु जनित या अन्य किसी कारक से उत्पन्न महामारियों से लड़ने का सामर्थ्य हमारी मनुष्यजाति के पास पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाया है। पिछले कुछ सौ वर्षों के मनुष्य जाति के इतिहास का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि तकरीबन हर सौ वर्षों में मानवजाति के समक्ष किसी महामारी के कारण एक व्यापक संकट आसन्न हुआ, जिससे उसका अस्तित्व भी प्रभावित हो गया। हैजा, प्लेग, स्पेनिश फ्लू से पूर्व में और वर्तमान समय में कोविड-19 महामारी के कारण कामोवेश पूरा विश्व एक महान आपदा से जूझ रहा है। जहाँ सौ वर्ष पहले स्पेनिश फ्लू ने वैश्विक रूप से लाखों लोगों को अपना काल का ग्रास बनाया था, वही 2019 में कोरोना वायरस के कारण जन्य महामारी से आज सम्पूर्ण विश्व त्राहिमाम कर रहा है। यद्यपि यह माना जा रहा है कि कोरोना किन्हीं मानवीय लापरवाहियों से जन्य वायरस है जिसने अपने आगोश में सम्पूर्ण विश्व को ले लिया है। परन्तु आज वैश्विक स्तर पर सभी देशों के सघन वैज्ञानिक प्रयासों के बावजूद इसको नियंत्रित कर पाने में हम स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। इसके संक्रमण की दर और मारक क्षमता ने सम्पूर्ण वैश्विक मानवजाति के समक्ष ऐसा अभूतपूर्व संकट उत्पन्न किया है जिससे निकलने की राह आसान नहीं दिखाई दे रही है। महामारियों

का दुष्प्रभाव ऐसी महती आपदा है जिससे जूझने और उबरने में मनुष्य के समस्त मूल्यों की परीक्षा हो जाती है। वो सभी मूल्य जो मनुष्य को अन्य प्राणि वर्ग से भिन्न बनाते हैं, कहीं उनसे श्रेष्ठ बनाते हैं। आज के इस आपदाकाल में पुनः उन मूल्यों के अनुशीलन की आवश्यकता है, जिन पर हम आगे चर्चा करेंगे।

मानवजन्य हो या प्राकृतिक किसी भी प्रकार की आपदा से मुकाबला करने के लिए किसी भी समाज, राष्ट्र या व्यक्ति समूह के लिए जिस सर्वप्रथम मानवीय मूल्य की आवश्यकता पड़ती है वह है उच्चकोटि के 'साहस' की। यहाँ साहस मूल्य का प्रथम उल्लेख साहस के उस सहज स्वरूप मात्र से नहीं है जिसे हम अपने दैनिक जीवन में गाहे-बगाहे प्रयुक्त करते हैं। आपदाकाल में साहस के विशेष परिमार्जित स्वरूप की आवश्यकता होती है जिसका संचरण समाज के प्रत्येक मनुष्य के हृदय से लेकर सामूहिक स्वरूप में सभी में समान रूप में होना चाहिए। क्योंकि आपदा का स्वरूप सामान्यतया तीव्र और अत्यन्त मारक होता है और इससे समाज का कोई भी वर्ग अछूता नहीं रह सकता है। कम या अधिक किसी भी स्वरूप में समाज का हर तबका इससे प्रभावित होता है। उदाहरणस्वरूप हम देख सकते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध में यहूदी समाज पर अत्याचार से शायद ही कोई यूरोपीय यहूदी अप्रभावित रहा हो। जापान पर परमाणु बम के हमले ने तो कई पीढ़ियों को प्रभावित किया। विभिन्न समय में आई महामारियों ने समान रूप से समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया। वर्तमान समय में कोविड-19 महामारी के दुष्प्रभाव से विश्व का कोई भी अमीर, गरीब राष्ट्र या समाज का कोई भी तबका बचा नहीं है। ऐसे में साहस रूपी गुण या मूल्य का व्यक्तिगत और सामूहिक अवबोध और सतत् उन्नयन किसी भी आपदाग्रस्त समाज की प्रथम आवश्यकता है। साहस के अनुशीलन से ही समाज में उस जिजीविषा का संचार होता है जो उसके अस्तित्व पर आए संकट के निवारण में प्रथम सहायक साबित होता है। साहस ही वह प्रथम उत्प्रेरक हार्मोन है जो आपदा में तमाम संकटों को सहने के बाद भी मनुष्य रूपी जीव को फिर से खड़े होने की शक्ति देता है, उसमें जीवन के प्रति आशावादी संचारी भाव बनाए रखता है। साहस का भाव वह संक्रामक भाव भी है जो एक मनुष्य के हृदय में संचरित होकर अन्य को भी प्रेरणा और शक्ति का अनुभव कराता है। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन हो या यहूदी नरसंहार या कोरिया या वियतनाम का दमन- प्रत्येक राष्ट्र, समाज के कुछ लोगों के अदम्य साहस ने ही अन्य लोगों के हृदय में जबरदस्त जिजीविषा का संचार किया, जिसने तत्समाज को पुनः जीवनी शक्ति से आप्लावित किया। निश्चित रूप से परिस्थितियाँ ही मनुष्य में साहस का संचार करने वाली उत्प्रेरक भी होती हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि मानव में साहस ही वह पहला गुण है जो आपदा काल में अन्य गुणों की जिम्मेदारी लेता है।

साहस के साथ-साथ एक अन्य गुण भी किसी बृहत्तर समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है वो है साहस का विपिरितार्थक गुण 'असाहस'। यहाँ कोई भी यह प्रश्न कर

सकता है कि साहस तो एक महत्त्वपूर्ण गुण के रूप में समझ आता है परन्तु असाहस कैसे एक महत्त्वपूर्ण मूल्य हो सकता है? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि कई बार परिस्थितियाँ इतनी विपरीत होती हैं कि अपनी तमाम शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के सम्मिलित प्रयोग से भी कोई समाज आसन्न आपदा का मुकाबला करने में सक्षम नहीं होता है। तत्समय उस समाज को नतमस्तक होकर उस आपदा के उच्च प्रवाह के तनिक शान्त होने के अवसर की प्रतिक्षा करनी चाहिए अन्यथा अपने चरम पुरुषार्थ के बावजूद भी वह केवल अपने अस्तित्व को ही संकट में डालता है, हासिल कुछ नहीं कर पाता है। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त महाभारत के युद्ध पर्व से मिलता है जब गुरु द्रोणाचार्य के मारे जाने पर उनका पुत्र अश्वथामा एक महासंहारक अस्त्र-नारायण अस्त्र का प्रयोग पांडव सेना पर करता है। उस अस्त्र की यह विशेषता थी कि जो कोई भी हाथ में अस्त्र-शस्त्र लिए हो या युद्धरत दिखाई पड़ता हो उसे तुरन्त यह अस्त्र नष्ट कर देता। तब कृष्ण अपनी समस्त पांडव सेना को आदेश देते हैं कि वो अपने सभी शस्त्रास्त्र भूमि पर रखकर विनित भाव से हाथ जोड़कर बैठ जाए और युद्ध का विचार भी अपने मन में न लाए। ऐसा करने के कुछ समय बाद नारायण अस्त्र समय के व्यतीत हो जाने पर शान्त पड़ जाता है और पांडव सेना की रक्षा हो जाती है। कई बार युद्ध आक्रमण और प्रति आक्रमण से ही नहीं जीता जाता है बल्कि कुछ युद्ध शान्त और निर्लिप्त रहकर भी जीता जा सकता है। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर व्याप्त महामारी से लड़ने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है कि समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी शारीरिक सक्रियता को कम करते हुए, कम से कम प्रतिक्रिया करते हुए धैर्यपूर्वक प्रकृति के इस प्रकोप को कुछ शान्त होने की प्रतिक्षा करे। अगर हमारा अस्तित्व बचा रहा तो हम पुनः वो सभी हासिल कर लेंगे जो हमारे सपनों का हिस्सा है, किसी समाज या राष्ट्र की आकांक्षा है। पर यदि लोक ही न बचा तो सम्पूर्ण धरा के 'लोकतंत्र' की कोई भी उपलब्धि निस्सार होगी, क्योंकि उसका कोई उपभोगकर्ता ही न होगा। समाज के एक बड़े वर्ग के शान्त संकल्प से शायद आधुनिक वैज्ञानिक रूपी कृष्ण कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण उपायों की खोज कर लें जिससे महामारी रूपी आपदा से समाज का रक्षण हो सके। यहाँ पर स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि असाहस या शान्त संकल्प का भाव अकर्मण्यता या पूर्ण निष्क्रियता का नहीं अपितु सचेतन और सुविचारित ढंग से न्यूनतम आवश्यक सक्रियता की स्थिति है। इसमें मनुष्य सक्रिय तो रहता है पर अपने रक्षण मात्र को न कि आपदा से दो-दो हाथ करने को। बाढ़ के भयंकर प्रवाह को तैरकर पार करने का दुर्दम्य साहस करने की बजाय कुछ समय आवेग के शान्त होने की प्रतिक्षा रूपी असाहस भी एक आवश्यक मूल्य है जिसका ध्यान रखना समाज की प्रत्येक ईकाई के लिए आवश्यक है।

आपदाकाल के मुकाबले के लिए जब हम अन्य मूल्यों के अन्वेषण की ओर आगे बढ़ते हैं तो पाते हैं कि 'धैर्य' या 'धीरज' वो दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण या मूल्य है जो साहस के साथ-साथ किसी भी मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। जैसे किसी वाह्य

आक्रमण से रक्षा करने में किसी नगर का मुख्य द्वार ही वह प्रथम स्थान होता है जो बाह्य आक्रमण से प्रथम प्रतिरोध पैदा करता है और आवश्यकता पड़ने पर इसके माध्यम से नगरवासी बाहर निकलकर प्रतिकार करते हैं। मुख्य द्वार की मजबूती के लिए आवश्यक है कि इसके दोनों पल्ले समान रूप से मजबूत हो और आपस में सघन रूप से जुड़े हों, तभी द्वार प्रतिरक्षण सफल हो सकता है। उसी प्रकार जब साहस को धैर्यरूपी पल्ले का सशक्त सहयोग मिलता है तो वह किसी भी मानव समाज के प्रतिरक्षण का प्रथम प्रहरी साबित होता है। धैर्य या धीरज रूपी मूल्य इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि धैर्य के बिना कोई भी मनुष्य किसी भी आपदा के स्वरूप को समझने और तदानुसार उचित प्रतिक्रिया करने में सक्षम नहीं हो सकता। जहाँ साहस प्रतिकार की शक्ति का प्रतीक है वही धैर्य सहनशक्ति का। अगर कोई भी व्यक्ति या मानव समाज आपदा के समय धैर्य रूपी पल्ले को छोड़ देता है तो केवल साहस उसके समाज की रक्षा नहीं कर सकता है। परमाणु बम के हमले के बाद जापानी समाज ने अपने पुरुषार्थ और उससे बढ़कर धैर्यरूपी मूल्य के उच्चानुशीलन से अपने नष्टप्राय राष्ट्र को फिर से खड़ा करने में सफलता पाई। इस संदर्भ में विचारक फुल्टन जे. शीन की उक्ति अत्यन्त ही प्रासंगिक है कि- "धैर्य शक्ति है। धैर्य क्रियाशीलता का अभाव नहीं है; बल्कि ये उचित कार्य के सही समय पर सही ढंग से किये जाने की प्रतीक्षा मात्र है।"

जिस प्रकार हमने पूर्व में साहस रूपी गुण के साथ उसके विपिरार्थक गुण असाहस की चर्चा की है, उसी प्रकार धैर्य रूपी मूल्य के साथ हमें 'अधैर्य' रूपी गुण को भी समझने की आवश्यकता है। धैर्य रूपी मूल्य तो जहाँ एक तरफ किसी भी मानव समाज को किसी आकस्मिक आपदा से सामना करने के लिए तैयार करता है। वही अधैर्य किसी भी संभावित आपदा के लिए अपने समाज को तैयार रखने की युक्ति है। जैसे किसी भी किसान में यह व्याकुलता न हो कि वह मौसम के बिगड़ने से पहले अपनी खड़ी फसल को सुरक्षित कर ले तो वह अपने महीनों की मेहनत से हाथ धो सकता है। उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र या समाज को अपने समाज पर आ सकने वाली किसी भी मानवीय या प्राकृतिक आपदा से बचाये रखने के लिए सदैव अधैर्यपूर्वक सतत् प्रयास करते रहने की आवश्यकता है। क्योंकि सामान्यतया कोई भी आपदा पूर्वसूचना देकर नहीं आती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि कभी-कभी उसके लक्षण पूर्व में दिखाई पड़ते हैं जिन्हें समझते हुए विवेकपूर्ण ढंग से पूर्व में की गई तैयारी तत्समाज को भयानक जन-धन की हानि से बचाती है। भारत में उड़ीसा प्रान्त में चक्रवाती तूफान का लम्बा इतिहास रहा है पर सजग प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव में लगभग प्रत्येक वर्ष उड़ीसा प्रान्त में व्यापक जन-धन की हानि चक्रवाती तूफान से होती रही है। इस प्रकार की प्राकृतिक आपदा का चरम रूप 26 दिसम्बर 2004 को हिन्द महासागर में आई सुनामी के रूप में भारत में देखने को मिला, जिसमें भारत के कई तटीय प्रदेशों को बुरी तरह से प्रभावित किया। उड़ीसा उनमें सर्वाधिक प्रभावित राज्य था। ऐसी

अकल्पनीय तबाही की आशा किसी को न थी और न ऐसी महती प्राकृतिक आपदा से निपटने की तैयारी। उस घटना के बाद वहाँ के प्रशासनिक तंत्र ने इस प्रकार की आपदा से निपटने के लिए विभिन्न स्तरों पर तैयारियाँ की, जिसका परिणाम यह रहा कि विगत वर्ष 2019 में आए विकराल समुद्री तूफान से राज्य में कम जन-धन की हानि हुई। विश्व में सर्वाधिक भूकंप प्रवणता के देश जापान ने कई बार भूकंप, सुनामी इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं का सामना किया है, पर अब अपने पूर्वअनुभव एवं कौशल के प्रयोग से उन्होंने काफी हद तक अपने समाज को ऐसी किसी प्राकृतिक आपदा का सशक्त तरीके से मुकाबला करने के लिए तैयार कर लिया है।

यहाँ हम पुनः अपने विचार बिन्दु अधैर्य की तरफ मुड़ते हैं तो उस सन्दर्भ में यह कह सकते हैं कि किसी भी समाज को संचालित करने वाली एक प्रशासनिक या राजनीतिक ईकाई होती है। उस समाज के प्रत्येक जागरूक नागरिक का दायित्व है कि उसमें इतना अधैर्य हो कि वह सत्ता तंत्र के प्रतिष्ठानों के शीर्ष पर बैठे लोगों पर सतत रूप से यह दबाव बनाते रहे कि वह समाज और और जनउपयोगी नीतियों को सुचारू और पारदर्शी ढंग से सामाजिक व्यवस्था में लागू करें। उसे अपने समाज और राष्ट्र के प्रतिरक्षण के लिए सदैव अधैर्यवान होकर ही विचार करना होगा और धैर्यपूर्वक समुचित उपयों को लागू करवाने का प्रयास करना होगा। कई बार किसी भी राष्ट्र या समाज के शीर्ष सत्ताधारी अपने निहित स्वार्थ के लिए आम जनता को किन्हीं ऐसे मुद्दों में उलझाए रहते हैं जो प्रत्यक्षतः तो महत्त्वपूर्ण दिखते हैं पर वास्तविक रूप में उन मुद्दों से जनता को कोई सीधा लाभ नही होता है। जाति, धर्म, प्रतिहिंसा, खोखले राष्ट्रवादी प्रेम, वैचारिक-सैद्धान्तिक आग्रह जैसे कई ऐसे सारहीन मुद्दे किसी भी राष्ट्र या समाज पर छाए रहते हैं या उन्हें बनाए रखा जाता है जिससे जनता को दूरगामी या निकटवर्ती हितलाभ नहीं मिलता है। उसकी बजाय लोक के अस्तित्व रक्षण के, उसके सतत मानसिक उन्नयन के, उसके प्रतिरक्षण बिन्दुओं को सशक्त करने पर अधिक जोर देने की आवश्यकता प्रत्येक समाज को है।

यही पर अधैर्य के उस विशेष स्वरूप की आवश्यकता समाज की प्रत्येक ईकाई में होती है जब हर व्यक्ति अपने निजी हित से आगे बढ़कर परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्त में सम्पूर्ण धरा के हित के लिए प्रयत्नशील हो। कुछ प्रयास वह निजी स्तर पर करे, कुछ सामूहिक स्तर पर और कुछ बृहद् लोकतान्त्रिक प्रयत्न, जिससे राज्यसत्ता गैर जरूरी मुद्दों की बजाय व्यापक सामाजिक और राष्ट्रीय हित पर ध्यान केन्द्रित करें।

कुछ ऐसा ही अधैर्यरूपी गुण, जिससे व्यापक सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक हित साधना होती हो, किन्हीं ऐसे व्यक्तियों में आ जाता है जो व्यापक हित के लिए सर्वोच्च बलिदान देने को भी तैयार हो जाते हैं, तो ऐसे व्यक्ति ही राष्ट्रनायक, विश्वनायक की श्रेणी में गिने जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में हम महात्मा बुद्ध, कबीर, महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग, दलाई लामा जैसे कई व्यक्तियों को चिह्नित कर सकते हैं।

साहस और धैर्य यदि किसी व्यक्ति या समाज के रक्षा द्वार के दो पल्ले हैं तो 'विवेक' ऐसा मूल्य या गुण है जो किसी समाजरूपी नगर का परकोटा है, उसकी भित्ति है। इसी विवेक के सहारे साहस और धैर्यरूपी मूल्य मिलकर आपदा काल में किसी समाज का रक्षण करने में सहायक होते हैं। विवेक ही वह मूल्य है जो मानव व्यक्तित्व के अन्य गुण-कौशल के समुचित सामंजस्य और उसके सार्थक उपयोग में मार्गदर्शक और संघटक का काम करता है। विवेक सम्पदा से युक्त समाज ही आपदाकाल में अपने संसाधनों का उचित और सार्थक उपयोग करके अपने समाज का रक्षण करने में सफल होता है। अन्यथा विवेकहीन सत्ता या तंत्र किसी राष्ट्र या समाज की वही गति करता है जो आज उत्तर कोरिया, कई खाड़ी देशों और अफ्रीकी देशों की हो रही है। विवेकसम्मत निर्णय और प्रशासन के अभाव में इन देशों की सामान्य जनता जिन अकल्पनीय कष्टों को भोग रही है वो मानवजन्य आपदा का चरम रूप है। विवेक किसी भी परिस्थिति में तर्कसम्मत, वैज्ञानिक और मानवीय भावना से प्रेरित सुविचार की ऐसी भावभूमि है जो समाज और उसकी प्रत्येक ईकाई को विपरीत परिस्थितियों में उचित और प्रभावी निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। विवेक ही वह मुख्य गुण है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से भिन्न बनाता है। विवेक से सम्यक उपयोग से ही कोई व्यक्ति या समाज विपरीत परिस्थितियों में भी सही मार्ग का अन्वेषण करने में समर्थ होता है। भारत की सनातन परंपरा, बौद्ध और जैन परंपरा, सभी परंपराओं में सम्यक् विवेक पर विशेष बल दिया गया है। विवेक वह मूल्य है जो समुद्र के तटीय इलाकों में बने प्रकाश स्तम्भ की भाँति होता है जो किसी भी आकस्मिक आपदा या दुर्घटना से बचने में समुद्री जहाजों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करता है। उसी प्रकार विवेकरूपी प्रकाश स्तम्भ की सहायता से मानव समाज अपनी उचित दिशा का निर्धारण किसी भी आपदा में कर सकता है। विवेक किसी भी व्यक्ति या समाज का वह प्रमुख आधारभूत तत्व है जिस पर पैर टिकाकर ही समाज मजबूती से अपने अन्य गुण-कौशलों का प्रयोग व्यापक हित में कर सकता है।

विवेक, साहस और धैर्य के बाद जब हम अपनी इस विचारधारा में आगे बढ़ते हैं तो पाते हैं कि एक अन्य मूल्य भी किसी समाज के आपदा प्रबंधन का एक प्रमुख सहयोगी तत्व है, वह मूल्य है- 'संवेदनशीलता'। संवेदनशीलता वह मूल्य है जो किसी भी समाज के प्रत्येक ईकाई के मन में एक दूसरे के प्रति होनी चाहिए। साथ ही यह संवेदनशीलता एक समाज की दूसरे समाज के प्रति भी होनी चाहिए क्योंकि अन्ततः हम सभी एक ही पृथ्वी के वासी हैं और दूरस्थ देश में आई आपदा के प्रति सचेत होकर जब कोई अन्य राष्ट्र मदद को आगे बढ़ता है तभी वह विश्व नागरिक कहलाने का हकदार होता है। संवेदनशीलता को व्यापक दृष्टि से हम एक ऐसे स्नेहक या संघटक तत्व के रूप में रूपायित कर सकते हैं जो एक समाज को दूसरे समाज से, समाज की एक ईकाई को दूसरे से बांधने में सहायक

होता है। संवेदनशीलता का भाव ही किसी व्यक्ति या समाज को अन्य के प्रति सकारात्मक, सचेतन उद्योग करने को उत्प्रेरित करता है। संवेदनशीलता के अभाव में न तो एक का अन्य के प्रति कारुणिक भाव का संचार होता है और न ही समाज के विभिन्न उपागम मिलकर, कंधे से कंधा मिलाकर बाह्य आपदा का मुकाबला करने में सक्षम होते हैं। अतः पारस्परिक संवेदनशीलता को हम समाज के लघुतर रूप से लेकर बृहत्तर रूप में आपसी बंधन का प्रमुख आधार कह सकते हैं।

आपदाकाल से मुकाबिल होने के लिए आवश्यक मूल्यों की चर्चा करते समय दो ऐसे मूल्यों पर एक साथ विचार करना होगा जो कि एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह आपस में अविभक्त रूप से जुड़े हुए हैं। ये दो मूल्य हैं- 'सकारात्मक दृष्टि' और प्रबल 'इच्छाशक्ति'। जहाँ सकारात्मक दृष्टि हमारी इच्छाशक्ति में परिवर्धन करती है वही इच्छाशक्ति हमारी सकारात्मक दृष्टि को पोषित करती है। दोनों का आपसी साहचर्य ऐसा गहरा है कि हम इन्हें अलग-अलग रखकर सम्यक् विचार और कर्म की अवगाहना नहीं कर सकते हैं। किसी भी समाज या व्यक्ति की प्रबल इच्छाशक्ति और सकारात्मक दृष्टि ही अन्ततः उसे आपत्तिकाल से बाहर निकलने की सद्प्रेरणा देती रहती है और अन्ततः वह व्यक्ति, समाज या राष्ट्र देर-सबेर आपतित आपदा से स्वयं को मुक्त करने में समर्थ होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के जर्मन नाजी कैम्पों के कई यंत्रणा गृहों से मुक्त हुए कई पीड़ितों की कहानियाँ, नस्लवाद के भयंकर भेदभाव से मुक्त हुए नेल्सन मंडेला के दक्षिण अफ्रीका की कहानियाँ, कहीं न कहीं पीड़ित समाज या व्यक्ति के हृदय में स्थित सकारात्मक जीवन दृष्टि और जिजीविषा की प्रबल इच्छाशक्ति का बोध कराती हैं जिनके सहारे तत्समाज और उसके नायकों ने अपने ऊपर आई आपदा का सशक्त ढंग से सामना किया और स्वयं को तथा अपने समाज को जीवन की नई राह पर गतिमान कर सके।

इस विचार शृंखला को आगे बढ़ाते हुए हम पाते हैं कि उपरोक्त उल्लिखित मूल्यों के क्रम में 'अनुशासन' एक ऐसा महत्त्वपूर्ण मूल्य है जो किसी भी आपदा से मुकाबला करने में अति आवश्यक है। निजी स्तर पर समाज के हर व्यक्ति का अपने निजी जीवन में अनुशासन पालन का प्रयास, सामूहिक स्तर पर समाज की प्रत्येक ईकाई का अनुशासित व्यवहार, नेतृत्व का अनुशासन के प्रति समर्पण और व्यावहारिक स्तर पर उतारने का प्रयास- इन सभी सम्मिलित प्रयासों से ही किसी आपदा का सशक्त ढंग से मुकाबला किया जा सकता है। सन् 1965 में हमारे देश में ही युद्ध और भूखमरी के माहौल में देश को बचाने के लिए व्रतरूपी अनुशासन की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की अपील का देशवासियों ने अनुशासित प्रयास से सकारात्मक जवाब दिया, परिणामस्वरूप देश को फिर से खड़ा होना का मौका मिला। अनुशासन को हम विवेक का ही एक स्वरूप कह सकते हैं जो हमारे चैतन्य बोध को विपरीत परिस्थितियों में भी क्षरित नहीं होने देता है। आपदा

के निर्मम प्रहार के समय भगदड़ की बजाय समाज की अनुशासित प्रतिक्रिया बहुत हद तक आपदा का शमन करने में सहायक होती है, अन्यथा आपदा की चोट किसी भी समाज के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने के लिए पर्याप्त तो है ही। अनुशासन रूपी मूल्य का संचरण किसी भी समाज में एक झटके में नहीं हो सकता है। यह तत्समाज के नेतृत्व और जनता के सक्रिय सहयोग और प्रयास से ही संभव हो सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि एक बार जब किसी समाज में एक अनुशासित व्यवस्था का नियमन हो जाता है तो उस समाज का निरंतर उन्नयन होता रहता है और वह किसी भी आकस्मिक आपदा का अधिक बेहतर तरीके से प्रतिकार करने में सक्षम होता है। सिंगापुर, जापान, दक्षिण कोरिया, न्यूजीलैण्ड, इजराइल, यूरोप के नार्वे, डेनमार्क, स्विटजरलैण्ड जैसे देशों का उदाहरण एक उत्कृष्ट अनुशासित समाज के रूप में दिया जा सकता है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त कोविड-19 महामारी रूपी आपदा से लड़ने में इन देशों के दीर्घकालिक अनुशासित प्रयास, पारदर्शी प्रशासन, मानवीय मूल्यों के प्रति नेतृत्व का गहन समर्पण ही इन देशों को काफी हद तक अपने समाज और राष्ट्र को सुरक्षित करने में सफल बना सका। अनुशासन रूपी मूल्य जब पूर्व उल्लिखित मूल्यों के सम्मिलन के साथ किसी समाज की चेतना का अविभाज्य अंग बन जाता है तो वह समाज निश्चित रूप से ही बड़ी से बड़ी दैवीय, प्राकृतिक या मानवीय आपदा का उत्कृष्ट और सशक्त ढंग से प्रतिकार करने में सक्षम होता है। सार रूप में हम कह सकते हैं कि अनुशासन उस सीमेन्ट की भाँति है जो अन्य गुणों या मूल्यों को आपस में मजबूती से बाँधता है और संयुक्त रूप से इन मूल्यों का समाज में अनुशीलन किसी भी आपदा के खिलाफ एक मजबूत प्रतिरक्षण तंत्र तैयार करता है।

आपदा से मुकाबिल होने में कुछ आवश्यक मूल्यों की चर्चा ऊपर की गई। यद्यपि इस शृंखला में कुछ और मूल्य का समावेश किया जा सकता है पर कहीं न कहीं वो पूर्व उल्लिखित मूल्यों के भाव की पुनरुक्ति मात्र होगी। इसलिए इस विचार शृंखला को यहीं विराम देते हुए यह कहना होगा कि आशा और विश्वास की डोर, जो मानव का नैसर्गिक गुण भी है, को थामे हुए व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व का सम्मिलित प्रयास ही किसी क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय आपदा से मानव अस्तित्व को सुरक्षित रख सकता है और विश्व की भावी संतति को एक सुरक्षित जीने योग्य परिस्थितियाँ प्रदान कर सकता है। इसलिए भावी, सुन्दर, सुरक्षित और न्यूनतम आपदा प्रभावित समाज के निर्माण में हमें सदैव इन मानवीय मूल्यों के सतत् अनुशीलन पर अपना ध्यान केन्द्रित रखना होगा।

●●●

महात्मा गाँधी का समाज-दर्शन

पल्लव पाठक*

महात्मा गाँधी भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के एक सच्चे संवाहक थे। वे इस देश में एक सामान्य मनुष्य के रूप में पैदा हुए और सामान्य मनुष्य की तरह ही अपना जीवन जीते रहे। लेकिन उन्होंने एक सामान्य मनुष्य के भीतर अन्तर्निहित शक्ति एवं क्षमता का एहसास कराने के क्रम में अपने को शून्य बनाकर सशरीर व्यक्ति से विचार का रूप ग्रहण कर लिया। स्थूल से सूक्ष्म बन गए। उनके विचारों पर चलकर देश की जो तस्वीर बनी, जो उपलब्धियाँ मिलीं उनके लिए केवल भारत ही नहीं वरन् पूरा विश्व उनका स्मरण करता है।

गाँधीजी ने विभिन्न दर्शनों का समन्वय करते हुए अहिंसा को मूल आधार बनाकर प्रत्येक विषय को एक नया दार्शनिक रूप प्रदान किया। नई सोच एवं समझ विकसित की और मानवीय मूल्यों को जीवन के विभिन्न आयामों से जोड़ते हुए एक चमत्कारिक दृष्टि दी। गाँधी जी के हृदय में अहिंसा का भाव सम्पूर्ण मानवता का परिचायक रहा है। उन्होंने कहा भी है कि- ''मैं केवल एक मार्ग जानता हूँ- अहिंसा का मार्ग। हिंसा का मार्ग मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। मैं हिंसा का पाठ पढ़ाने वाली शक्ति को बढ़ाना नहीं चाहता हूँ। मेरी आस्था मुझे आश्वस्त करती है कि ईश्वर बेसहारों का सहारा है, और वह संकट में सहायता तभी करता है जब व्यक्ति स्वयं को उसकी दया पर छोड़ देता है। इसी आस्था के कारण मैं यह आशा लगाए बैठा हूँ कि एक-न-एक दिन वह मुझे ऐसा मार्ग दिखाएगा जिस पर चलने का आग्रह मैं अपने देशवासियों से विश्वासपूर्वक कर सकूँगा।[1]''

गाँधीजी के अनुसार मनुष्य अहिंसा के सच्चे अर्थ को तभी समझ सकेगा जब उसका प्रेम दूसरे व्यक्ति के प्रेम या द्वेष से प्रभावित न हो। ऐसा उदात्त प्रेम ही वास्तविक अहिंसा है। अहिंसा का प्रथम और वास्तविक रुप गाँधी जी के लिए हिंसा से बहुत अधिक श्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा कि- ''मैने अहिंसा का पाठ अपनी पत्नी से पढ़ा, जब मैने उसे अपनी इच्छा के सामने झुकाने की कोशिश की। एक ओर, मेरी इच्छा से दृढ़ प्रतिरोध, और दूसरी ओर, मेरी मूर्खता को चुपचाप सहने की उसकी पीड़ा को देखकर अंततः मुझे अपने ऊपर लज्जा आई और मुझे अपनी इस मूर्खतापूर्ण धारणा से मुक्ति मिली कि मैं उस पर शासन करने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। अन्त में, वह मेरी अहिंसा की शिक्षिका बन गई।[2]''

*** शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, का.हि.वि.वि., वाराणसी।**

सत्य और अहिंसा महात्मा गाँधी के दर्शन, दृष्टि और विचार के मुख्य केन्द्र थे। अपनी आत्मकथा में अहिंसा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा भी है कि- ''अहिंसा व्यापक वस्तु है। हम हिंसा की होली के बीच घिरे हुए पामर प्राणी हैं। यह वाक्य गलत नहीं है कि जीव-जीव पर जीता है।...यदि इस हिंसा से छूटने के लिए वह महाप्रयत्न करता है, उसकी भावनाओं में केवल अनुकम्पा होती है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु का भी नाश नहीं चाहता और यथाशक्ति उसे बचाने का प्रयत्न करता है तो वह अहिंसा का पुजारी है।[3]

समाजवाद के प्रति भी गाँधीजी का दृष्टिकोण अपनी इस सहज विचार धारा से प्रतिबद्ध रहा है। 'हरिजन' के जुलाई 1947 के अंकों में क्रमशः उन्होंने समाजवाद पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। समाजवाद की उनकी अपनी परिभाषा थी। उनकी दृष्टि में समाज में प्रत्येक व्यक्ति समान होता है। कोई व्यक्ति इसलिए बड़ा नहीं हो जाता कि वह ऊँचे पद पर और कोई इसलिए छोटा नहीं हो जाता कि वह छोटे पद पर कार्य करता है। राजा या किसान, धनी या गरीब, नियोजक या मजदूर सब एक स्तर के माने जाते हैं। केवल हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी या यहूदी होने के नाते कोई बड़ा या छोटा नहीं हो जाता।

गाँधी जी समाजवाद का आधार अहिंसा की पृष्ठभूमि में देखते थे। उनके अनुसार- राजा या किसान को समान बनाने का तरीका यह नहीं है कि हम राजा का सर काट लें अथवा नियोजक और मजदूर में समानता की ओर बढ़ते कार्यक्रम में नियोजक के साथ ऐसा ही व्यवहार करें। असत्य और मिथ्याभावों से हम कभी सत्य की ओर नहीं बढ़ सकते। सद्व्यवहार और सच्चरित्रता ही केवल सत्य का अवलम्ब बन सकते हैं। अहिंसा सत्य में सन्निहित है। अहिंसा और सत्य एक सिक्के के दो पक्ष हैं, जिन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। सिक्के के दोनों ओर के शब्द अलग हो सकते हैं, किन्तु उनका मूल्य वही रहता है। बिना शरीर और मन की पवित्रता के हम हिंसा और असत्य से मुक्त नहीं रह सकते। गाँधी जी का महावाक्य है कि- ''अहिंसा के सामने बैर का त्याग होना ही चाहिए''। उनकी स्पष्ट धारणा है कि 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं'।

अहिंसा के संदर्भ में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने लिखा है कि- ''अहिंसा मनुष्य जाति का वैसा ही नियम है जैसे हिंसा जंगली प्राणियों का गुण है। जंगली में आत्मा प्रसुप्त होती है और वह पाशविक शक्ति के अतिरिक्त और कोई नियम नहीं जानता। मानवीय गरिमा की माँग है कि वह एक उच्च नियम की अधीनता को स्वीकार करे- आत्मा के संघर्ष के नियम की अधीनता को। अहिंसा एक पूर्णावस्था है। अचेतन रुप से ही क्यों न हो, यह वह उद्देश्य है जिस ओर सम्पूर्ण मानवता स्वाभाविक रूप से अग्रसर हो रही है।''[4]

सत्याग्रह गाँधी जी के दर्शन का प्राणतत्व है और सत्याग्रह का दर्शन 'सत्य' पर टिका है। सत्याग्रह की आवाज़ अन्तःकरण की आवाज़ है। गाँधीजी 'सत्य' को प्रयोग की दृष्टि से तथा प्रयोग को सत्य की दृष्टि से देखने के पक्षधर थे। उनकी धारणा थी कि सत्य

से आत्मविश्वास, धैर्य, साहस और मर्यादा का गुण सहज रुप से साकार होता है, वाणी सत्य से ही प्रतिष्ठित होती है। सब सत्य में प्रतिष्ठित हैं सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है-

"The word 'satya' (Truth) is derived from 'Sat' which means being. And nothing is or exists in reality except truth"[5]

सत्याग्रह की लड़ाई गाँधीजी ने सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रिका से शुरु की, जहाँ नस्लवादी भेदभाव अपनी चरम सीमा पर था। दक्षिण अफ्रिकी कुछ उपनिवेशों में एशियाई तथा कुछ अफ्रिकी लोग रात में 9 बजे के बाद घर से बाहर नहीं रह सकते थे और न ही वे सार्वजनिक फुटपाथों का इस्तेमाल कर सकते थे। गाँधीजी इन भयावह परिस्थितियों के खिलाफ चलने वाले संघर्ष के नेता बन गए। लगभग दो दशकों तक चलने वाले इस लम्बे संघर्ष के दौरान ही उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह की तकनीक को विकसित किया।[6]

गाँधीजी सत्याग्रह को कमजोर व्यक्ति की लड़ाई का माध्यम कभी नहीं मानते। उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में स्पष्ट कहा है कि- ''यह निश्चित मानिए कि नामर्द आदमी घड़ी भर के लिए भी सत्याग्रही नहीं रह सकता।...शरीर से जो दुबला हो वह भी सत्याग्रही हो सकता है। एक आदमी भी (सत्याग्रही) हो सकता है और लाखों लोग भी हो सकते हैं। मर्द भी सत्याग्रही हो सकता है; औरत भी हो सकती है। उसे अपना लश्कर तैयार करने की जरुरत नहीं रहती। उसे पहलवानों की कुश्ती सीखने की जरूरत नहीं रहती। उसने अपने मन को मजबूत किया कि फिर वह वनराज-सिंह की तरह गर्जना कर सकता है; और जो उसके दुश्मन बन बैठे हैं, उनके दिल इस गर्जना से फट जाते हैं।[7]

अहिंसा गाँधीजी के अनुसार केवल एक वैयक्तिक गुण ही नहीं अपितु एक सामाजिक गुण भी है। उनका कहना है कि- ''अहिंसा केवल वैयक्तिक गुण नहीं है। वह एक सामाजिक गुण भी है और अन्य गुणों की तरह उसका भी विकास किया जाना चाहिए। यह तो मानना ही होगा कि समाज के पारस्परिक व्यवहारों का नियमन बहुत हद तक अहिंसा के द्वारा होता है। मैं इतना ही चाहता हूँ कि इस सिद्धान्त का बड़े पैमाने पर, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर विस्तार किया जाय।''[8]

कुछ लोग यह मानते हैं कि गाँधीजी के आदर्श उन्हीं के लिए थे, वे जनता के आदर्श नहीं हो सकते। ऐसा मानना अज्ञानता ही कही जाएगी। उनके आदर्श सत्य की कसौटी पर कसे गए थे और देशकाल की सीमा का अतिक्रमण कर बने थे। इसी को देखकर बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था कि- ''आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही यह विश्वास करें कि गाँधी जैसा कोई हाड़-माँस का पुतला सचमुच कभी इस धरती पर अवतरित हुआ होगा।''[9]

अहिंसा और सत्य पर आधारित गाँधीजी की समाजवाद की दृष्टि ने अर्थशास्त्र की परिभाषा सहित अनेक सिद्धान्तों को उलट दिया। अर्थशास्त्री प्रो0 राबिन्स ने मानव व्यवहार का अध्ययन करते हए अर्थशास्त्र का लक्ष्य अधिकतम संतुष्टि माना और उनका लक्ष्य था कि उपलब्ध साधनों का प्रयोग इस प्रकार किया जाय कि अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।

गाँधीजी की मान्यता इससे अलग थी। उनके अनुसार आवश्यकताओं का अन्त नहीं है और साधन सीमित हैं। अतः जब तक आवश्यकताएँ कम नहीं होंगी संतुष्टि प्राप्त नहीं हो सकती।

दरअसल, गाँधीजी ने अपने देश को हिंसक क्रांति से बचाने के लिए ही आर्थिक समानता के लिए कार्य शुरु किया और कहा कि- ''आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है, जगत् के सब मनुष्यों के पास एक-सी सम्पत्ति का होना, यानी सबके पास इतनी सम्पत्ति होना जिससे वह अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सके।''[10]

इस प्रकार यदि गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना ही सम्पत्ति रखी जाती है, उसका असीमित संचय होता है तो यह हिंसा होगी; क्योंकि गरीबों का शोषण करके ही करोड़ों की सम्पत्ति रखी जा सकती है। गाँधीजी का मानना है कि- शोषण भी हिंसा है; शोषण तो वस्तुतः इस युग की सबसे बड़ी शैतानियत और सबसे बड़ा अभिशाप है। इसीलिए गाँधीजी की ग्राम- स्वराज की कल्पना शोषण विहीन समाज की कल्पना है। शोषण हिंसा की जड़ में है। यह हिंसा की जननी है और यह स्वयं में भी हिंसा ही है। शोषण केवल अन्यायपूर्ण आर्थिक लूट ही पैदा नहीं करता, बल्कि इससे समाज में अस्वस्थ प्रतियोगिता, पारस्परिक संघर्ष, घृणा और विद्वेष आदि प्रादुर्भूत होते हैं।[11]

स्पष्ट है कि गाँधीजी मात्र एक आदर्शवादी दार्शनिक नहीं बल्कि विशुद्ध व्यावहारिक व्यक्ति थे, जो मनुष्य की समस्याओं को जड़ से समझते थे और उनका ऐसा समाधान निकालते थे जो स्थायित्व लिए हो तभी तो अपने राजदर्शन सम्बन्धी विचारों में उन्होंने संस्था से ऊपर व्यक्ति की महत्ता और गरिमा को स्थापित किया है। गाँधीजी सच्चे अर्थों में एक विश्व मानव थे और उनका प्रभाव असंख्य लोगों पर था। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा भी है- ''उनका प्रभाव करोड़ों पर था। भारतीय इतिहास में कोई भी एक व्यक्ति, किसी भी युग में, इतने विशाल जनसमुदायों को प्रभावित नहीं कर सका और विश्व इतिहास में भी किसी व्यक्ति का ऐसा प्रभाव नहीं देखा गया।''[12]

गाँधीजी ईशोपनिषद् की उक्ति[13] बार-बार दुहराते हैं कि जो व्यक्ति अपने पेट भरने के भोजन से अधिक लेता है वह चोर है। इस मूल्य को उन्होंने अपने जीवन में उतारा भी। पेट भरने का अर्थ यहाँ आवश्यक आवश्यकताओं से है जिनका पूरा होना समाजवादी राज्य की एक शर्त है। स्वतंत्रतापूर्वक अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए वर्ण एवं जाति विहीन इकाइयों में बँटा हुआ समाज अहिंसात्मक ढ़ंग से जीवन निर्वाह करे यह थी गाँधीजी की कल्पना। उन्होंने यूरोप के अंधानुकरण का सदैव विरोध किया उनके पास सारी दुनिया के लिए एक संदेश था। उनका जीवन अहिंसा धर्म के पालन द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित था। वे कहते हैं कि- ''यदि भारत ने हिंसा को अपना धर्म स्वीकार कर लिया और यदि उस समय मैं जीवित रहा, तो मैं भारत में नहीं रहना चाहूँगा। तब वह मेरे मन में गर्व की भावना उत्पन्न नहीं करेगा। मेरा देश प्रेम मेरे धर्म द्वारा नियंत्रित है। मैं भारत से उसी तरह बँधा हुआ हूँ जिस तरह कोई बालक अपनी माँ की छाती से चिपका रहता है, क्योंकि मैं महसूस करता हूँ कि वह मुझे मेरा आवश्यक-आध्यात्मिक पोषण देता है।[14]''

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय जनमानस के प्रत्येक स्तर पर गाँधी जी का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से है। 'दिनकर' के अनुसार- "महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति पर इतनी अधिक दिशाओं में प्रभाव डाला है कि उनके समस्त अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दिखता खान-पान, रहन-सहन, भाव-विचार, भाषा और शैली, परिच्छद और परिधान, दर्शन और सामाजिक व्यवहार एवं धर्म-कर्म, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता भारत में जो भी आचार या विचार प्रचलित है उनमें प्रत्येक पर कहीं-न-कहीं गाँधी जी की छाप है।[15]"

वर्तमान राजनैतिक तथा सामाजिक परिवेश में सर्वत्र अस्थिरता का वातावरण है। जनमानस में कुंठा एवं विक्षोभ है। आंतरिक एवं बाह्य विषमताओं से आंदोलित देश को आज स्वार्थवाद, भ्रष्टाचार एवं जातिवाद आदि संकीर्णताओं से मुक्ति पाने हेतु गाँधी के समाज-दर्शन की उनके युग से भी अधिक जरुरत है।

संदर्भ सूची-

1. यंग इण्डिया, 11-10-1928, पृ0 342.
2. हरिजन, 24-12-1938, पृ0 394.
3. गाँधी, एम.के., सत्य के प्रयोग अथवा मेरी आत्मकथा, पृ0 305-306.
4. यंग इण्डिया, 14-08-1920.
5. Kachroo, J.L. : Gandhi, Tagore & Nehru, Page 25.
6. विपिन चन्द्र; आधुनिक भारत, पृ0 213 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, मई 1982.
7. गाँधी, एम.के., हिन्द स्वराज, पृ0 82-83.
8. गाँधी, एम.के., हरिजन, 07-01-1939.
9. (शुकदेव प्रसाद), आइन्सटाइन : एक विज्ञानी एक मानव : पृ0 27, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद
10. सर्वोदय, पृ0 39.
11. सिंह, डॉ. रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, पृ0 98.
12. शर्मा, डॉ. रामविलास, गाँधी, आम्बेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, पृ0 9, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13. ऊँ ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। ईशोपनिषद, श्लोक-1, गीताप्रेस, गोरखपुर
14. यंग इण्डिया, 06-04-1921.
15. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 617.

●●●

'गोदान' में स्त्री संघर्ष चेतना के मूल्य

कुमारी सिन्धू*

'गोदान' को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया है। प्रेमचन्द के इस उपन्यास में ग्रामीण-समाज के संघर्षों की गाथा है, इस गाथा में ग्रामीण स्त्री के जमीनी संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। इस उपन्यास में स्त्री जीवन संघर्ष की जो कथा बुनी है वह सम्पूर्ण भारत के स्त्रियों की साहस और संघर्षशीलता को बताती है। लेखक ने इस उपन्यास में जिन-जिन स्त्री पात्रों को चुना है चाहे वे ग्रामीण स्त्रियाँ हों या शहरी, वे सभी संघर्षशील और जुझारू हैं। अपने जीवन संघर्ष की शक्ति से वे पितृसत्तात्मक समाज के स्त्री विरोधी मूल्य व्यवस्था को चुनौती देती है। इस उपन्यास का हर एक स्त्री पात्र निर्भीक-निडर, साहसी और अडिग है। उसमें स्वाभाविक तरीके से मजबूत होती हुई संघर्ष चेतना दिखाई देती है।

प्रेमचन्द इस उपन्यास में स्त्री की संघर्षशीलता और जागरूकता को बड़े सावधानी पूर्वक दिखाते हैं। प्रेमचन्द के स्त्री पात्र समस्याओं से जूझते ही नहीं हैं बल्कि उनका डँटकर सामना भी करती है। धनिया इस उपन्यास का प्रमुख स्त्री चरित्र है। वह होरी महतो की पत्नी है। एक प्रकार से वह भारतीय किसान स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह सबसे ज्यादा जागरूक, निर्भीक-निडर, और सक्रिय स्त्री है। इस उपन्यास की शुरूआत से ही लेखक उसके जीवन संघर्षों को उकेरना शुरू कर देता है। उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन जिन्दा है, एक लड़का गोबर जो सोलह साल का है तथा सोना और रूपा नामक दो लड़कियाँ जो क्रमशः बारह और आठ साल की हैं।

प्रेमचन्द ने धनिया के चरित्र का निर्माण एक सशक्त नारी के रूप में किया है, जिसके कारण उसका चरित्र अधिक जीवंत बन बैठा है। धनिया का व्यक्तित्व भले ही, बाहर से कुछ ईर्ष्यालु, मुँहजोर और कलह करने वाली स्त्री का है लेकिन उसका दयालु स्वभाव और मातृस्नेहिल हृदय सिलिया जैसी अभागिन स्त्री को जगह देता है। वह उसकी मदद भी करती है। धनिया का होरी से विवाह हुए बीस वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन उसके अपने जीवन में सुख का अनुभव नहीं है। होरी से विवाह के बाद जब से वह इस घर में आयी है उसे न तो अच्छा पहनना मिला और न ही खाना। जिसके कारण उसके मन में हमेशा गुस्सा भरा रहता है और धनिया इसी वजह से होरी से जब भी मौका मिलता है तो उसे खरी-खोटी सुनाती रहती है। वह तब तक शांत नही होती जब तक होरी उस पर गुस्से से फट नहीं जाता। दोनों बहुत झगड़ालू दंपति की तरह दिखते हैं।

*** शोध छात्रा, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

धनिया में भारतीय किसान स्त्री का हृदय है। अपने देवरों के प्रति उसके मन में वात्सल्य है। वह अपने देवर शोभा और हीरा को अपना रात-दिन पेट काटकर पालती है, यहाँ तक कि अपने देवरों का विवाह भी कराती है, और अपनी ही देवरों की पत्नियों के पुराने कपड़े पहनती है। अपने घर की गृहस्थी को धीरे-धीरे किसी तरह चलाती रहती है। होरी कहता है कि गोबर की माँ का बड़े होने के नाते, जिसे सभी कहते है कि जो घर का बड़ा होता है वही घर का मालिक और मालकिन होते है। धनिया का मालिकानापन बस इतना ही था कि वह अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहन कर अपना दिन बिताती थी। वह स्वयं भूखी रह जाती थी लेकिन देवरानियों के लिए भोजन, पानी की व्यवस्था हमेशा बनाये रखने की कोशिश करती रहती थी। अपनी देवरानियों के लिए कुछ न कुछ दो-चार सोने व चाँदी के गहने बनवा देती थी और अपने गले में गहने के नाम का कच्चा धागा भी उसके पास नहीं था। यह अभावों से भरी गृहस्थी थी, जिसमें मालिकाना कैसा? इतना करने के बावजूद तब भी सभी को जलन थी कि वह घर की मालकिन क्यों हैं। जिस धनिया ने अपने देवरों को अपने पुत्र की भाँति माना। उन्हीं के दुर्व्यवहारों से धनिया क्षुब्ध रहती थी। अपने देवरों-देवरानियों के प्रति उसका हृदय फट जाता है। वह कभी नहीं चाहती थी कि उसका पति अपने भाईयों और बहुओं से कोई रिश्ता भी रखे और ना ही उनके दुख और सुख से कोई मतलब हो। वह शोभा और हीरा का नाम सुनते ही आग बबूला हो जाती। जब घर में गाय आयी तो गाँव के सारे लोग गाय देखने आये। धनिया कहती है कि शोभा और हीरा को जलन हो रही होगी कि हमारे यहाँ गाय आ गयी और उनके यहाँ कोई गाय है ही नहीं। इसी कारण वे नहीं आये देखने, जबकि होरी कहता भी है कि मैं उन्हें बुला लाऊ तब धनिया क्रोध से भर उठती है। गाँव वालों को बड़ा आश्चर्य होता हैं कि होरी के पास इतने रूपये कहाँ से आये। उसने गाय कैसे खरीद ली। हो सकता हैं अपने भाईयों का हक मारकर बैठा हो।

जब यह बात होरी के कानों तक पहुँचती है तो वह धनिया से इस बात की चर्चा करता हैं कि गाँव वाले कहते है कि मैंने अपने भाईयों के साथ बेईमानी की है। तब धनिया गुस्से में कहती है कि जरूर हीरा ने गाँव वालों को भड़काया होगा। अभी मैं उससे पूछती हूँ। होरी सोचता है कि धनिया हीरा के पास न जाये इसके लिए वह अथक प्रयास करता है लेकिन धनिया मानती नहीं है और लड़ने के लिए हीरा के पास पहुँच जाती है और कहती है- ''तू हमें देखकर क्यों जलता है? हमें देखकर क्यों तेरी छाती फटती है? पाल-पोसकर जवान कर दिया है, यह उसका इनाम है? हमने न पाला होता तो आज कहीं भीख माँगते होते। रूख की छाँह भी न मिलती। हीरा ने जबाव दिया- हम किसी का कुछ नहीं जानते। तेरे घर में कुत्तों की तरह एक टुकड़ा खाते थे और दिन-भर काम करते थे। जाना ही नहीं कि लड़कपन और जवानी कैसी होती है। दिन-दिन भर सूखा गोबर बीना करते थे। उस पर भी तू बिना दस गाली दिये रोटी न देती थी। तेरी-जैसी राक्षसिन के हाथ में पड़कर जिन्दगी तलख हो गयी। धनिया और भी तेज हुई- जबान सँभाल, नहीं जीभ खींच लूँगी। राक्षसिन तेरी औरत होगी। तू है किस फेर में मूँड़ी-काटे, टुकड़खोर, नमक हराम।''[1]

हीरा यहाँ तक कह देता है कि मेरे दरवाजे से बाहर निकल नहीं तो जूतों से बात करूगाँ। धनिया भी डटकर हीरा का सामना करती रहती है जब तक हीरा को परास्त नहीं कर देती। हीरा के प्रति धनिया के हृदय में अब सिर्फ नफरत ही भरी रहती थी। गाय की मृत्यु हो जाने के कारण अब सभी दुखी रहने लगे थे तब होरी बस शक की आशंका में कहता है कि मैंने हीरा को गाय की नाद के पास खड़ा देखा था। इस बात की चर्चा जब वह धनिया से करता है तो धनिया क्रोध में आकर कहती है कि अब तो मैं हीरा को जेल की हवा खिलवाकर ही रहूँगी। बात ज्यादा बिगड़ न जाय जिसके कारण होरी परिस्थिति को संभालने की कोशिश करता है धनिया हीरा को कोसती जाती है। वह कहती है कि खुद कहकर अब कैसे बेशर्मी से मुकर रहा है। अब धनिया के कटु वचन से होरी को भी गुस्सा आ जाता है। वह पैर पटक कर कहता है- मुझे गुस्सा मत दिला, वरना बुरा होगा। इस पर धनिया होरी को और ताव चढ़ा देती है। "मार तो रहा है, और मार ले। जा, तू अपने बाप का बेटा होगा तो आज मुझे मारकर तब पानी पियेगा। पापी ने मारते-मारते मेरा भुरकस निकाल लिया, फिर भी इसका जी नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है, मैं बड़ा वीर हूँ। भाईयों के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का, हत्यारा।"[2]

धनिया मुँह से जितनी कड़वी है हृदय से उतनी ही उदार। उसका देवर हीरा जब घर से भाग जाता है तो वह उसकी पत्नी पुन्नी से द्वेष भावना रखना छोड़ देती है, और धनिया जब देखती है कि होरी हीरा के खेतों में काम करता है तो तब भी वह उसे कुछ नहीं कहती है। पहले जब भी धनिया गोबर और झुनिया के बारे में कुछ सुनती तो क्रोध से भर उठती थी। लेकिन जब गोबर झुनिया को घर में छोड़कर भाग जाता है और धनिया को पता चलता है कि वह गर्भवती है तो झुनिया के लिए उसके सारे हृदय की करूणा उमड़ने लगती हैं जबकि होरी कहता है कि इसे घर में मत रखो लेकिन धनिया मानती नहीं है और कहती हैं कि इतनी रात को उसको घर से निकालने के लिए कह रहे हो, वह गर्भवती है यह ठीक नहीं हैं।

यद्यपि धनिया पर-पुरूष को आँख उठाकर कभी नहीं देखती, तथापि किसी पुरूष से अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठने की नारी सुलभ दुर्बलता उसमें भी विद्यमान है। होरी उसे कदाचित् अपनी ओर से बनाकर मिथ्या वचन कह देता है कि भोला महतो तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। कह रहे थे कि तुम साक्षात् लक्ष्मी हो। जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुँह सबेरे-सबेरे देख लेता हूँ उस दिन कुछ न कुछ जरूर हाथ लगता है। इस पर वह खिल उठती है। वह बार-बार पूछती है कि वे क्या कह रहे थे? जिस भोला महतो को वह देखना नहीं चाहती थी, भूसा का एक कतरा भी नहीं देना चाहती थी उसी भोला के भूसा लेने के लिए घर आने पर जब गोबर उसका विरोध करता है तो उसे डाँटते हुये वह कहती है- "आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमनसी सीखो। कलसा ले जाओ, पानी भरकर रख दो, हाथ-मुँह धोयें, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरो के सामने हाथ फैलाता है।"[3]

धनिया के चरित्र में तेजस्विता और स्वाभिमान का अधिकतर संयोग देखा जाता है। झुनिया को रहने के लिये जब धनिया अपने घर में सहारा देती है तो उसे बिरादरी से अलग कर दिया जाता है। यहाँ तक कि उसका हुक्का पानी भी बंद कर दिया जाता है। पंचायत के लोग मिलकर यह फैसला लेते है कि उसका कुएँ से पानी भरना बंद कर दिया जाय। लेकिन कहीं न कहीं धनिया को लेकर लोगों के मन में भय व्याप्त था क्योंकि धनिया के भयानक क्रोध से लोग परिचित थे। इसलिए किसी की हिम्मत आगे बढ़ने की नहीं होती है। जब होरी के ऊपर गाँव के पंच लोग तीस मन अनाज का दंड लगाते है तो धनिया इसका खुलकर विरोध करती है और साफ-साफ कहती हैं कि अनाज का एक दाना भी नहीं दूँगी, इसके लिए मुझे चाहे जाति से अलग रहना ही क्यों न पड़े। झुनिया के बच्चा होने पर गाँव की कोई भी औरत उसके घर नहीं आती है, लेकिन धनिया को इसका कोई फर्क नहीं पड़ता है वह जोर से चिल्ला-चिल्लाकर सोहर गा रही थी, जिससे कि सारा गाँव सुन ले। दरोगा जब होरी को हथकड़ी लगाकर ले जाने की कोशिश करता है तो वह दुर्गा का रूप धारण करने से भी पीछे नहीं हटती है, धनिया में अनेकों चारित्रिक विशेषताओं के साथ एक और विशेषता है कि जिस तरह गोबर जमीदारों की जी हुजूरी करना पसंद नहीं करता उसी तरह धनिया भी गोबर की बातों से सहमत है और जी हुजूरी को व्यर्थ मानती है। जिसके कारण वह अपने पति होरी पर हमेशा गुस्सा होती रहती है, उसका कहना है कि जब हमने जमीदार के खेत अपनी मेहनत से जोत दिये है और वह हमारे पास आकर अपना लगान ही तो लेगा, तो क्यों हम उसका शोषण सहे और उसकी खुशामद करे और हम अपना अपमान सहते जाये। धनिया अन्दर से भले ही कठोर है लेकिन उसकी सच्ची कोमल हृदय की भावनायें उसके अन्दर के एक अलग गुण को प्रकट करते है उसकी सहृदयता तब देखने को मिलती है जब झुनिया गर्भवती थी तो उसने अपने घर में उसे आश्रय दिया। सिलिया को आश्रय देना उसके विशुद्ध सहृदयता का परिचायक है। लेकिन होरी कहता है कि इन लोगों को घर में जगह दोगी तो कहीं तुम्हें दातादीन के गुस्से का सामना न करना पड़े, तब धनिया बिना डरे कहती है- "बिगडेंगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे, और क्या करेंगे? कोई उनकी दबैल हूँ। उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं, मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई।"[4]

धनिया में हम स्त्री के स्वाभिमान और प्रेम का योग देख सकते है। होरी और धनिया का दांपत्य प्रेम आन्तरिक है। सम्बन्धों में सत्य का जोर होना चाहिए कुलटा स्त्रियों के सिर काट लेने पर वह जोर देती है। होरी की इस बात को सुनकर भी वह हतप्रभ नहीं होती है, "यदि तू ही कुराह पर चलने लगे, तो मैं तेरा सिर काट लूँगा! इस पर धनिया परिहासात्मक उत्तर देती है, कुराह चले तुम्हारी बहन, मैं क्यों कुराह चलने लगी। इस पर होरी झेंपकर रह जाता है।"[5]

धनिया में भारतीय नारी सुलभ सभी गुण विद्यमान है। वह गाँव में रहने वाली सभी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व भी करती हैं। देखा जाय तो धनिया इस उपन्यास की मुख्य नायिका

थी जिसकी संघर्ष चेतना प्रखर है। जब तक उसका पति होरी जीवित था तब तक उस स्त्री के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं था लेकिन होरी की मृत्यु के बाद वह भी अब किसके लिए जीवित रहे। जो उसके जीवन की सबसे बड़ी हार थी।

झुनिया- गोदान उपन्यास की झुनिया भोला ग्वाला की विधवा लड़की है। उसके रूप लावण्य का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है कि उसकी माँ और पति के मर जाने के बाद वह अपने पिता के ही घर रहती थी, उसके मांसल स्वस्थ, सुगठित अंगों में मानो यौवन लहरें मार रहा था। गोबर जब पहली बार भूसा लेकर भोला के घर पहुँचता है तो उसकी निगाह एक तरफ डिल-डाल सुडौल गाय पर लगी है तो दूसरी तरफ झुनिया की प्रेम भरी निगाहें गोबर के ऊपर टीकी हुई है। गोबर के हृदय में भी झुनिया जगह लेने लगी है और झुनिया के खाली हृदय को गोबर पूर्णता की ओर ले जाने लगा हैं। दूसरे दिन गोबर को गाय लाने और झुनिया से मिलने की उत्सुकता बढ़ने लगी थी। वह सोचता है जब यह स्त्री होकर नहीं डरती है तो मैं पुरूष होकर क्यों डरू? झुनिया गोबर से कहती है, ''न रूपये की भूखी हूँ, न गहने-कपड़े की। बस भले आदमी का संग चाहती हूँ। तब गोबर आश्वासन देता है खूब याद रखूँगा झूना और मरते दम तक निबाँहूगा।''[6]

झुनिया का जब पाँव भारी होता है और गोबर उसे अपने घर छोड़कर कहीं चला जाता है तब वह धनिया और होरी के आशीर्वाद स्वरूप घर में रहती है मगर रो-रोकर, कुछ दिन बाद उसे लड़का पैदा होता है। जो एकदम गोबर को ही पड़ा है गोबर कुछ पैसे कमाकर घर वापस आता है लेकिन झुनिया उससे रूष्ट थी, झुनिया ने तिरस्कार भरी आँखों से देखकर कहा- ''मुझे लाकर यहाँ बैठा दिया। आप परदेश की राह ली। फिर न खोज, न खबर कि मरती है या जीती है। साल-भर के बाद अब जाकर तुम्हारी नींद टूटी है। कितने बड़े कपटी हो तुम। मैं तो सोचती हूँ कि तुम मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े, तो साल-भर के बाद लौटे। मर्दों का विश्वास ही क्या, कहीं कोई और ताक ली होगी, सोचा होगा, एक घर के लिए है ही एक बाहर के लिए भी हो जाये।''[7]

कुछ दिनों बाद घर में पैसे की दिक्कत होने के कारण गोबर परदेश जाने के लिए सोचने लगा। अब कि बार वह झुनिया और बच्चे को भी साथ ले गया। झुनिया भी परदेश जाने के नाम से खुश थी। लेकिन झुनिया ने जिस शहर का सुन्दर चित्र उसने अपने मन में बैठा रखा है वही शहर उसे कितना दर्द देगा वह झुनिया नहीं जानती थी। झुनिया को अकेले ही घर का सारा काम और बच्चे को संभालना पड़ता था। गोबर पहले की तरह ठीक से काम भी नहीं करता था और उसे बस वासना की भूख थी। झुनिया के ऊपर सबसे बड़ी विपत्ति तब आयी जब उसे मालूम हुआ कि उसे दूसरा बच्चा होने वाला है क्योंकि न घर में कुछ खाने को ढंग से था और न ही बच्चे को पिलाने के लिए स्तन में दूध, झुनिया को धीरे-धीरे अपने पति और पुत्र दोनों से स्नेह खत्म होता जान पड़ता था इसका कारण था कि वह इस तरह के जीवन से ऊब गयी थी। कुछ दिनों बाद उसका बालक मर जाता है जिसकी याद उसे हमेशा रूला देती थी। वह बच्चे की याद में हमेशा खोयी रहती, जिससे जब भी

गोबर झुनिया के पास जाता निराश होकर वापस आ जाता था जिससे एक दिन उसने गुस्से में कहाँ कब तक लल्लू के नाम का रोना रोती रहेगी अब चार-पाँच महिने बीत गये। "झुनिया ने ठंडी साँस लेकर कहा- तुम मेरा दुःख नहीं समझ सकते। अपना काम देखो। मैं जैसी हूँ, वैसी पड़ी रहने दो।"[8]

झुनिया को बहुत दिक्कतों से दूसरा बच्चा होता है। वह बच्चा भी बेचारा विपत्ति की मार खाये बैठा है। क्योंकि वही सब जो पहले से चला आ रहा था ना ही घर में कुछ खाने को था और ना ही झुनिया को दूध हो रहा था। जब उसको ही ढंग से कुछ खाने को नहीं था उसे दूध कहाँ से बन पाता। चुहिया नाम की स्त्री ही उसकी विपत्ति के समय साथ देती है, क्योंकि एक स्त्री ही दूसरी स्त्री की दुख और तकलीफ को समझ सकती है। गोबर जब भी गुस्से में आकर झुनिया को मारता पीटता तो चुहिया उसका हमेशा विरोध करती रहती थी। इतना कुछ होने के बावजूद झुनिया के मन और हृदय में गोबर के लिए प्रेम था उसका प्रेम सच्चा था। जिसके कारण वह विपरीत परिस्थितियों में भी गोबर का साथ नहीं छोड़ती है। जब गोबर घायल हो जाता है तो वह तत्परतापूर्वक उसकी सेवा करती है। साथ ही गृहस्थी का भार भी देखती रहती है।

सिलिया- हरखू चमार की बेटी है। उसके संबंध में प्रेमचन्द लिखते है- "सिलिया साँवली, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था।"[9] सिलिया के इसी आकर्षण ने मातादीन को आकर्षित कर लिया। सिलिया मातादीन से सच्चा प्रेम करती है, जब कि मातादीन तो सिर्फ वासना की पूर्ति करना चाहता है किन्तु सिलिया तो अपने संकल्प पर दृढ़ है। माता-पिता एवं गाँव के लोगों के समझाने का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह सिर्फ मातादीन के साथ रहना चाहती है। वह दृढ़तापूर्वक कहती है, "और न मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जाँऊगी। मजूरी करूँगी, भीख माँगूंगी, लेकिन तुम्हें न छोडूँगी।"[10] मातादीन सिलिया को बस मजदूरिन के रूप में देखते है। सिलिया का यही स्थान मातादीन के जीवन में था। लेकिन सिलिया मातादीन से सच्चा प्रेम करती है इसलिए वह मातादीन के यहाँ मजदूरी करती है। जिससे कि वह मातादीन के आस-पास रह सके। नहीं तो उसे अगर सिर्फ मजदूरी ही करना रहता तो कही भी कर लेती। सिलिया पण्डित दातादीन के बेटे मातादीन की रखैल है। उसकी प्रशंसा दातादीन भी किया करता है। दातादीन कहता है "मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा? वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी। बहुत होगा रोटियाँ पका देगी। यहाँ सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है। और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूँ? बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।"[11]

सिलिया मातादीन से बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करती है। मातादीन के घर में वह तीन मजदूरिन की भाँति काम करती रहती है, लेकिन उस घर में अपना अधिकार कभी भी नहीं जमाती है और ना ही उसे किसी वस्तु की लालसा थी। सिलिया तो मातादीन के यहाँ एक ऐसे पक्षी की तरह रहती है जिसके पंख कट चुके है और वह पिंजरे में केवल कैद होकर

रह गयी है। सिलिया का प्रेम उसे ऐसे दो राहें पर खड़ा कर चुका था जिसके कारण वह न तो मातादीन के साथ रह सकती है और न ही उन्हें छोड़ने के बारे में सोच सकती है। सिलिया एक ऐसी दलित नारी है, जो न केवल आर्थिक रूप से, अपितु सामाजिक एवं धार्मिक रूप से भी निम्न है। प्रेमचन्द ने इसके चरित्रांकन के माध्यम से दिखाया है कि समाज में ऐसे दलित पात्रों का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं शारीरिक शोषण होता है, सिलिया जैसी अनेक ग्रामीण दलित स्त्रियाँ मातादीन जैसे छलिया पुरूषों से वासना के नाम पर छली जाती हैं। मातादीन से प्रताड़ित सिलिया के मानसिक संघर्ष को प्रेमचन्द ने इस रूप में व्यक्त किया है- उसे वह दिन याद आये, और अभी दो साल भी नहीं हुए जब यही मातादीन उसके तलवे सहलाता था, जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था- "सिलिया, जब तक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा, जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग में और नदी के तट पर उसके पीछे-पीछे पागलों की भाँति फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार! मुट्ठी-भर अनाज के लिए उसका पानी उतार लिया।"[12]

दातादीन घर की गृह लक्ष्मी की दृष्टि से सिलिया को किसी भी ब्राह्मण कन्या के समकक्ष मानता है, लेकिन वह सिलिया को घर की बहू के रूप स्वीकार कभी भी नहीं करना चाहता है। सिलिया बहू का विकल्प-भर हो सकती है, लेकिन बहू होने की योग्यता उसमें सिर्फ इसलिए नहीं है, क्योंकि वह चमारिन है, और ऐसा करने पर गाँव, समाज और बिरादरी से वह बहिष्कृत हो सकता है। इसी आशंका से वह स्पष्टीकरण देने के लिए विवश है- सिलिया हमारी चौखट लाँघ नहीं पाती, चौखट, बरतन, भांड़े छूना तो दूसरी बात है। मैं यह नहीं कहता कि मतई यह बहुत अच्छा काम कर रहा है, लेकिन जब एक बार एक बात हो गई तो पाजी का काम है कि औरत को छोड़ दे। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ, इसमें छिपाने की कोई बात नहीं। स्त्री-जाति पवित्र है।

अब प्रश्न यह उठता है कि स्वाभिमानी सिलिया इतना अपमान सहने के बावजूद वह क्यों मातादीन के साथ रहना चाहती है। जब कि वह कही भी किसी दूसरे स्थान पर मजदूरी करके अपना जीवन व्यतीत कर सकती है और वह समय की परिस्थिति के अनुरूप अपनी माँ के साथ स्वयं रह सकती है। उसकी माँ के घर के दरवाजे उसके लिए हमेशा खुले हुए है। तब भी वह स्वार्थी मातादीन से अपना संबंध क्यों नहीं तोड़ पा रही है कहीं इसका कारण उसका स्वाभिमान एवं प्रेम तो नहीं। वह मातादीन को अपने मन मन्दिर में उनकी पत्नी के रूप में हमेशा देखती है। इस बात को सारा गाँव भी जानता है अगर सिलिया चाहती तो वह किसी और लड़के से शादी भी कर सकती थी। उसे गाँव वाले भी अपनी बिरादरी में शामिल करने के लिए तैयार थे। लेकिन उसे अपने आत्मा के विरूद्ध कुछ भी मंजूर नहीं था। वह मातादीन का साथ नहीं छोड़ना चाहती थी। यह सब एकतरफा प्रेम के कारण था, सिलिया को मातादीन ने कई बार अपमानित किया। लेकिन तब भी सिलिया ने कोई शत्रुता नहीं रखी और ना ही मातादीन से कोई बदला लिया। उसके प्रेम में मातादीन के प्रति पूर्ण समर्पण था जिसके कारण वह अपने परिवार माँ-बाप, भाई से लड़ते हुए मार खाती रहती

है फिर भी इस बात का उसे कोई दुख नहीं है वह कहती है चाहे वह हमें किस तरह किसी भी हाल में रखे मैं उसे कभी नहीं छोड़ूँगी। सिलिया की कोई बहुत बड़ी इच्छा नहीं थी। उसकी छवि भारतीय नारी की तरह है और इसी कारण वह अपने प्रिय को किसी भी मूल्य पर खोना नहीं चाहती है। वह गुणवान एवं शीलवती स्त्री है उसे बार-बार पति बदलना स्वीकार नहीं है वह बस इतना चाहती है कि मातादीन हम दोनों के रिश्ते को तोड़े नहीं बल्कि वह अपना वचन निभाये।

सिलिया का सिर्फ एक ही कसूर है कि उसका जन्म एक हरिजन के घर में हुआ है। इस दोष के लिए उसे इस प्रकार की सजा भोगनी पड़ती है। सबसे बड़ी सजा उसे तब मिलती है जब मातादीन उसे गर्भवती हालत में घर से निकाल देता है। अब सिलिया को धनिया ने अपने घर के बगल में थोड़ी सी जगह दी है जिसमें वह अपनी झोपड़ी बनाकर रहने लगती है। कुछ दिनों के बाद अपनी इस विपत्ति को भोगते हुए उसने एक लड़के को जन्म दिया जिसका नाम रामू रखा गया जो एकदम मातादीन को ही पड़ा है। किन्तु माँ कहलाने का सौभाग्य उसे अधिक दिन तक प्राप्त नहीं हो पाया। एक दिन रामू खूब खेला और रात को ही उसे बुखार हो गया, दूसरे दिन उसको निमोनिया हो जाता है। और तीसरे दिन वह बालक रामू सिलिया के ही गोद में अपने प्राण त्याग देता है सिलिया हर दिन हर पल अपने जीवन में संघर्ष का अलग-अलग रूप देखती हुई प्रतीत होती है। मातादीन उसी दिन से खुलकर सामने आ जाता है। अब वह विना शर्मिदा हुए पश्चाताप की आग में जलते हुए अपने बच्चे रामू का शव दोनों हथेलियों से उठाकर नदी के किनारे अकेले ही लेकर गया। मातादीन आकर उसके झोपड़ी में खुलकर रहने लगता है और कहता है "अब मैं किसी से नहीं डरता। मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले वही ब्राह्मण है, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार है।"[13] इस प्रकार देखा जाय तो सिलिया के एकनिष्ठ प्रेम और जीवन जीने के संघर्ष से मातादीन पराजित होता है।

पुनिया- पुनिया (पुन्नी) गोदान के नायक होरी के भाई हीरा महतो की पत्नी है। पैसे की कमी के कारण उसकी देह ढल गयी थी। पुनिया को दो बच्चे हुए थे। "बनाव-सिंगार से समय के आघात का शमन करना चाहती थी, लेकिन गृहस्थी में भोजन का ही ठिकाना न था, सिंगार के लिए पैसे कहाँ से आते। इस अभाव और विवशता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया था, जिस पर एक बार फावड़ा भी उचट जाता था।"[14] पुनिया अपने जीवन से खुश नहीं थी, वह हमेशा अपने इस जीवन के लिए भाग्य को हमेशा कोसती रहती थी। उसी के विद्रोह से भाईयों में अलग्योझा हुआ था। वह धनिया को परास्त कर शेर हो गयी थी। हीरा को वह पति के रूप में कसाई समझती है। हीरा कभी-कभी उसे मारता भी था। परन्तु पुनिया को भी इसका फर्क नहीं पड़ता था। पति-पत्नी के बीच हमेशा किसी न किसी बात को लेकर लड़ाई-झगड़ा होता रहता था। लेकिन इसके बावजूद भी हीरा वही करता जो पुनिया कहती थी। क्योंकि दोनों एक-दूसरे के ही सहारे थे। हीरा ने जब से होरी के गाय को जहर दिया और गाय के मर जाने पर वह घर छोड़कर भाग

जाता है, पुनिया दुखी होकर सोचती है कि कुछ कहा भी नहीं, पता नहीं कहाँ चले गये। तब से उसके घर की जिम्मेदारी होरी के कन्धें पर आ जाती है। जब से झुनिया आयी है तब से पुनिया, धनिया को राशन से मदद करती है तो होरी उसकी मदद खेतों की जुताई-बुवाई से लेकर हर जगहों पर करता है। अब धनिया और पुनिया दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख को समझकर आपस में सहयोग किया करते हैं। पुनिया का स्वभाव भले ही कठोर है लेकिन उसका हृदय कोमल एवं वात्सल्य रस से भरा हुआ है। रूपा के घर में खाने के लिए कुछ नहीं है, यह जानकर वह उसे बाजरे की रोटी खिला देती है। ऐसा वह वात्सल्य के कारण ही करती है। होरी और धनिया से वह लड़ सकती है, किन्तु उसके बच्चे गोबर, रूपा, सोना से लड़ाई होने का प्रश्न नहीं उठता। सुख के समय तो वह किसी से लड़ सकती है किन्तु दुःख में वह द्रवित होकर उसकी मदद करने के लिए भी दौड़ पड़ती है। पुनिया अनपढ़-गँवार महिला होने के साथ-साथ सहृदय भी है, जिसकी प्रशंसा धनिया भी अंत में करती है।

मिस मालती- स्त्री का पश्चिमी रंग-ढंग प्रेमचन्द को पसंद नहीं है। उसकी सीमाओं की ओर भी संकेत करते मालती का परिचय देते हुए लिखते हैं, "आप इंग्लैण्ड से डॉक्टरी पढ़ आयी हैं, और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरूष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।"[15]

यह मालती के व्यक्तित्व का एक पक्ष है। उसके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष भी है जो इससे भी मजबूत है। और वह है उसका व्यक्तित्व जो मानवीय मूल्यों में आस्था रखता है और दायित्व बोध के लिए सतत् जागरूक बनाये रहता है। मालती आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवती है जरूर लेकिन कहीं भी वह उच्छृंखलता या स्वेच्छाचारिता का परिचय नहीं देती। उसके ऊपर उसके पूरे परिवार का दायित्व है। उसके ऊपर शराबी और फालिजग्रस्त बाप और दो जवान बहनों की जिम्मेदारी है। उसमें इतनी योग्यता है कि मनचाहा जीवन जी सकती है, सुखद वैवाहिक जीवन बिता सकती है, लेकिन वह अविवाहित रहते हुए परिवार का पालन-पोषण करती है। परिवार और परिवार के बाहर की जिन्दगी में ताल-मेल बैठाने के प्रयास में उसे कुछ समझौते करने पड़ते हैं। पुरूष भले ही उसके आकर्षण में फँसे रहे हों। वह पुरूषों की भोग-लिप्सा का शिकार नहीं बनती। अपने व्यक्तित्व और विचारों के कारण मेहता उसे आकर्षित करते है, उनसे उसकी निकटता बढ़ती है, प्रेम होता है लेकिन प्रेम विवाह, नारी मुक्ति आदि मसले पर वह उनसे अलग विचार रखती है। मालती ने खन्ना से परिहास स्वर में कहा- "खुदा करे, मैंने गलत समझा हो, क्योंकि अगर मैं उसे सच समझ लूँगी, तो तुम्हारे साये से भी भागूँगी। मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो! वह मेरी कृपा थी कि जहाँ मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य-से-सामान्य चीजें भी

धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और जरूरत पड़ने पर तुमसे रूपए भी माँग लेती थी। अगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया, तो मैं तुम्हें क्षमा करूँगी। यह पुरुष-प्रकृति का अपवाद नहीं; मगर यह समझ लो कि धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी, और न कभी पाएगा।"[16]

मालती ये मानती थी कि जो व्यक्ति कर्म और वचन में सामंजस्य नहीं रखता वह चाहे जो कुछ हो मगर सिद्धान्तवादी नहीं हो सकता है। उनकी यह विचारधारा फिलॉसफर मेहता को प्रभावित कर देती हैं, जब लगता है कि मेहता भी अन्य पुरूषों से अलग नहीं है तो वह उनके साथ विवाह-बंधन में बँधना स्वीकार नहीं करती। गोदान में स्त्री की उपस्थिति बहुरूपात्मक है। मेहता से विवाह नहीं, सिर्फ प्रेम करने वाली मालती तितली या मधुमक्खी न होकर आधुनिक बोध सम्पन्न है। प्रेम उनके लिए त्याग है। मेहता के प्रभाव से वह गाँवों में जाती है- गरीब बस्तियों में मुफ्त डॉक्टरी जाँच करती है। दूसरी ओर क्लब-जीवन को भी अपना समय देती है। मेहता भी मालती के ही साथ है जो मानते हैं कि विवाह आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बन्द कर देता है। प्रेमचन्द ने अगर मालती जैसी शिक्षित आधुनिक, पेशे से डॉक्टर, वर्किंग वुमन की सृष्टि की तो वह अपने आप में कम नहीं है। स्वच्छन्दता में भी मर्यादित-देर-सवेर मालती को यह सीख आस-पास के समाज से मिल जाती है। गोविन्दी से उसे गृहस्थी के ज्ञान और स्वरूप का पता चलता है। मेहता-मालती जब गाँव जाते हैं तो मेहता को साँवली या काली पानी भरती स्त्री पर मुग्ध होते देखकर मालती ईर्ष्यालु हो उठती है। यहाँ शायद पहली बार उसे मेहता को बगैर उसकी पत्नी हुए वर्जित करने का मौका मिल जाता है। मालती को एहसास होता है कि सौन्दर्य गोराई या कुलीनता या भद्रता का मुहताज नहीं, भारतीय विवाह व्यवस्था में पत्नी अपने पति से पिटती हुई भी इसे पुरूष का प्रेम मानकर प्रसन्न है। गोदान की स्त्री इस यथार्थ को नहीं नकारती कि केवल शृंगार उसका अलंकार नहीं हैं- श्रम भी उसका अलंकार है दिन-रात खटती स्त्री को जो पाना है, अपने निर्धारित समाज में ही पाना है, धनिया से सिलिया तक कई स्त्रियाँ इस जीवन यथार्थ को स्वीकार करती है।

एक बार रात्रि में जब मिस मालती कि गाड़ी बिगड़ जाती है तब वे परेशान हो जाती है उसी समय गोबर का वहाँ प्रवेश होता है तब गोबर अपनी पूरी ताकत के साथ उनकी गाड़ी को उनके घर तक पहुँचा देता है। वे प्रसन्न होकर गोबर को अपने यहाँ नौकरी दे देती हैं। नौकरी ही नहीं देती हैं बल्कि उसके पूरे परिवार को रहने के लिए एक कमरा भी खाली कर देती है। जब मिल मालती को बात-बात में पता चलता है कि होरी और धनिया गोबर के माँ-बाप हैं और झुनिया के सास-श्वसुर हैं तब मालती और मेहता का गोबर के परिवार के साथ और सहानुभूति बढ़ जाती है। देखा जाए तो जो मिस मालती पहले मेहता के नजरों में तितली के समान थी अब वही मालती गरीबों के मसीहा के साथ-साथ मिस्टर मेहता के भी सहयोगी, जीवन साथी, अर्द्धांगिनी और प्रिय बन जाती हैं, जो मिस मालती के संघर्ष, त्याग और परिश्रम का परिणाम है।

सोना- सोना होरी महतो की बड़ी लड़की थी। बारह वर्षीय सोना लज्जाशील, सुकुमारी, साँवली, सुडौल जो हँसमुख और दूसरों को हसाने वाली लड़की थी। वह अपने भाई और बहनों से थोड़ी ईर्ष्या रखती थी लेकिन सोना में द्वेष की भावना उसके अन्तर्मन में नहीं थी। वह दूसरे बच्चों की तरह अपने माता-पिता के दुख लकलीफ को हँसी-हँसी में भूलाने का प्रयास करती रहती थी, उसके सामने होरी अपनी गरीबी को भूल जाना चाहता है। सोना अपनी बुद्धि के स्वरूप तो बच्ची है लेकिन शारीरिक रूप से युवती है। वह गाँव की श्रम संस्कृति में ढली हैं। सोना गाय की सेवा करने के लिए रूपा से लड़ती रहती है। शांत स्वभाव वाली वह व्यर्थ की बातों और प्रपंचों से दूर रहना जानती है। समयानुसार उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए वह अपनी माँ धनिया को मातादीन के साथ कलह करते हुए देखकर कहती है- "अम्माँ, जाने भी दो। तुम तो समय नहीं देखती, बात-बात पर लड़ने बैठ जाती हो।"[17]

उपन्यास की विचारधारा में युवती का जो आदर्श रूप है उसे लेखक ने सोना के माध्यम से ही व्यक्त किया है। सोना अपने घर की आर्थिक स्थिति देखकर दुखी होती है, होरी दो साल से सोना की शादी को लेकर मन में ही चिन्तित था, मगर खाली हाथ होने के कारण वह कुछ कर नहीं पा रहा था। धनिया कहती थी कितना ही हाथ बाँधकर खर्च करो, दो ढाई सौ लग ही जायेंगे। होरी सोचता था कि कुश कन्या दे दूँ इसी में उसका मंगल था लेकिन कुल मर्यादा कैसे छोड़ दे। होरी ने सोना की शादी दूसरे पुरा के गौरी राम के बेटे मथुरा से तय कर दी है। सोना अपनी शादी में अपने माता-पिता को अधिक खर्च करने से रोकती है। सोना आजीवन दुख झेलना पसंद करती है, किन्तु अपने माँ-बाप को दहेज देने के लिए मना करती है। वह कहती है- "माँ बाप को भगवान् ने दिया हो तो खुशी से जितना चाहें लड़की को दें, मैं मना नहीं करती, लेकिन जब वह पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं, आज महाजन नालिश करके लिल्लाम करा ले, तो कल मजूरी करनी पड़ेगी, तो कन्या का धरम यही है कि डूब मरे।"[18]

जब सोना को पता चलता है कि वह दहेज मांग रहा है। तब वह कहती है मैं दहेज लेने वाले लड़कों से शादी नहीं करूँगी। मेरे गरीब माँ-बाप कहाँ से देंगे? सोना अपना यह संदेश सिलिया के द्वारा मथुरा के यहाँ पहुँचवा देती है। मथुरा जब नदी के किनारे ढोर चराने गया था। उसी समय सिलिया वहाँ पहुँचकर यह संदेश देती है और कहती है कि "सोना ने कही है कि यदि न सुनोगे तो वह जिद्दिन है। जो कहा है वह कर दिखायेगी, फिर हाथ मलते रह जायँगे।"[19] तब मथुरा घर जाकर अपने पिता गौरी से झगड़ा कर लेता है और कहता है कि मैं बिना दहेज का शादी करूँगा। सोना का विवाह मथुरा के साथ धूम-धाम से हो जाता है। सोना अपने ससुराल चली जाती है और अपने घर की सारी गृहस्थी संभाल लेती है, उसकी दाम्पत्य जीवन सुखमय से बीतने लगी।

रूपा- रूपा होरी और धनिया की सबसे छोटी पुत्री है। जिसका बचपन गरीबी में बीता। उसकी शादी के समय उसका परिवार विपन्नता की ओर बढ़ जाता है। जिसके नीचे

गरीबी की कोई भी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। गरीबी और मजबूरी के कारण होरी सौ रूपया में चालीस साल के रामसेवक के साथ रूपा की शादी तय कर देता है या यह भी कह सकते हैं कि सौ रूपए में बेच देता है। रामसेवक के बारे में लेखक लिखता है रामसेवक जो अधिक सुन्दर न होते हुए घोड़े पर संवार, साथ एक नाई और एक खिदमतगार, जैसे कोई जमादार हो। उम्र चालीस से ऊपर थी। कई महीने हुए उसकी औरत मर गयी थी। संतान कोई नहीं था। वह अपनी शादी अधेड़े पुरूष के साथ होने पर भी ससुराल में खुश थी, क्योंकि जिस अभाव में बचपन बीता था उसमें पैसा सबसे कीमती चीज थी।

चुहिया- इस उपन्यास का एक अन्य स्त्री पात्र चुहिया है। इसके बारे में लेखक लिखता है कि चुहिया दोहरी देह की है। वह काली-कलूटी, नाटी, कुरूप, बड़े-बड़े स्तनों वाली स्त्री थी। उसका पति एक्का हाँकता था और वह खुद लकड़ी की दुकान करती थी। झुनिया जब प्रसव-पीड़ा के समय चिल्लाते हुए कहती है अब मैं नहीं बचूँगी दीदी। अब मैं मर जाऊँगी माता। तुम बच्चे को पाल-पोस लेना। भगवान तुम्हारा भला करेंगे। तब चुहिया स्नेह से उसके केश को सहलाते हुए बोलती है। धीरज रख बेटी। क्षण-भर में दुःख कट जायेगा। झुनिया को होश न था। सुबह नौ बजे होश आया तो उसने देखा चुहिया शिशु को गोद में लिए बैठी है। चुहिया रोज सबेरे आकर झुनिया के लिए हरीरा और हलवा पका जाती और दिन में कई बार आकर बच्चे को उबटन मल जाती और ऊपर का दूध पिला जाती। चार दिन हो जाने के बाद भी झुनिया के स्तन में दूध न उतरा तब चुहिया ने डॉक्टर को दिखलाया तो डॉक्टर ने देखकर कहाँ कि इसके देह में तो खून है ही नहीं, दूध कहाँ से आये। यह समस्या जटिल थी। महीनों पुष्टिकारक दवाएँ खानी पड़ेंगी तब दूध आयेगा। वह बच्चे को चुप कराने के लिए उसके मुँह को अपने स्तन से लगाए रखती थी सहसा उस दिन से अचानक उसके छाती में दूध आ गया। वह प्रसन्न होकर झुनिया से बोलती है ले झुनिया अब तेरा बच्चा जी जायेगा, भगवान की कृपा से मेरे स्तन में दूध आ गया। चुहिया रोज सुबह दोपहर शाम को आकर बच्चे को दूध पिला जाती थी। इस प्रकार से देखा जाय तो चुहिया अपरिचित और अनजान स्त्री होते हुए भी झुनिया को अपनी बेटी या बहू की तरह मानती है। भगवान की कृपा से उसके स्तन में दूध निकल आने पर वह बच्चे को अपना दूध भी पिला आती थी। उसकी मातृ-स्नेह का हृदय विशाल सागर के समान है। वह बारह बच्चों की माँ होते हुए भी झुनिया को बेटी के समान मानती थी। चुहिया एक सरल दयालु एवं परोपकारिणी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह सभी के साथ अच्छा व्यवहार करती है। वह एक ऐसी औरत है, जिसके व्यक्तित्व में नारी सुलभ गुण समाविष्ट है। जो इस उपन्यास की सशक्त, संघर्षशील, धैर्यवान, दयालु और मातृ-स्नेह से परिपूर्ण स्त्री पात्र है।

निष्कर्षतः देखा जाय तो लेखक प्रेमचन्द जी ने अपने गोदान उपन्यास में लगभग चौदह स्त्री पात्रों जैसे- धनिया, झुनिया, सिलिया, पुनिया, मालती, सोना, रूपा, चुहिया, मीनाक्षी, नोहरी, गोविन्दी, सरोज, गोमती, दुलारी सहुआइन, आदिवासी स्त्री आदि को चुना है। उनके सभी स्त्री पात्र अपने जीवन में आने वाली विपत्तियों का डँटकर मुकाबला अपने

साहस, पराक्रम और वीरता के साथ करती हैं। वे सभी स्त्री पात्र अधिकारों और कर्त्तव्य के प्रति जागरूक और सघर्षशील हैं उनमें सामंती पुरुष वर्चस्व वाली प्रवृत्तियों से टकराते हुए देखा जा सकता है। वे सिर्फ अपने ही घर में हो रहे अत्याचारों का डँटकर सामना ही नहीं करती हैं बल्कि समाज में अपने साहस, पराक्रम, निर्भीकता-निडरता और बुद्धिमता के साथ डँटकर मुकाबला करती हैं और उन्हें सबक भी सिखाती हैं। ये सभी पात्र समाज के अन्य स्त्रियों को जीवन में आगे बढ़ने और जीवन में आने वाली विपरीत समस्याओं का डँटकर सामना करने के लिए प्रेरणास्त्रोत का भी कार्य कर रही हैं। दरअसल यह उपन्यास स्त्री-जीवन संघर्ष के जीत की मिसाल है यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता है। स्त्री चरित्रों का यह संघर्षशील वैविध्य भी उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मुंशी, प्रेमचन्द, गोदान 1936, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा0) लि0 X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020, पृष्ठ-40.
2. वही, पृष्ठ 99.
3. वही, पृष्ठ 19.
4. वही, पृष्ठ 229.
5. वही, पृष्ठ 266.
6. वही, पृष्ठ 43.
7. वही, पृष्ठ 188.
8. वही, पृष्ठ 249.
9. वही, पृष्ठ 224.
10. वही, पृष्ठ 229.
11. वही, पृष्ठ 224.
12. वही, पृष्ठ 225.
13. वही, पृष्ठ 314.
14. वही, पृष्ठ 27.
15. वही, पृष्ठ 51.
16. वही, पृष्ठ 218.
17. वही, पृष्ठ 185.
18. वही, पृष्ठ 234.
19. वही, पृष्ठ 236.

- नागेश्वर सिंह, विद्या राय, प्रेमचन्द के शोषित-दलित पात्रों की अन्तर्वेदना।
- आचार्य निशांतकेतु, गोदान-परिशीलन मूल्यन, शीलन एवं तुलन।
- गोदान को फिर से पढ़ते हुए, साखी, प्रेमचन्द साहित्य संस्थान का त्रैमासिक।

●●●

स्थापित मानवीय मूल्यों का सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत के रूप में एक विवेचन

रमेश कुमार*

भारतीय आदर्शों से युक्त मानव-मूल्यों ने हमेशा ही मस्तिष्क व हृदय के अर्न्तद्वंद के बीच प्रेम की पराकाष्ठा को स्थापित करते हुये हृदय-पक्ष लेकर पहले ही विश्व-बन्धुत्व व प्रेम के रिश्ते की व्याख्या करते हुये उन्माद को तिरस्कृत करने का कार्य किया है और इसी में पूरे विश्व का कल्याण निहित है। वैसे तो मानवीय मूल्यों का फलक इतना विस्तृत है कि इनको पारिभाषित व वर्गीकृत करना एक आसान कार्य नही है। फिर भी विषयगत विवशता हेतु इसको वर्गीकृत करने का एक निम्नवत प्रयास किया जा सकता है-

- शारीरिक मानव-मूल्य
- आर्थिक मानव-मूल्य
- सामाजिक मानव-मूल्य
- मनोवैज्ञानिक मानव-मूल्य
- बौद्धिक मानव-मूल्य
- आध्यात्मिक मानव-मूल्य

शारीरिक मानव-मूल्य-

शारीरिक स्थिति विकास एवं संपोषण की दृटि से शारीरिक मानव मूल्यों का अपना विशिष्ट महत्व है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ अंतःकरण, सबल आत्मा एवं निर्मल बुद्धि का अधिवास सम्भव है। एक ओर जहाँ मनुष्य के सूक्ष्म भावों एवं मानसिक वृत्तियों को चित्रित कर उसका समाधान प्रस्तुत किया जाता रहा है, वही उसके शारीरिक सौन्दर्य एवं स्वास्थ को भी सम्यक विकास प्रदान करने एवं संयमित रखने हेतु निम्न उपादानों की अनिवार्यता अपरिहार्य है जिससे मानव, जीवन संग्राम में विजयी बन सके।

- आहार
- विहार

---

* **अनुभाग अधिकारी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

- श्रम व नींद
- वस्त्र, आवास एवं औषधि
- मनोविनोद या मनोरंजन

आर्थिक मानव-मूल्य-

अर्थ, शारीरिक, आध्यात्मिक एवं अन्य मूल्यों का साधन मूल्य होने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा एवं एश्वर्य का हेतु भी है।[1] समाज में प्रायः अर्थ सम्पन्न व्यक्ति ही सम्मान का पात्र होता है। धन के अभाव में सारे गुण किंशुक के पुष्प की भाँति निर्गन्ध प्रतीत होते है और धनहीन व्यक्ति हीनता का अनुभव करता है। दरिद्र का साथ उसके मित्र भी छोड़ देते है। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार तो अर्थ ही समाज के हर सम्बन्धों का दलाल एवं बड़े-छोटे, धनी-गरीब और सुखी तथा दुखी प्रत्येक असमानता की मूल जड़ है। इसी असमानता को मिटाने के लिये सर्वहारा वर्ग पूजीवाद के खिलाफ अपना जेहाद बोलता है। कुल मिलाकर अर्थ की मूल्यवत्ता असंदिग्ध है। मात्र उसी को देखकर संतोष करता है। दोनों ही स्थितियाँ निष्फल कही जा सकती है। भारतीय मनीषियों ने स्पष्ट कर दिया है कि-

'विद्याविवादाय धनंमदाय, शक्तिः परेषां परपीडनाय।।'
'खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय, दानाय चरक्षणाय।।'

निम्न मुख्य उद्देश्यों के लिये मानव को अर्थ की आवश्यकता मूलतः पड़ती है

- अलोलुप्त्व
- त्याग के लिये अर्थ संग्रह
- अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन का महत्त्व
- विलास संबंधी दुरपयोग से बचाव
- अर्थ वितरण

सामाजिक मानव-मूल्य-

समाज एवं व्यक्ति का संबंध अन्योन्याश्रित है। मानवीय मूल्य भी समाज एवं व्यक्ति दोनों से समान रुप से संबन्धित होते हैं।[2]

कुछ विचारक मानवीय-मूल्यों को वैयक्तिक एवं सामाजिक दो भागों में विभक्त करते हैं। लेकिन यह उचित प्रतीत नहीं होता। क्योकि समाज व्यक्तियों के समूह से ही बना होता है। वैयक्तिक कहे जाने वाले मूल्यों को जब हम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हैं तो वही सामाजिक-मूल्य बन जाते हैं। समाज के अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व के उचित एवं सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। इन्हे मुख्य निम्न श्रेणी में रखा जा सकता है।

- पारस्परिक सहयोग एवं मैत्री-भाव
- व्यक्ति-स्वातंत्र्य, राष्ट्रधर्म, स्वाभिमान, सामाजिक व्यवस्था
- अधिकार एवं कर्तव्य, कर्म की प्रधानता, न्याय, कृतज्ञता
- आशावादिता, धैर्य, शौर्य, त्याग, अहिंसा, नीति, धार्मिक भावना
- पारिवारिक जीवन, प्रणय, परिणय, नारी प्रतिष्ठा, अतिथि सत्कार
- लोक-कल्याण, विश्व बन्धुत्व, समत्व भावना, आत्म-संयम

मनोवैज्ञानिक मानव-मूल्य-

विश्व की विभिन्न जातियों में चाहे जितनी वैचारिक एवं व्यवहारिक विविधता हो, पर मन में इस तत्व की कल्पना के संबंध में आश्चर्यजनक विचार साम्य देखने को मिलता है। इसका एकमात्र कारण है सामान्य से सामान्य अनुभूतियों के अस्तित्व में अपने में मन की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका। इसे यदि सामाजिक विचारक कार्य व्यापार का मूल मानते है तो आध्यात्मिक विचारक बन्धन एवं मोक्ष का कारण। इनका अध्ययन हम निम्न शीर्षकों में कर सकते हैं।

- निर्द्वन्द्वत्व
- अकुंठा
- निर्विकारता अचांचल्य

बौद्धिक मानव-मूल्य-

विश्व की संरचना में सबसे महत्वपूर्ण प्रज्ञा बतलाई जाती है। यह प्रज्ञा स्वभावतः दो स्तरों पर प्रकट होती है- व्यष्टि एवं समष्टि। व्यष्टि स्तर पर वह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित एवं संचालित करती है। तथा समष्टि स्तर पर उसका अत्यंत परिष्कृत रुप देखने को मिलता है। सच तो ये है कि इसके विना न सृष्टि संभव है, न संपोषण और न संहार ही। मानव-जीवन दोनों प्रकार की प्रज्ञाओं का अद्‌भुत सम्मिलित स्थल है। गीता में भगवान कृष्ण ने तीन प्रकार की बुद्धि व विवेक की चर्चा की है- 'सात्विक, राजस एवं तामस'[3]

- विवेक
- प्रत्युत्पन्नमतित्व
- औचित्य निर्धारण
- महत्वाकांक्षा

आध्यात्मिक मानव-मूल्य-

विश्व के महान विचारकों ने प्रत्येक वस्तु तत्व को तीन स्तरों पर स्वीकार किया है- 'आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। पीछे जिन मानव मूल्यों की चर्चा हुई है, वे सारे

मानव मूल्य प्रायः भौतिक पक्ष से ही सम्बद्ध रहे है। जहाँ तक आध्यात्मिकता का सम्बन्ध है- व्यष्टि और समष्टि चेतना की यह सबसे उच्चतम स्थिति है, जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि की परिधि से सर्वथा परे अनुभूतियों को भी न केवल समेटती है, अपितु उसके दिव्य अस्तित्व पर भी सही करती है। विश्व के विचारक ऐसी स्थिति को ही आध्यात्मिक चेतना से सम्बद्ध कर स्वीकार करते है। इसके अन्तर्गत हम निम्न मूल्यों को देख सकते है-

सत्य, करुणा, पवित्रता, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, शील, प्रायश्चित, आस्था

युग विशेष के महान चिंतक की प्रज्ञा इतनी सजग होती है कि वह अपने सम्पूर्ण परिवेश में घटने वाली प्रत्येक घटना का सूक्ष्म अवलोकन करने से नहीं चूकता। परिणामतः ऐसे उपादानों के अनुसंधान में लग जाता है जो युग को सही दिशा दे सके। युग की विभीषिका, युग का भटकाव और उसका अनागत ऐसे चिंतक के चिंतन का मुख्य विषय होता है। हमारे इस प्राचीन आर्यावर्त के मानव-जीवन व मानव-मूल्यों की एक वृहद समृद्ध इतिहास व परम्परा रही है, जिसके बल पर हमने पूरे विश्व-समुदाय को समय-समय पर दिशा-निर्देश देने का कार्य करते रहे है। ये हमारी मूल्यों की सम्पन्न विरासत ही रही है जिसने जहाँ अतीत में पूर्व से लेकर पश्चिम तक तमाम चिंतकों को अपने चिंतन की दिशा दी है। वही वर्तमान में इलियट जैसे लोगों को ओम् शान्ति! ओम् शान्ति! कहने को बाध्य किया। यूनीक्यूक को हमारे अध्यात्म के बारे में सोचने को बाध्य कर दिया। मगर वर्तमान में जिस तरह हम अपने समृद्ध परम्पराओं पर केवल इतरा कर अपने आप को गौरवान्वित समझते रहे, उनके वाहकों को ईश्वर मानकर केवल पूजते हुये अपने मूल उद्देश्यों से च्युत होते गये। वही विश्व के अन्य देशों ने हमारी उस विरासत से प्रेरणा लेकर अपने आप को प्रगति के पथ पर अग्रसर कर लिया है। अब सवाल ये उठता है कि आखिरकार इस लक्षित गिरावट का कारण क्या है। निसंदेह भूमंडलीकरण और विश्व बाजारवाद की आंधी के अर्न्तगत आयातित पश्चिमी सभ्यता ने जिस तरह से देश के कर्णधार हमारी युवा पीढ़ी को खोखला करने का कार्य किया है, उसके परिणामस्वरूप तीव्रता से विपन्नता की ओर अग्रसर मूल्यहीन, लक्ष्यहीन, दीन-हीन एवं दुर्बल युवा-पीढ़ी आज हमारी सम्पत्ति के रूप मे विराजित हैं। उनमें पुनः आस्था व विश्वास का संचार करने के लिये हमें पुनः अपने सम्पन्न अतीत की ओर जाना पड़ेगा, जहाँ मानवीय-मूल्यों से युक्त रामायण और गीता सहित एक सम्पन्न साहित्य विरासत हमारी प्रतीक्षा कर रही है और जिसके द्वारा वर्तमान में संत्रस्त एवं भटकते मानव को आस्थाशील, आशाजनक, सुविचारित, स्वस्थ एवं सम्यक दिशा दी जा सकती है।

मुझे लगता है कि आज के सांस्कृतिक क्षरण, भीतरी खोखलेपन और मूल्यों के विघटन के दौर में हमे अपने सम्पन्न साहित्य विरासत की प्रासंगिकता को समझते हुये उसमें

निहित मूल्यों पर पुर्नविचार की आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि आज की तमाम जटिल समस्याओं का समाधान इसमें निरूपित जीवन-मूल्यों को अपनाकर किया जा सकता है।

असत् से सत् की ओर और तमस से ज्योति की ओर उन्मुख होना ही हमारी संस्कृति की अवधारणा रही है और हमारी रामायण और गीता सहित समस्त सम्पन्न साहित्य विरासत का सम्पूर्ण उपक्रम इसी आर्य सत्य को उद्घाटित करने में संलग्न है। उनके राम जनमानस के लिये सत् भी है तथा ज्योतिपुंज के साथ अमृत तत्व भी। तुलसी के 'रामराज्य' में सभी- ***'निज-निज धरम निरत'*** है- सब वेदसम्मत धर्म का पालन करते है- ***'चलहिं स्वधरम निरत श्रुति नीति'***- भौतिकता के सरोवर में आकंठ डुबकी लगाने वाली वर्तमान पीढ़ी के लिये यह संदेश है कि भारतीय संस्कृति को अपसंस्कृति से बचाने हेतु अपने वेद सम्मत धर्म-पथ पर चलकर, अपनी पुरातन उपलब्धियों और मूल्यों के आधार पर वर्तमान विकास की नींव रखनी पड़ेगी तभी ***'सर्वे भवन्तु सुखिनाः, सर्वे सन्तु निरामयाः'*** के सपने को साकार किया जा सकता हैं।

सन्दर्भ-

1. स्वर्ण खचित यह शिरत्राण है कह रहा।
   वर्म बना बहुमूल्य बताता विभव को।। प्रसाद, करुणालय, पृ. 23
2. Sociologically, values maky be defined as those criteris according to which the group or society judges theimportance of persons, patterns, goals and other socio-cultural objects- Joseph J. Fichter – Sociology, Page 393-94
3. प्रवृतिं च निवृत्ति च कार्याकार्ये भयाभये,
   बन्धं मोक्ष च या वेत्ति बुद्धि सा पार्थ सात्विकी। गीता 18/ 30
   यया धर्ममधर्म च कार्य चाकार्यमेव च,
   अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। गीता 18/ 31
   अधर्म धर्मामिति या मन्यते तमसावृत्ता,
   सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। गीता 18/ 32

●●●

Critique of Contemporary Civilization Ethos and Modernity : Presenting Dystopian Ethics and Leadership Crisis

Rajan*

Abstract

The attributes and representative spirit of a culture, era, or community as manifested in its attitude and aspiration holds the commencement of ethos.Every civilization has got its own unique ethos, but at present, it is shared with multiple factors such as the communication gap have been filled with amazing mediums, people are more open to new things and ideas , the world is much-more globalised than before and so on.But despite such liberal facts, we have been facing so many problems and deprivation in every aspect of human life. Service and leadership, art and aesthetics, ethics and morality, politics and society, science and law, and any other realm of human enterprise have been filled with much more complexity and crisis. The purpose of this paper is to address such human complexities and stepping stones in the path of human prosperity following the dystopian ethics and critical methods. It is a natural and essential human phenomenon to have a critical outlook because a man who has begun to question lifeand It's deeper problems want something more definite and conceptual for his holistic well-being than a mere promise of heavenly joys or 'eternal life' when he passes out of his brief and feverish life on this planet. But the problem occurs when this critical tendency starts fading away, and we follow the path of the herd and loses our natural instinct to question the thing including the flawed ethos or way of life.Therefore, we will follow the dystopian approach to not to give any consolation or assurance of miracle because the genuine freedom has to be found by and within each self. The paper concludes by intending to know how to retain that missing harmony and true leadership in contemporary civilization ethos.

Keywords– Civilization, Modernity, Ethos, Leadership, Public, Dystopia, Ethics

---

* **Research Scholar, Department of Philosophy and Religion, BHU.**

We all try to depict an ideal world in which everything seems perfect. Such ethics negatively picture world without war, poverty, or crime, and positively imagine peace, prosperity, and overall happiness of everyone. This phenomenon has a very long history, and perhaps no one can have any complaint about such goals as what society and an individual needs accept such harmonizing way of life. If we look at the history of the western world, in Greek society, Plato very firstly proposed a rational state ruled by philosopher-kings, and most of the religions as well promise ecstasy, if not here, in the afterlife. So throughout history, various groups have tried to build a nirvana or paradise on Earth, but where did they fail? Some might say they didn't, but facts depict something different as the last century have been through the bloodiest century of the history of humanity, and at present, we have been going the pandemic. So those who argue about the success of the modern world, at least, will have to respond to such dystopian facts which came out of so-called modern practices. As Jonathan glover put it: "…the two world wars, the Nazi genocide, the killing of millions under Joseph Stalin and Mao Tso Tung, Hiroshima and others—are among the worst ever man-made catastrophes. How were people able to do such things to each other? The hope behind the inquiry was that better understanding might help make repetition a bit less likely…"[1]

Thomas More's 1516 masterpiece "Utopia" gave this notion a name which Greek stands for "no place" or "imaginary land' 'although the appellation of this idea put forward the attitude of impossibility, contemporary civilizational ethos with the help of modern scientific and political progress still have a stubborn attitude to convert these dreams into reality. But despite having such lofty goals and mediums, over and over again, their plains turned into incubuses of war, famine, and oppression. For an instance, Plato and Hobber are often blamed to put forward the idea of the totalitarian regime. And it is here the thinkers and artists bring into being a dystopian point of view i.e. the art to question utopian thinking. For example, Jonathan Swift's "Gulliver's Travels" come across fictional and utopian societies, some of which at first proposed a great future, but turn out to be seriously flawed. Alex Gendler interprets Gulliver's Travels":

> On the flying island of Laputa, scientists and social planners pursue extravagant and useless schemes while neglecting the practical needs of the people below. And the Houyhnhnm who live in perfectly logical harmony has no tolerance for the imperfections of actual human beings. With his novel, Swift established a blueprint for dystopia, imagining a

world where certain trends in contemporary society are taken to extremes, exposing their underlying flaws. And the next few centuries would provide plenty of material. Industrial technology that promised to free labourers imprisoned them in slums and factories, instead, while tycoons grew richer than kings.By the late 1800s, many feared where such conditions might lead.[2]

Alex Gendler further cites two more dystopian masterpieces:

H. G. Wells's "The Time Machine" imagined upper classes and workers evolving into separate species, while Jack London's "The Iron Heel" portrayed a tyrannical oligarchy ruling over impoverished masses. The new century brought more exciting and terrifying changes.[3]

It is a fact that medical advancements have made it possible to transcend our biological limits, agricultural revolutions have flabbergasted us by reducing the global hunger index dramatically, automated travelling has made the world faster and globalized, and mass media allowed instant communication,and so on. But there is also another picture of such advancements which put forward that we need to look at tribulations that are bound behind all such encroachments. The dystopian outlook set forth that if such hidden evils do not get realized at early warnings then catastrophes in all forms are inevitable. For an instance, we need to look at Medical advancements to know how it has turned the human standards into mere medical gaze by making us a mere bundle of bones, flesh, and blood. Gandhi and Michel Foucault can be our ideal to grasp such degradation in human insight.

Similarly, we need to grasp the crisis of the use of chemicals and fertilizers in the name of agricultural revolutions and diseases associated with them, and so on. So one thing for sure, those who propose the agenda of progress with so-called modernity practices didn't present the full picture. And how can we miss the transformation of morality which earlier accustomed the normative values and virtues, but with the very involvement of modernity, it has turned to be the contemporary moral philosophers' pseudo-legalistic agenda? It doesn't make any difference whether to have belief or disbelief in the authority of a divine lawgiver since we are still seeking a foundation of moralities in rigorous obligation. It is sad progress that needs a philosophical transformation to show the real progress of modernity. What is the benefit of modernity if all it does with material and consumerist progress?

(I)

Freedom and Public Leadership: Looking at Contemporary Civilization Ethos through Dystopian Ethics

Huge debates are going around about how our society and civilization is driven throughout the century.Adding to the above introductory notes, two great personalities, George Orwell and Aldous Huxley, from the 20th century, tried to grasp the dystopian picture of societyand depicted how it affects the collective consciousness, creativity, and consequently the leadership. Aldous Huxley predicts a futuristic society that has tried to create a perfect community where everyone is happy but the slave of technology and drugs. Masters will use Science, technology and drugs as a mean to produce slaved mass people, and condition them to do and want only the things they're supposed to do. But in doing that they take away freedoms like the freedom to think for oneself.

It is here the fundamental problem arises that – is it better to be happy or free?And how can we forget the importance of Freedom which is the key to ethics, creativity, leadership, and other positive things? We need immediate attention to know that if the freedom of an individual is affected then nothing prosperous could be imagined. Freedom is like the air we breathe in and out, but we are not aware of that as long as it is being prevented.But the moment we feel this crisis, everything is disorganized. In a similar tone, George Orwell speaks out, in his book "1984", where he depicted how totalitarian government and bureaucrat tries to control every aspect of life just to enjoy the power and profit. They even conditionthe people to spend every moment of their private time to not be aware of their crisis. As Neil Postman, in his famous book Amusing 'Ourselves to Death: Public Discourse in the Age of Show Business', summarised two famous dystopian novels 1984 by George Orwell and Brave New World by Aldous Huxley in the following manner:

> What Orwell feared were those who would ban books. What Huxley feared was that there would be no reason to ban a book, for there would be no one who wanted to read one…Orwell feared that the truth would be concealed from us. Huxley feared the truth would be drowned in a sea of irrelevance. Orwell feared we would become a captive culture. Huxley feared we would become a trivial culture…In 1984 people are controlled by inflicting pain. In Brave New World, they are controlled by inflicting pleasure. In short, Orwell feared that what we fear will ruin us. Huxley feared that what we desire will ruin us.[4]

In other words, it is obvious that totalitarianism might not be possible in the modern world because democracy has been accepted and practised as a key-value worldwide. But Huxleyan prediction sometimes seems fit to describe the modern world about how actually freedom dies, and consequently leads to multiple crises including the leadership crisis. Critical thing is that contemporary civilization ethos is not an exception that is under the domination of whatever Huxley's predicted about the modern world, it has a very long tradition which we need to observe again and again. Freedom is essential for everyone, for leaders regarding choices and for followers regarding the way of life.

> Followers are not mere 'sheep': they, in fact, often quite deliberately observe, weigh, test, choose and, indeed, 'deselect' leaders — thus determining the fate of leaders as much as leaders determine theirs. From this perspective, leadership, like any other feature of social life, emerges as a symbolic, negotiated order."[5]

It is worth noting that the notion of freedom which we have been discussing here is all-inclusive, and have slightly different values from the classical notion of freedom. Typically we assume and limit ourselves to social and political freedom, but in the modern world, there is another form of freedom which is emotional and psychological freedom which we have been missing to a very large extent. To get some motivation and reference, we may take shelter into Gandhian and Huxley's philosophy of freedom. They talked about inclusive freedom and argued that psychological, emotional and spiritual liberty is a much-needed phenomenon at present all around society for individual well-being, well-formed leadership, and inclusive prosperity. If we could develop such virtues and a way of life than we may conjoin with modernity, otherwise it may also become a blasphemy for us which the medieval period used as manipulative agenda.

This thing needs to be taken into consideration that there is no socio-political freedom or liberty that is not indissolubly bound up to the inner personal liberty (*swaraja*) of individuals who make up that nation and society. In other words, we can't imagine the freedom of a nation of mediocre and conformist. The formula is simple, no free nation made up of mere matter only. There is a new way in trend in the name of modernity which deliberate freedom to be something subjectivist attitude.It implies that since modernity promotes individualism therefore freedom comprises in something whatever someone likes to do. There is nothing wrong with such a notion of freedom but one thing needs to be taken into consideration that freedom without a sense of responsibility (social and personal)

is nothing more than giving a loaded gun in a child's hand. With such a notion, a leader is more prone to be corrupted. Freedom in its essence is the acceptance of the responsibilities and duties which suit us, and for which we are suited, and of the harness in which we pull towards an end chosen and valued by our self, and not imposed.

Freedom is not, and never can be, and even ought not to be, the absence of responsibilities and duties. Such fundamentals are also needed for good leadership and social harmony. If a civilization accepts such a philosophy of right with responsibility then everyone is a leader from an individual and social level to the organizational level. When we take freedom as a social and personal responsibility, the prerequisite virtue of a good leader, which must not affect others in any form, at any place, then obviously it might be a burden and anxious for someone who lacks such capability to fulfil its requirement. Because leadership is a skill that we acquire through experience, learning, patience, persistence, and perspiration and sadly those who lack such values fail to take up the leadership duty. Erich Fromm put it: "Can freedom become a burden, too heavy for a man to bear, something he tries to escape from?"[6]

It is a very sound question representing a very sound counter-argument against those who promote radical subjective attitude towards their leadership carrier, personal and social choices. The answer to Erich Fromm's question from a current perspective of freedom would be 'yes' because the conception which subjectivists approach about freedom imbibes is very prone to fail in the fulfilment of its responsibility. For instance, if a leader uses his or her position for their benefit only, or to rule over, then can there be any progress expected?Maxwell quotes T. S. Eliot to show how using one's position rather than responsibility in leadership is dangerous. "Half of the harm that is done in this world is due to people who want to feel important.... They don't mean to harm.... They are absorbed in the endless struggle to think well of themselves."[7]

It is a critical problem and an existential crisis as well, since the thing which is basically an illusion and a way to slavery, have been taken as freedom. We consider ourselves to be free because we are free from freedom and responsibility, and not from slavery. Rollo may write in freedom and destiny: "Nothing has ever been more insupportable for a man and a human society than freedom. Man is tormented by no greater anxiety than to find someone quickly to whom he can hand over that gift of freedom with which the ill-fated creature is born."[8] After the contemplation of such a notion of freedom, we need to pose a question that is it

going to contribute anywhere in the human enterprise? Is leadership or even well-being possible in such a sort of crisis? Most probably, our response would be negative. So without any deal, we left it open-ended to decide what we really mean by modernity and freedom?

The narcissist and the megalomaniac believe that happiness is possible, though they may adopt mistaken means of achieving it; but the man who seeks intoxication, in whatever form, has given up hope except in obliviousness. The modern way of life such as crude hedonism, consumerism, crony-capitalism, and domination of post-truth predicted by Aldous Huxley, George Orwell, and Mahatma Gandhi seems to be an apparent reality of so-called modern society and contemporary civilizational ethos. And it is also the main causes that we come to know how freedom dies'. Goethe two centuries ago said None are more hopelessly enslaved than those who falsely believe they are free seems quite applicable to the modern world when we consider ourselves to be falsely free while philosophically opposite of it seems true. To grasp these problems sometimes we need to adopt the dystopian outlook to shock the mind of the people what is actually going on. Bartend Russell writes in this regard :

> ...Or, again, watch people at a gay evening. All come determined to be happy, with the kind of grim resolve with which one determines not to make a fuss at the dentists. It is held that drink and petting are the gateways to joy, so people get drunk quickly, and try not to notice how much their partners disgust them. After a sufficient amount of drink, men begin to weep and to lament how unworthy they are, morally, of the devotion of their mothers. All that alcohol does for them is to liberate the sense of sin, which reason suppresses in saner moments. The causes of these various kinds of unhappiness lie partly in the social system, partly in individual psychology — which, of course, is itself to a considerable extent a product of the social system.[9]

We may not oppose the idea that Focus and discipline, in other words, are the necessary elements in the acquisition of success and mastery. Leadership is also a skill that requires focus and discipline but circumspection can give us the sense such virtues are under scarcity. Now if we introspect, we find the modern conception of pleasure seems quite threatening, the way people behave and chose in their private life, according to psychologists and anthropologists is quite alarming. Unfortunately, in the modern-day few people possess challenging virtues and traits which allow them to acquire greatness in their field of expertise, and talking about

self-fulfilment is actually searching the water in the desert. How had this crisis fallen upon us? This is the direct result of a psycho-emotional addiction that has become an epidemic in our modern time; that being the addiction to glaring screens and constant notifications of smartphones, constant uncontrollable urge to check them, and social media, etc. As Fredrick Nietzsche expresses in "The Gay Science":

> Even now one is ashamed of resting, and prolonged reflection almost gives one a bad conscience. One thinks with a watch in one's hand, even as one eats one's midday meal while reading the latest news on the stock market; one lives as if one always "might miss out on something.[10]

Another crisis that has fallen upon the contemporary civilization ethos is that in modern times, the heroic and achieving high ideals which are the primary source of individual well-being seems too big for us, or we too small for it. Earlier virtue ethics proceed such a courageous way of life where an individual could work for mastery, reality and wisdom, but technological conditioning has shattered everything. At present, tell a young man that he or she is entitled to be a leader and they will blush or hesitate to accept it. But can we imagine a leader without virtue and self-trust? Most probably not, "...Potential leaders must exhibit a strong need to achieve (and a history of taking initiative) as well as a drive for power? Such men and women often have a "redemptive urge". Those who lack this fervour and the willingness to make an extended commitment to the leadership path are not likely to succeed."[11] In other words, if everyone honestly admitted his or her urge to be a leader. Then it would be a devastating release of truth, and this truth about the need for individual well-being leadership is not easy for anyone to admit. In the more passive masses of the mediocre majority, it is disguised. Actually, It seems a very serious thing to be analysed since earlier we use to distrust ourselves and people used to say 'trust yourself' but now the situation is more worst we are not ready to listen to anyone that we are capable to become heroic or achieving high ideals.

So what is the solution to the above crisis? We may have so many, but we will seek some the solution in virtue ethics and critical questions. To put it simply, the novel experience is an essential part of an evolution in life, including leadership capabilities. But those novel experiences must define the heartily desire to attain the heights in one's expertise. If those novel experiences will be of a mediocre level then nothing evolutionary can be accepted. It is one of the main tasks in front of modern leaders to define what novel experience is complimentary and what is not. Obviously, it is not a good approach to depend on the opinion of the other all

the time, but still, need to introspect what has changed that trust in one's potential is missing day by day. Why we need another shot of drug, another glass of drink wine to say to ourselves that we are capable to achieve something? It is a sad and problematic fact for human evolution.However, it is for us how we look at it. As sometimes an existential crisis is needed for valued progress. Therefore, this dystopian picture of contemporary civilization ethos is not about having a pessimistic attitude or practising post-truth rather depicts a modern-day reality that needs to be tackled as soon as possible for the betterment of society.

It is not a new phenomenon; historically we can find so many examples, empires, and kingdoms that have surrendered their freedom because they lacked responsibility. Slavishness and crude hedonism based on mediocrity and conformity was their main course of business, which consequently leads them to their own destruction. Parameters may change, but the same philosophy applies to individual obliteration of character, well-being and prosperity. The problem is not those historical instances but the crisis lies in the fact we still have not learned from those civilizations and cultures that have paid for their misfortune that they didn't focus on their way of life. Fyodor Dostoevsky's ironic quotation seems to fit to describe the modern civilization "In the end, they will lay their freedom at our feet, and say to us, "Make us your slaves, but feed us."[12] Feeding is not something like food and shelter but proving pharmaceutical drugs, distraction, mediocre pleasure, and comforts, it is the crisis that we have to tackle. We need introspect that does structuring our life to mere self-interest, pleasure, and megalomaniac purposes lead to true satisfaction. Does it make us a true leader? Isn't it a false belief of placing oneself on the hedonic treadmill? We spend our lives frantically running towards the goods, goals, events, and people whom we hope will imbue our life with the pleasure needed for a happy existence. Yet upon attaining the objects of our desire, we quickly acclimate to our new conditions and return to our default state of being.

(II)

Contemporary Civilization Ethos, well-being and leadership: Finding Moral and Spiritual Crisis

Every society and civilization has been driven with the virtue of leadership since antiquity to modern time, and fortunately, it is one of those entitle that is still accepted as valuable as much as earlier. Handling or guiding a nation, society, organization, or even family without a leader is like crossing the sea without a compass. But leadership is not just a position rather a continuous process of attaining

skills, values, and experience. One should never hesitate to explore one's leadership skills. Maxwell writes about the reciprocity of value and leadership "your values are the soul of your leadership, and they drive your behaviour. Before you can grow and mature as a leader, you must have a clear understanding of your values and commit to living consistently with them—since they will shape your behaviour and influence the way you lead."[13] Leadership doesn't work like a machine or a computer that can be loaded with certain codes and antiviruses; rather it is a task of decision making, acceptance of challenges, and fulfilling the responsibilities which require value.

Obviously, Modernism, scientism, and contemporary civilizational ethos have brought up so much comfort and ease but can the same be true about our leadership, satisfaction, pressure handling, and responsibility and duty management? It is the fundamental problem that needs to be analysed at any rate before preaching about how to become a millionaire, leader, and happy. We live at a time when science, technology, economics, and GDP have decreased our physical suffering surprisingly and have impacted humanity on a larger scale. Can the same be true about leadership crisis, harmony among civilization, community, and different perspectives? Although science and technology have much to offer, but there is no app, device, equation, or pharmaceutical drug that can imbue our life with leadership, meaning peace, and prosperity that is to be traced in metaphysical, ethical, emotional, and social pursuits. Such meaning of life can't be wired in technology. Leadership is a virtue and all-time needed value which we learn and earn from our culture, values, and ancestors. Science and technology can do wonders if used in a constructive manner and with proper trading.

Cameron A. Batmanghlich raises a critical problem that why leaders fail ethically, he writes "in recent years the crisis in ethical failures in leadership in an organization, particularly corporations, has been highlighted more than ever. Psychological maladies leading to a higher number of sick leaves, the general feeling of disillusionment among the employees, loss of motivation and loyalty to employee suicide—both in Western corporations and other parts of the world—are just a few examples of the way ethical failures in leadership are expressed."[14] Regarding this leadership crisis, there are two ways, one suggests that any form of stress that challenges the leader's capability such as economic downturn or a general toughening of market situationsare furthering and function as a catalyst for unethical behaviour, implying that in good times, crises are lower in ethics and leadership. And another view is quite opposite to this, that suggests that lack of

ethical and moral value causes the leadership failure and consequently another failure such as organizational setbacks, lower team-truest, etc.

Our argument follows the second approach which affirms that lower moral and spiritual standards lead to the fundamental problem of leadership.In good time too,we human fellow fall into the trap of mediocre choices and stop taking challenges that is more dangerous than any form of stress or setback. AsLipman–Bluemen put it "recent decades have seen a plethora of these ruthless, skilled bosses, in part because wallflowers, do-gooders, and saints rarely seek positions of political or corporate leadership. After all, such traits as humility and selflessness are of little help as one climbs the corporate ladder. By their very nature, and often to the betterment of their performance, leaders are driven and competitive, charismatic and self-confident, smart and cunning. But those characteristics also can push a leader's behaviour into the realm of toxicity."[15]What is the reason behind Lipman–Bluemen prediction? The simple answer to this can be followed like this — leadership is a way of life; the way life has so many problems, complexity and challenges so thought the leadership. Thus we must not get afraid of the challenges, even should seek them for the betterment.

A typical understanding of spirituality suggests the concept of metaphysics only. We limit ourselves to the notions of God, *Moksha, Nirvana,* Heaven, and After Life,and so on but that seems quite absurd to the contemporary civilization. We need to know that it is a false as well as limited conception about spirituality. There is also another realm of spirituality thatis very much needed for modern society and leadership.We need to know that individual well-being and leadership is a holistic phenomenon that needs multiple intelligence and exigencies of the socio-political, ethical and spiritual dynamics.For instance, the concept of 'knowing thyself' or '*atmandipobhavo* ',or '*atmangyana*' is a well-known concept accepted in philosophy and psychology that can be associated with the modern concept of spirituality. Modern psychology and psychological theory or therapies have adopted this philosophical legacy (the concept of knowing thyself), and think throughto acknowledge self–knowledge to be one of the essential elements of a happy and tranquil life.

Greco-Roman philosophy put emphasis on over the ethics of "knowing thyself". Right from Socrates to stoic philosophers every one concern about self-knowledge. And similarly, in eastern philosophy it is one of the essential paths as well as a goal also for liberation and freedom of the self that leads to Swaraj(freedom) in every form …Swaraj in ideas, way of life, leadership and so on. Daniel Goleman,

a well-known psychologist, explores and affirm the above philosophical ideas as a way to well-being and good leadership. He gave the concept of emotional intelligence and how it is an important element of good leadership. Daniel Goleman explains emotional intelligence:

> ...Most elements of every emotional intelligence model fit within these four generic domains: self-awareness, self-management, social awareness, and relationship management. Based on each of these core abilities are learned workplace competencies that distinguish the most successful leaders. While our emotional intelligence determines our potential for learning the fundamentals of self-mastery and the like, our emotional competence shows how much of that potential we have mastered in ways that translate into on-the-job capabilities."[16]

The theory of emotional intelligence clearly affirms the idea of 'self-awareness' that resembles the philosophical notion of self-actualization or *atmangyana*.Andpromotes the idea that it can lead to success in every field. Goleman put it "Self-awareness is the first component of emotional intelligence – which makes sense when one considers that the Delphic oracle advised to "know thyself" thousands of years ago. Self-awareness means having a deep understanding of one's emotions, strengths, weaknesses, needs, and drives. People with strong self-awareness are neither overly critical nor unrealistically hopeful. Rather, they are honest with themselves and with others. People who have a high degree of self-awareness recognize how their feelings affect them, other people, and their job performance. Thus, a self-aware person who knows that tight deadlines bring out the worst in him plans his time carefully and gets his work done well in advance. Another person with high self-awareness will be able to work with a demanding client."[17] To interpret it philosophically, we can argue that all the further components of emotional intelligence basically drive out of self-awareness. "Introspection and self-reflection have become the holy grail of leadership development. Increase your self-awareness first. Know who you are. Define your leadership purpose and authentic self, and these insights will guide your leadership journey."[18]

Now the question is genuine to the philosophical mind what does it mean to know thyself or *AtmaGyan*? What sort of state it is? What does it have to do with spirituality and leadership?The answer to such a question is as similar and complex as defining the other discipline and theirnature. But the good thing is that the absence of a definition does not leave us entirely in the confusion. For an instance, After all, no one has yet agreed upon the definitions of literature, or life,

or art, or philosophy, and yet we know a great deal about those things and also contribute and explore them. As there is not a single conception about the definition of philosophy and its nature so though the conception of self-knowledge is debatable which is a good thing for the exploration of any phenomenon. Historical study of cultures and civilizations and analysis of this concept can give a sense of progress towards this idea of '*Know Thyself*'.Know thyself or *AtmaGyan* is a moral epistemological and injunction in which an individual totally aware of one's nature, potentiality, and personality.

Terms might differ and we may call this phenomenon with a different – different name such as "Naturalism," "Humanism," and "Eudaimonism" for the theory, "perfection" "flourishing" and "self-realization" for the ideal. But all somehow indicate towards the single idea that is the progress towards the highest possibility of human nature and potentiality.Imperatively, the assertionre presents and motivates that man must stand and live according to his genuine nature with full potentiality.The utility of this concept is very applied as well as important too for the flourishing of the world and humanity. Leadership, relationship management, Ethical crisis, humanitarianism, social and political issues, all can be viewed with different outlooks with just a simple shift of attention from outward to inward. Every great change starts with oneself …as Gandhi advocated "be the change you want to see in the world." Means ultimately the fundamental philosophy of the great human relations with everything and everyone starts with oneself. The golden principle of morality and *Atmadipobhava* etc. type of philosophical principles culminates the conception of *Atmagyan* or self-realization.

The argument is simple,if we are not aware of our true self then due to false knowledge (*Avidhya*) we will guide ourselves with false convictions and notions which would be motivated by immoral acts and false desires. Consequently, this way of life would not take others and even anything into consideration, which results in flawed leaderships and individual crisis. It is the most essential thing for an individual as well as for aleader, without it leadership losses its spirit and individual it's well-being. Mintzberg writes "People can be developed. Not as leaders, but as human beings, in their beliefs and behaviours, their thoughtfulness, and self-respect. But that probably happens mostly in the early years, at home and in school."[19]In other words, it is ignorance that motivates falsely that wealth, power, and pleasure are the only greatest goods in life, and therefore if necessary, we may use an immoral path to attain these ends that hit the positive roots of humanity and consequently leaderships, happiness, and harmony. The real value that self-

knowledge teaches us is that we should not consider others as means rather as an end. As Immanuel Kant and Gandhi point out: "The "humanity formulation" of the Categorical Imperative demands that every person must Act in such a way that you treat humanity, whether in your own person or in any other person, always at the same time as an end, never merely as a means."[20] This gives us the basic sense of Gandhi and Kant regarding the concept of "an end-in-itself". It can be put more informally as the idea that we should not "use" other people. It is one of those values which are enough for a leader to lead a team, society, and even whole humanity.

After having a glimpse of the liberal and scientific conception of spirituality and its need in modern times now let's know something about ethics and morality. "...There is an ethical approach to understanding public leadership. This asks the question if public leaders should, and can afford to, observe ethical standards, if not codes of conduct. This is an old question, harking back to Greek political philosophy and forever highlighted by the work of Niccolo Machiavelli. In this Machiavellian spirit, Lord Acton famously observed that power corrupts and absolute power corrupts absolutely, adding in the next line that 'great men are always bad men'. If that is the case, leadership in a democracy or democratic capitalist organization becomes inherently problematic. The primary task here is not to overlay a framework of ethics on top of leadership practice, as though we could clamp down on unethical leadership. Instead, it is to try to reveal the ethical orientation of leaders themselves, to try as best we can to understand what leaders understand by 'the ethics of leadership'..."[21] and the simple way to understand that lies in the fact of self-understanding which we discussed above and another through the understanding the limitations of human power.We all are pitfall creatures and struggle to live in harmony for a long; luckily we have got the ancient sources of wisdom in the form of ethics and morality which guides us like a lamp in the dark.

Crisis, catastrophe, and any other problem is a typical part of humanity. It takes innovation and new ideas to come up with creative solutions that address the obstacles at hand. The same applies to leadership and its ethics.Francis Herbert Bradley writes 'Man is not a man at all unless social, but man is not much above the beasts unless more than social.[22] Albert Camus, a nihilist resonates with Bradley while writing: "A man without ethics is a wild beast loosed upon this world."[23] Ethics and morality can be seen as one of the greatest sources of wisdom for people to experience self-discovery and provide inspiration for innovative and

practical solutions to the challenges humans face every day. In facing a harsh reality, people must affirm to survive, using critical thinking and moral courage as an essential value of a good life.East or west, every civilization, and culture affirm the idea that ethics and morality are the spirits of any culture.

It is a very big challenge to put this idea in the mind of the people that ethics and morality are an integral part of humans, and we all should embrace it for the betterment of self as well as society.Similarly,We can argue since ethics is an integral part of humanity thus we need to adopt this approach if we concern about humanity, and should check every philosophy,civilization and its ethos or system on this parameter. It is the ethics and way of life that determines the character and future of any civilization. And leadership is also not an exception in this case,as Cameron A. Batmanghlich put it "…Ethical leadership as the main leadership theory appears to be new in the sense that it not only exclusively focuses on the ethical aspects of a leader's behaviour but has ethics as its nexus and foundation. Ethical leadership is expressed in humility in the leader to call for help, being participative, supportive, avoiding toxic acts among other behaviours."[24]

One of the Central problems is what if the whole course of ethics and morality is in crisis.Then what will be the guide to any civilizationin the face of tough time such as leadership crisis, organizational misbalanced or whatever?As we mentioned in the abstract that our modern thinking scenario and contemporary civilizational ethos is that we care much more about our rights and interest than about our 'good' and responsibility. We are much more hesitant to talk about our goodness: it seems quite utopian or out-dated. A myth has been fixed like an epidemic that those who follow the classical values and methods would be left behind in a dynamic world. We lack a sense of others which is very much essential for leadership. And a fact has been buried that man is a social and emotional being and alienation form human value has become a trend. We need to introspect that what lead the great leaders of the world to resist in the face of moral crisis to be persistent

> …Mahatma Gandhi advocating his philosophy of nonviolence in the struggle for a free India despite repeated internment, Nelson Mandela enduring eighteen years of degrading imprisonment on Robben Island and still being able to forgive his oppressors in the apartheid regime of South Africa, Lech Walesa rising from the shipyards of Gdansk to lead the Solidarity Movement that ultimately played a decisive role in toppling Communism in Poland,Václav Havel, a dissident playwright, enduring

three prison sentences for organizing strong opposition to Communist rule of Czechoslovakia, Aung San SuuKyi defiantly resisting her imprisonment in Myanmar and remaining an outspoken voice for democracy"[25]

A good leader,like a solid civilizational ethos, constantly searches for how one ought to live and what actions one ought to do in the conduct of one's life, what is genuine beauty, and how to find beauty in everything. But it is a matter of courage. As we discussed above that noticeably modernity and its by-products have made our lives comfortable, but at a very high cost. We need to question whether the massive flow of information, the dark web, and machines havemade us more human. Did it help a bit in evolving a homogeneous society? Did it help in fostering and evolving differences between us? These things also need to be taken into account critically for the betterment of individual well-being, leadership, and social harmony. , R. J Allio writes "Character is the foundation for ethical leadership behaviour. It includes dimensions of integrity, courage, honesty, and the will to do well. Most developmental psychologists assert that character forms as a result of early training and exposure to appropriate role models. Moral training later in life (during leadership programs) has a limited impact on the innate moral bias."[26]

We may have so many problems,negative emotions may dominate us for a while, anger and suffering may disorganized everything, but amid such crisis, the real man, true leader, the emotionally intelligent spirit is one who still asks during that period what are good and bad ends to pursue in life and what is right and wrong to do in the conduct of life, what is beauty and where can we find harmony and create beauty. He or she is, therefore, above all, morally and aesthetically courageous humans. The revival of virtue ethics, aesthetics, and positive morality in their genuine sense has now become more essential for the betterment of society than before because at present risk is very high of ethical and moral degradation in every aspect of human affairs. And for this task, we will have to be philosophical to gain the right insightto promote positivity in everything which concerns humanity.Again we admit that there is no problem with novelty and modernity, but the speed at which modernity has been catching up in terms of replacing the higher human value, spirituality, ethics, etc. is quite worrisome.If it didn't stop at early warnings than it not only degrades human relations but also harms toleadership arc. Every area is prone to be corrupted due to a lack of ethical and moral value, it depends upon us how we revive those values whether through a utopian or normative way or through a dystopian way.

References

1. Glover, Jonathan.(2012). *Humanity: A Moral History of the Twentieth Century*, Second Edition Yale university press, new haven and London. ,p.11
2. Gendler, Alex. (2016). "How to recognize a dystopia ?" https://www.youtube.com/watch?v=6a6kbU88wu0&ab_channel=TED-Ed
3. ibid
4. Postman, Neil. (2005). *Amusing Ourselves to Death: Public Discourse in the Age of Show Business*. Penguin Books. p-47
5. Hart, P. Uhr, J. (2008). *Public Leadership: Perspectives and Practices*. ANU E Press. p-11
6. Fromm, Erich. (1969). *Escaping from Freedom*. Holt, Rinehart&Winstopn. p. 235
7. Maxwell, John C. (2011). *The 5 Levels of Leadership: Proven Steps to Maximise Your Potential.* Centre Street Hachette Book Group.p- 103
8. May, R. (1999*). Freedom and Destiny*. W. W. Norton.p-69
9. Ibid. P-7
10. Nietzsche, Fredrick, (March 1974). *In The Gay Science*. Translated, with commentary, by Walter Kaufmann .Vintage Books. p-197.
11. Allio, R. J. (2005). *Leadership development: Teaching versus learning*. Management Decision, 43 (7/8), p. 1074.
12. Dostoevsky,Fyodor. 1950. *The Brothers Karamazov*. vintage books, new york, p. 193.
13. Maxwell, John C. (2011). The 5 Levels of Leadership: Proven Steps to Maximise Your Potential. Centre Street Hachette Book Group. p. 80.
14. Batmanghlich. Cameron A. (2015). *Why Leaders Fail Ethically A Paradigmatic Evaluation of Leadership.* Springer International Publishing Switzerland. p. ix.
15. Lipman-Blumen, J. (2004). *The Allure of toxic leaders: Why we follow destructive bosses and corrupt politicians and how we can survive them*. Cambridge: Oxford University Press. p.2
16. Goleman, Daniel. (1995). *Emotional Intelligence*. New York: Bantam Books.
17. Goleman, Daniel. (2011). *Leadership: The Power of Emotional Intelligence.* More Than Sound LLC Northampton MA. p. 25
18. Ibarra, Herminia. (2015) *Act like a Leader, Think like a Leader*. Harvard business review press. p. 13.

19. Mintzberg, H. (2010). *Developing leaders? Developing countries*? Oxford Leadership Journal, 1(2). http://www.oxfordleadership.com/journal/vol1_issue2/mintzberg.pdf. Accessed 26 aug 2020. p.99.
20. Hill, T.E. (2009). *The Blackwell Guide to Kant's Ethics*. John Wiley & Sons. p. 83.
21. Hart, P. Uhr, J. (2008). *Public Leadership: Perspectives and Practices*. ANU E Press. P. 14.
22. Bradley, G Herbert, (1951). *Ethical studies: selected essays*, Liberal Arts Press, p. 153.
23. Camus, Albert. (2016) *Albert Camus Quotes*, Create Space Independent Publishing Platform. p. 31.
24. Batmanghlich, Cameron A. (2015). *Why Leaders Fail Ethically a Paradigmatic Evaluation of Leadership.* Springer International Publishing Switzerland. p. 10.
25. Kidder, R. M. (2005). *Moral courage*. New York: HarperCollins Publishers, Inc. p. 11.
26. Allio, R. J. (2005). *Leadership development: Teaching versus learning.* Management Decision, 43(7/8), p. 1073.

●●●

Mahamana Vision on Ethical Values for Business

Shivam Shukla*, Asha Ram Tripathi,**
Sudhir Kumar Shukla***

Abstract

In the words of *American Journalist Edgar Snow "Of the patriarchs among leaders of India's struggle for freedom, none has so impressed me with his fairness, sincerity and cultural greatness as Malviya. He has a manner full of grace and charm and a demeanor calm and dignified. His personality radiates the sweetness and simplicity of a child, yet his words carry the strength and conviction of man with a settled philosophy of life."*

Mahamana Madan Mohan Malaviyaji , the founder of Banaras Hindu University was the ideal man of the era. He was the only personalityin India to be honored with the honorable title of Mahamana. He established this great university, with the aim of creating individuals who can render service to journalism, advocacy, social reform, mother tongue and Bharat mata, his vision was to prepare the students for service to the country by educating such students who can hold the pride of the country high. Malviya Ji was unique in truth, celibacy, exercise, patriotism and self-sacrifice. He not only preached on all these practices, but also followed them himself. He was always soft-spoken in his conduct and behavior. Karma was his life, as the founding father of many organizations, he never used fury or harsh language while executing his legal obligations. His vision is equally relevant and significant for business to act ethically.

Keywords: Transparency, Integrity, Loyalty, Equality, Respect, Accountability, Excellence.

Introduction

Business ethics is a form of applied ethics or professional ethics, which examines ethical principles and ethical problems that may arise in a business environment. It applies to all aspects of business conduct and is relevant to the

***Assis. Prof., Dept. of Commerce, Siddharth University, Siddharthnagar**
****Prof. and Ex-Head & Dean, Faculty of Commerce, BHU**
*****Prof. and Ex- Head, Dept. of Commerce, M.G.K.V.P., Varanasi**

conduct of individuals and entire organizations. Business ethics compromises all of these values and principles and helps to guide behavior in organizations. Businesses must strike a balance between the needs of stakeholders and their desire to earn profits.

Ethics, in general, refers to a system of good against bad, moral against immoral, fair against unfair. It is a code of conduct that has to align behavior within an organization and social structure. But the question is, where and when did business ethics come into existence? Ethics in business is mainly influenced by three sources - culture, religion and laws of the land. It is, for this reason, that we do not have the same or completely identical standards worldwide. These three factors impact on human beings to varying degrees which are ultimately reflected in the ethics of the organization. For example, the ethics pursued by Infosys are different from those followed by Reliance Industries or for that matter by the Tata group. Ethical processes again change across geographical boundaries.

Objectives

- To introduce the life of Mahamana Pandit Madan Mohan Malviya.
- To understand the concept of Business Ethics.
- To correlate the common ethical principles with the life of Pandit Malviya.

Methodology

Methodology is of great importance in any activity related to research and research design represents the plan of action for the research being carried out. In the above context the present research paper adapts an exploratory research design. The authors have made an in-depth literature review and have particularly gone through various kinds of literature like ethics related journals, business ethics related blogs and websites available on varied platforms.

Application of Ethical Values for Business

- **Transparency**

In the words of ***Father of the Nation Mahatma Gandhi"Malviya ji's internal life exemplified purity; his life was as clean as it was simple. He was a repository of kindness and gentleness. He had a marvelous memory. A spirit of accommodation was part of his nature. He was a powerful man."***

Transparency International defines transparency as "Transparency is a position to shed light on rules, plans, procedures, actions. It is a position to know why, how and what. Transparency ensures that public officials, civil servants, managers, board directors and businessmen work better and openly". It is the

foundation of a strong relationship with customers, which directly impacts the success and stability of a company. The more candidness a company shows, the more the public is likely to trust in its service, product or mission.

- **Integrity**

In the words of ***National Leader Gopal Krishna Gokhale"Sacrifice which Malviya Ji had made was unparalleled as he was born in poverty and from poverty rose to the position of an eminent lawyer earning thousands of rupees per month. He tasted richness and when the call came to him from within to serve his motherland, he sacrificed all and again courted poverty. His is the sacrifice, the real sacrifice, not mine. "***

Under Integrity, there is both internal harmony between moral principles and harmony between moral principles and practice. In almost every situation, the conduct of a person with integrity must be consistent with his moral principle and moral principles should be moral on objective basis. Sticking with a decision, especially when pressured to do otherwise, shows honor and courage. Companies that do what they believe is morally right based on equality and fairness can demonstrate strength and commendable character.

- **Trustworthiness**

In the words of ***National Leader Lala Lajpat Rai"Whenever any great or difficult situation arose before the country or the Congress Mahamana Malviya was found standing like rock to get rid of it. Which country will not worship such a jewel among men."***

A true and honest person is forthright. His behavior is self-motivated rather than showy. These qualities can be seen clearly in their behavior and speech. If a person walks on the path of honesty and truth everyone in the society will respect him and when the time comes, they will be seen standing with him.

- **Loyalty**

In the words of ***National Leader Sarojini Naidu "Pandit Malviya's greatness is unquestioned. He is also a man of ineffable sweetness and courtesy."***

Loyalty encompasses all relationships a business has including those with staff, partners, investors and consumers. Loyalty allows a business to make decisions benefiting these relationships and overcome influences from outside conflicting interests. This shows the business values the advancement of the company and employees over an owner's personal gain/profit.

- **Fairness**

In the words of ***Eminent Engineer and Statesman Dr. M. Visweswaraya"Pt. Malviya's interests are nation-wide and are not confined to politics or education. Every good public cause has his sympathy and support."***

Companies should strive to act fairly and commit to exercising their power justly. Leaders should only use honorable methods to gain an advantage over the competition. Also, fairness relates to equality, which means having an open mind and treating everyone fairly. Fairness and equality can be involved in hiring practices, marketing initiatives, business partnerships and competing within the market for new consumers or clients.

- **Compassion**

In the words of **India's *Ex Health Minister Rajkumari Amrit Kaur"In matters of social reform, Malviya Ji was most progressive and I was especially drawn to him by the indignation at the many disabilities from which Indian women suffered."***

Ethical companies demonstrate genuine kindness, understanding and care for the livelihood of others. In business, this means accomplishing business goals to produce the most good while causing the least amount of damage. When a business decision needs to be made, careful consideration of the options and how each one may affect a person or community helps reduce the potential negative impacts, depending on the industry.

- **Respect**

In the words of ***Eminent Scientist and Nobel Laureate Sir C.V. Raman"In a very unique and special sense Pandit Malviya symbolizes India not only in the minds of his own countrymen, but also in the eyes of the outside world."***

Companies that treat all humans with respect regardless of religion, sex, race, nationality or other signifier are often reviewed positively in the public eye. Respect also relates to client or customer privacy since companies are held to the ethical standard of keeping information such as bank account details, health background or social security numbers private. Maintaining this level of privacy shows respect and ensures the company operates within a variety of industry-specific laws.

- **Lawfulness**

In the words of ***National Leader Maulana Hazrat Mohani"Whenever there was a crisis or some great national service to be done, he has proved***

that there is no greater patriot than he. In grave national events he has been only guided by a sense of national duty."

Business ethics also include abiding by legal regulations and obligations regarding their business activities like taxes, worker safety and employment and labor laws. Companies that work within the boundaries of the legal system are more credible and honorable, which can establish a strong positive reputation as an employer that encourages high-quality candidates to apply for roles.

- **Providing Excellence**

In the words of ***Member of British Parliament Colonel Wedgewood"Europe is aware of the extent to which Indian education is indebted to Pandit Malviya Ji, but I have not seen before such a great institution which is, to a great extent, the work of a single person, If Pandit Malviya were not a politician, he would have been considered the greatest leader of the academic world."***

Ethical organizations strive to provide excellence by always working to deliver the greatest quality of service or products to their clients and customers. They pursue creativity and innovation, looking for the best ways to deliver their goods and seek to constantly improve their performance, customer satisfaction and employee morale.

- **Responsibility**

In the words of***FirstPresident of India Dr. Rajendra Prasad"Malviya Ji guided Congress whenever it was in a difficult situation. In Malviya Ji we find a unique combination of the two great qualities – the contemplative energy of Lord Krishna and the practical efficiency of Arjuna. "***

Companies with high ethical standards recognize their responsibilities to their employees and customers and understand how the conduct of their leadership affects the business. Companies have a responsibility to lead with the values and mission of the organization to make logical decisions that benefit everyone. Company leaders should implement ethical standards and model them to others by displaying the standards themselves.

- **Reputation Upholding**

In the words of***National Leader Surendranath Banerji"Pandit Madan Mohan Malviya was sober and moderate in his views, temperate and eloquent in his expression, he has been rightly declared the silver tongued orator of the Congress."***

An ethical company seeks to maintain and protect a positive reputation to build a motivating work culture, keep investors engaged and provide exceptional

service to customers. Upholding a good reputation means engaging in conduct that uplifts the company. If any action is taken to undermine a company's reputation, leaders need to handle the situation appropriately utilizing other ethical standards such as transparency, accountability and responsibility.

- **Accountability**

In the words of **Ex *Finance Member, British Government of India Sir George Schuster"I see Pt. Malviya's picture as one who combined gentleness with a burning enthusiasm for the cause which he thought right."***

Ethical businesses accept responsibility for all decisions made as a company and admit their mistakes to all of those who may be affected by a misstep including shareholders, employees and the public. In addition to taking accountability, they also accept any consequences that result and do so transparently.

Conclusion

It can be said with certainty that Malviya Ji was Ajatshatru. While working in the religious, social and political fields for 50-60 years, he never had any estrangement, hatred and hatred. The character and nature of Malviya Ji, who respected everyone, was something that *C.F. Andrews said about him - "Those who came in contact with him found him very gentle and attractive."*There are many examples of his benevolence and generosity, in which he showed the right path to many misguided students. He had respect and sympathy for the untouchables. While working in the religious and social field, Malviya Ji also established a huge Shiva temple within the Hindu University. Moreover if Mahamana's life principles are carefully applied and practiced by business firms they can definitely develop an ethical business model and successfully run an ethical business as well.

References

- Ferrell Linda, Business Ethics - Ethical Decision Making and Cases, W. Ross MacDonald School Resource Services Library, 2011.
- https://www.essaysinhindi.com/personalities/essay/4812
- https://www.indeed.com/career-advice/career-development/example-of-ethics
- https://www.greatworklife.com/ethical-decision-making-in-business-examples/
- https://hindi-essay.blogspot.com/2015/05/short-essay-on-mahamana-madan-mohan.html
- https://jivani.org/Biography/158/biography-of-madan-mohan-malaviya-in-hindi-jivani
- https://www.essaysinhindi.com/personalities/essay/4812

Exploring the Moral Sphere through Feminist Ethics: Depicting Philosophy of Women Empowerment

Amrita Tripathi*

Abstract

A genuine thinker always seeks harmony, avoid any sort of discrimination, and work for the welfare of humanity. In recent centuries too, the promotion of multifold equality between men and women has been a consistent feature of philosophical, social, political and economic speculation. The present paper also attempts to highlight those altruistic steps, and concern feminist philosophy, ethics and empowerment. Everyone has got their own method and resolutions, but the question remains the same, how can womenand other subalterns live a life of dignity irrespective of gender, race, caste, religion, nation and culture. It is a good and hopeful thing, but it doesn't indicate that challenges have been eradicated, still, there is a long way to go. We also have aimed the same thing while dealing with the notion of women empowerment. We even can grasp the fundamental concept in empowerment i.e. the very notion of women empowerment put forward that to a large extent women lack autonomy and self-determination while pursuing something. And when we infuse the power in them or they attained it through their efforts, it enables them to stand for their interests reasonably. In other words, empowerment is a way to becoming self-determined while acknowledging the responsibility of one's authority. Perhaps it is the right time to revisit our faults to set ways for the future. The present paper aims to deal with such an issue philosophically to trace the fundamental concepts and challenges in the way of feminist philosophy, women empowerment. And for this philosophical assignment, we have used the insight of the world's profound thinkers such as Mahatma Gandhi, Ram Mohan Roy, Virginia held, will Kymlicka and soon.

Keywords: Moral, Sphere, Philosophy, Women, Empowerment, Challenges

---

* **Dept. of Philosophy and Religion, B.H.U, Varaansi-221005**

We all are aware of the fact that society and discrimination, both are complex phenomena. The way we can't grasp society from a single phenomenon or a point of view, so though discrimination. Therefore, to uplift, the subalterns in any form require a multifold outlook and enough moral courage. Philosophy is a way to contemplate things with a multifold attitude, and therefore, if we apply this attitude to the problem of women subjection and eradication from the basic rights, we find that factors may be different –different worldwide, but there are some certain concepts which dominate all factors, and consequently the role of women in any society.[1] We need to trace those concepts, if we could do that, majority of the problem which women empowerment faces will be resolved. Let's start and introduce our primary intention with Gandhian insight:

Women must not suffer any legal disability which is not suffered by men. Both are perfectly equal (Young India, 17th October 1929). Sexual equality does not translate into occupational equality in spite of the absence of a legal bar. Women instinctively recoil from a function that belongs to men. Nature has created sexes as complements of each other. Their functions are defined as are their forms. (Harijan, 2nd December 1939).[2] (Nandela, 2007)

(I)

Feminist Ethics and Capability Theory: A Way Forward to Women Empowerment

If we try to examine one of the most essential values of modern time, we find that tolerance and open-mindedness would be placed at the top of any list. the reason is clear that being democratic and free is the central spirit of man or even every ling creature, so though of women. But there are always some demagogue, conformist and power medicines who creates false law, false boundary to enjoy the megalomaniac nature. We have pointed this thing because just as there are some dictators (it could be law, cultural value, person or whatever), so though, there is always some free sprits that give space to every living creature to flourish. This dichotomy between good and evil is a transcendental phenomenon, and have been protecting humanity since antiquity to the modern time. The feminist approach is also one of those approaches, which gives preference to tolerance, open-mindedness, new ideas, and empowerment of the subalterns. Although we have seen some misuse of this approach, but it doesn't promote us to reject the whole notion. And perhaps we need to know that it, not the problem with feminism, rather with our outlook and adjustment. As we can trace it in the following expressions;

> ...anti-androgynists maintain the problem is not femininity in and of itself, but rather the low value that patriarchy assigns to feminine qualities such as "gentleness, modesty, humility, supportiveness, empathy, compassionateness, tenderness, nurturance, intuitiveness, sensitivity, unselfishness," and the high value it assigns to masculine qualities such as "assertiveness, aggressiveness, hardiness, rationality or the ability to think logically, abstractly and analytically, ability to control emotion. "They claim that if society can learn to value "feminine" traits as much as "masculine" traits, women's oppression will be a bad memory.[3] (Tong, 1989)

Oppressive ideology is quite deep since it is not only the challenges which come in the way to empower women, we also have some bigots who even oppose the whole notion of empowerment and therefore misinterpret the whole philosophy of those who favour empowerment of subalterns. Feminism is one of those philosophies which have survived this discrimination academically as well as non-academically in the name of culture, religion, caste, rationality and so on. As Virginia held put it;

> The history of philosophy, including the history of ethics, has been constructed from male points of view, and has been built on assumptions and concepts that are by no means gender-neutral.' Feminists characteristically begin with different concerns and give different emphases to the issues we consider then do non-feminist approaches.[4] (Held, 1990)

Perhaps we can imagine the agenda now that even the rational and humanistic enterprise is quite dominated by a certain type of ideology and way of life which gives preference to a certain type of focus. Therefore, first of all, we will have to understand the distinctive nature of men and women to provide the fact and normative truth to empower those who have been subaltern and eradicated from the basic rights, creativity and so on. In this regard, Carol Gilligan took the initiative in the twentieth century. In her famous work *'In a Different Voice: Psychological Theory and Women's Development'* purposed that –

> the specific claim that the way women treat moral problems is, on average, different from (but not inferior or superior to) the way men do and claimed, very roughly, that women tend to think of moral issues in terms of emotionally involved caring for others and connection to others, whereas most men see things in terms of autonomy from others and the just and rational application of rules or principles to problem situations. In this

conception, the moral problem arises from conflicting responsibilities rather than from competing rights and requires for its resolution a mode of thinking that is contextual and narrative rather than formal and abstract. This conception of morality as concerned with the activity of care centres moral development around the understanding of responsibility and relationships, just as the conception of morality as fairness ties moral development to the understanding of rights and rules. (Gilligan 1982: 19) These two 'voices' have been characterized in terms of an 'ethic of care' and an 'ethic of justice', which, Gilligan claims, are 'fundamentally incompatible.[5] (Noddings, 1982)

Above is just one area of study how women deal with different –different problems which we can face, and therefore, we need to apply the same attitude to every area of problems. But again, it requires tolerance, open-mindedness to accept the facts and value. Issues are all the time difference, it could be sociological, cultural, religious, economical, and so on. But ultimately what requires us to open up the space for new approaches is open-mindedness, a philosophical sense that new thing happens and creates. And it is the foundational thing for any sort of empowerment and encouragement in any society. Let's grasp this problem with an example, which we often called the 'public-private problem' in which women is often associated with something private and men with the public, and therefore the goal, purpose and jobs are defined on this discrimination. But when we try to analyses this discrimination closely, we find that this is basically a result of a patriarchal ideology. As will Kymlickaexpress;

Like a man when he chooses a profession, so, when a woman marries, it may, in general, be understood that she makes a choice of the management of a household, and the bringing up of a family, as the first call upon her ***exertion***, during as many years of her life as may be required for the purpose; and that she renounces, not all other objects and occupations, but all which are not consistent with the requirements of this.[6](Kymlicka, 1990)

The above expression represents the non-academic effect of the 'public-private dichotomy, but there is also another effect of it that we can be a trace in the academic world.it has changed the whole outlook on how we approach ideas and thoughts. As will Kymlicka points out;

One consequence of the traditional patriarchal public-domestic distinction, and of the relegation of women to the domestic sphere, is that men and women have become associated with different modes of thought and feeling. Throughout the history of Western philosophy, we find political

> theorists distinguishing the intuitive, emotional, particularistic dispositions said to be required for women's domestic life from the rational, impartial, and dispassionate thought said to be required for men's public life.[7] (Kymlicka, 1990)

Actually, it is not the problem with arts and humanities, rather sciences also have been used as a fine medium to tell the 'post-truth. This term tells us a great deal of the truth of modern time how reality has been mortified and presented as per the domination of power. Subjection, mortification, and other subaltern phenomena have been utilized through the way of post-truth. For an instance, we have been often kept away from the truth and fact that the majority of the poor people in the world are women and girls. Even In developing countries, where the typical occupation for women is daily wages, labouring and agriculture haven't been given the rights which ought to be given to them. It is worth noting that in Africa and Asia, women have been doing the bulk of the labouring, farming and construction, and yet women are almost and always kept away of ownership over the most important assets, lands and other basic rights. It is a fact that first of all, we will have to focus on the domestic and local level, then it would be possible to expand its realm. As will Kymlickahighlight;

> ... Family is therefore an important locus of the struggle for sexual equality. There is an increasing consensus ***among*** feminists that the fight for sex equality must go beyond public discrimination to the patterns of domestic labour and women's devaluation in the private sphere. In fact, Carole Pateman says that the 'dichotomy between the public and the private ... is, ultimately, what feminism is all about.[8] (Kymlicka, 1990)

Perhaps, the ugly and bitter truth is that it is mostly men who are holding women back. Every possible area, where the work of distribution happens, often have been under the authority of males. Men dominate the socio-political policy arena, men control the decision making at the community and household level, and despite such facts, and we are forced to believe that 'empowering women' means 'disempowering men'. This harsh and post-truth have greatly infused the position of intellectual and physical violence in the society that even we don't dare to come for the fight for basic human rights for subalterns. Therefore, first of all, we will have to address the misconception that empowering women means disempowering men or feminism means anti-masculinity.it is one of the greatest myth created by the megalomaniacs to keep the patriarchal ideology in domination. It is the ethics taught by every great man, culture and religion that Empowering one empowers all. This implies that empowering women empowers men, children, families and consequently the whole society. But because it asks for change, and change is

always hard and bitter, thus we are struggling to accept it. Some thinkers are quite forward and put plenty of positive analogy to represent that the notion of inequality which has been created in the name of gender is quite mythical and therefore creates more inequality in society. As Janet Radcliffe Richards puts a beautiful analogy;

> If a group is kept out of something for long enough, it is overwhelmingly likely that activities of that sort will develop in a way unsuited to the excluded group. We know for certain that women have been kept out of many kinds of work, and this means that the work is quite likely to be unsuited to them. The most obvious example of this is the incompatibility of most work with the bearing and raising of children; I am firmly convinced that if women had been fully involved in the running of society from the start they would have found a way of arranging work and children to fit each other. Men have had no such motivations, and we can see the results.[9] (Kymlicka, 1990)

We need to realize that any subaltern issue such as social, political and economical is a humanitarian issue, therefore we all need to take some steps to overcome those issue. Similarly, Women's empowerment is not limited to women only, it's not a women's issue only, and it's a societal issue that put forward that the place of weak and subaltern in society. Perhaps, we need to revisit our morality to gain consciousness about what kind of injustice has been justified in society merely in the name of race, caste, culture and religion. This thing can contribute a lot to all over development. And not even the notion of ethics and morality, but plenty of socio-political notions need to be revisited. The social-political notions which need proper analysis and redefinitions are justice, rights and equality because the largest section of such notions has been contemplated from a certain point of view in which the feminine aspect is largely missing. For an instance, Elizabeth Gross tried to interpret the very of notion of equality in the following way;

> Autonomy implies the right to see oneself in whatever terms one chooses-which may imply an integration or alliance with other groups and individuals or may not. Equality, on the other hand, implies a measurement according to a given standard. Equality is the equivalence of two (or more) terms, one of which takes the role of norm or model in unquestionable ways. Autonomy, by contrast, implies the right to accept or reject such norms or standards according to their appropriateness to one's self-definition. Struggles for equality ... imply an acceptance of given standards and conformity to their expectations and requirements.

> Struggles for autonomy, on the other hand, imply the right to reject such standards and create new ones.[10] (Kymlicka, 1990)

Above contemplation, might seems a little radical, but in an actual sense, the very notion of autonomy suggests to us that at least we must be free to define our own choices. Where there are restrictions and conformity based barriers, freedom can't be traced there. In other words, the social-political role must be defined by individual autonomy, only it can give us a basic sense of equality and freedom. The basic but the largest challenges which still have in modern society is poverty, food security, job and work. The same is applied to women's issue. Therefore, whenever we think to empower women, first of all, we will have to tackle the above issues. The role of empathy in modern time is actually critical, no matter how much rational justice we discuss, but until we have a great deal of care and empathy, we will have to struggle. For an instance, we know that women are the ones doing much, if not the bulk of the construction, daily wages, and farming, even though their role to land and domestic chores and other productive resources is critically important. But because these are a typical part of our life, we don't pay any attention to them. That's why we need a great deal of empathy and care to realize the pain and struggle of women. It would also be one of the best steps in women empowerment.

(II)

Philosophy of Women Empowerment: Role, Expression and Prospects

Can we imagine the world without women? It might be a little emotive, but it is a legitimate question to those who neglect the role of women in the sustainable development of the world. The reason to put this question is that when we try to introspect, retrospect, and circumspect the role of women in any society or family or whatever, we find that without her any human endeavour is incomplete. The roles which she plays from the starting of her birth to till her death is actually the greatest gift for humanity. It might seem that we are making her the object, but the reality is not like that since it is only a woman who can present herself in this way. Daughter, sister, wife, mother, and housewife and many other multifold roles can be associated with her without treating her as a mean but rather as an end.

> Women's impact on the world is a story that has slowly been coming to light over the past century. Throughout history, female warriors and queens have conquered foreign lands, female explorers have pushed back frontiers, and women artists, writers, and activists have changed prevailing attitudes and views. The problem is that in the patriarchal (male-ruled)

> societies that dominate the world, women's stories of the resistance they have faced and obstacles they have overcome have been marginalized, and have not always been told.[11] (Worsley, 2019)

It is our misfortune that quite often we all have been kept away from the superwomen's story. What we have got delivered and presented is hero, superhero, superman and on. We have only exceptional characters of women. Perhaps at present, we need more great storyteller and history writers who can actually represent women's role in history and at any societal development. This approach or to say method can play a constructive role in women empowerment. But this business also needs a hundred per cent punctuality and will to truth, otherwise, the thing which can play the role of the constructive embodiment may be converted as a curse. As one of the curses could be felt in the following line of Aristotle; "…The Male is … Superior and the Female [Is] Inferior; … One Rules, And the Other Is Ruled."(Aristotle's politics)

Now we need to ask that if the leading figure of any society echoed like the above, can we imagine any sort of women empowerment. Perhaps not. In this regard, existential feminism played a great role in determining the essence of an individual. Earlier there was conformity to decide the role and fate of women though religious commandment, societal norms and family restrictions, but existential feminism gave great relief to the disempowering trend.[12] In an actual sense, we all need to keep such a kind of attitude as existential thinkers had. They argued that since existence precedes essence, and therefore we all should be given the freedom to choose and determine our choices. One thing worth noting here that existential thinkers obviously emphasized over freedom, but they also gave preference to the idea of responsibility. It is a great philosophy to empower any society including women. When any society has got enough power to choose, and they also recognize their responsibility then there is nothing which can hold any society to flourish, and so though the women. As Krishnan Nandela cites Gandhi:

> The Mahatma said that women have been suppressed under custom and law for which man was responsible and in the shaping of which she had no hand. Rules of social conduct must be framed by mutual co-operation and consultation. Women have been taught to regard themselves as slaves of men. Women must realize their full status and play their part as equals to men.[13] (Nandela, 2007)

And again, the different shade which we all have felt about women's contribution all around the world is obviously an eye-opening thing. A good student, excellent learner, and vibrant leader, all kind of instances can be found in women, and most importantly in any society. What else is needed for patriarchal

personalities? It is a question which we all should ask ourselves while dealing with our toxic masculinity and patricidal attitude. Perhaps, it would also be one of the greatest steps in the way to women empowerment. Law, legality, force, constitutional amendment bills and reservations will not work until we truly introspect and speculate the role of women in society and personal life. It is worth noting value that without changing our heart and mind towards women, our external efforts will not be utilized for the best.

A great way to check the ability of an individual is to put a test, a herculean task or a tough time in front of him or her, it will determine their ability as well as capacity. If we try to check the women's capability on this platform, history governs that she will not fail. And again, it is actually a great way to empower those who have the capability to flourish and prosper but couldn't polish or expressed due to lack of opportunity and challenges. In Europe we have seen this thing;

> Women's contributions to the war efforts of the 20th century helped to transform their role. The absence of men forced many women into the workplace, making armaments, producing food, and upholding the home front, while other women took to the battlefields as nurses and soldiers. Women joined forces not only in national efforts but also in the fight for their own rights. In the first wave of feminism, women mobilized to change unequal laws and to gain the right to vote. Resistance to colonial and oppressive powers also saw women in the developing world unite in protest. By the 1960s, with a new, second wave of feminism just beginning, women were on the brink of a period of great change.[1414] Worsley, L. (2019).

(III)

Multicultural Values and Women Empowerment: Highlighting the Ethics of Care

We might be aware of the enthusiastic French motto *"Liberty, Equality, and Fraternity*" which reflects the core values of French society. A typical democratic society can't stay alive without such values. And we have seen it that almost every democratic society including India accept them as a primary constitutional and cultural value, and most importantly confidently practices them. We know that Equality, equity and unity are important to the French. The French also value style and sophistication, and they take pride in the aesthetics and artistry of their country. Family is also highly valued in French culture. But the question is where can such a way of life can help us? This is the thing that we need to highlight in this present society. Historically there are very few events that have impacted

society and the world in a verity of ways. French revolution and existentialism are such events that must be considered as the '*Copernican revolution*' of humanities because of their role in the transformation of humane consciousness and way of life. We took this opportunity and wish to apply them to redefine feminism and morality. The thinkers who can help us in this regard, and have been chosen by many to conduct such research follows – Jean-Jacques Rousseau, Simone de Beauvoir, Albert Camus and many more. And as far as the philosophies and movement are concerned than these we have already indicated that enlightenment, French revolution and existentialism would be the best choice to inculcate.

The French Revolution completely changed the social and political structure of France. It put an end to the French monarchy, feudalism, and took political power from the Catholic Church and centered it in the human realm. Similarly, French existentialism asked the critical human question about the human condition, meaning of life, nihilism and so on. Although the French revolution might be the result of Immanuel Kant and Jean-Jacques Rousseau's schemabut the whole credit goes to the French literary writer and society who practised it heartily and transfer it throughout the world. Feminisms, as we noted above, is also a philosophy and socio-political movement which can't be looked at apart from the French revolution and existentialism. The philosophy and ethics which we descend from such beautiful events which can help us a lot to discuss some of the critical problems of the world and humanity must be utilized continuously. And have aimed to do that when tackling question such as – is feminism actually a philosophy or moment of identity politics, repression, matriarchy and hatred? Can feminism and existentialism help us in the modern technological world when we totally feel alienated form positive human values? What kind of ethics we can precede form such events? And perhaps, no other culture can help us solve such a critical question than the values of the French and India.

Coming to the utility of the present critical investigation, Ethics of Care (often associated with feminist ethics) is an enduring and contested issue in moral philosophy, so though we have discussed in this research as a lucrative way of life to counter many critical problem. Academically the explanation and classification of ethics resonate with the conception of 'ethics of justice' and recently included with certain movements 'ethics of care'. But facts suggest that ethics of justice dominates the largest section of the moral sphere in which the Majority of literature on justice advocates that it is rational and an unbiased virtue. There is a very small place for emotions and other positive values for it because generally, we try to understand it in a negative manner like what justice is not? But now the trend of philosophy is quite holistic which constitute almost every factor that can help us to

attain peace, prosperity and enhances the life of everyone. Although rationality is an integral and one of the important elements of humans, now the question arises can we limit humanity only to rationality? Should we set boundaries to human virtue and value only to rational enterprises?

This question can be put forward from a 'care ethics' standpoint, which tries culminates almost all aspect of human life with an empathic attitude. and perhaps,it the urgency in front of humanity to search the harmonious relationship between the ethics of justice, ethics of care and positive morality and to expand the moral sphere from tradition human rational justice to other essential faculties and values. And it is here the French and Indian values works fine to give a better shape to human consciousness to learn the art of life which give priority to every possible human faculty. In short, the French's Liberty, Equality, and Fraternity' and Indian *Maitri*(friendliness), *karuna* (compassion), *Mudita,* (happiness), *Upeksha* (indifference), *Sukha*(happiness),*Punyaha (*virtue) can do wonder to promote true justice, peace and prosperity, and consequently may help us to redefine the feminism and morality.

We all can agree that "care" is important—even fundamental—to our daily lives. Most of the time our life functions on relations of care—parents care for their children, and often those same parents care for their own elderly parents. We also care for one another when they are any trouble physical or mental. This human tendency helped a lot of humanity from antiquity to the modern time and made it simple that illness or disability is day-to-day, a relentless reality in which care and other positive human value such as love and benevolence must be constant and comprehensive. In recent times, thinkers have recognized the importance of care and positive human values outside and beyond nuclear and extended families.

And how can we forget the covid-19 catastrophe where it care was one of the most needed values one can imagine. Albert Camus novel 'the plague' is a better resource to understand the role of ethics of care and positive morality. And it is the ethics that defines feminism in a more inclusive way and support our thesis. In other words, feminism is a way of life that teaches to cooperate, care and collaborate. It is what feminist psychology proclaims and Indian values system practices where the place of women has remarried something ideal and lovable. Thus feminism is a philosophy of justice, care and hope which aims to uplift every subaltern. However, it is up to us how we look at it. We may consider and practice it for exclusion or can utilize it for the betterment of humanity. Obviously, the latter approach is more humane and efficient which we wish to achieve through this present critical and hermeneutical study.

To conclude, most of us from time to time meditate on the ethical and existential dimension of our lives: what sorts of persons we ought to be, what the best way to live is, which ends in life are worth pursuing, what the meaning of life is and how we ought to relate to others and so on. We may wonder about the explanation to such questions that have been contemplated by the past thinkers, contemporary moral stalwarts, saint and sages; we may speculate whether their conflicting opinions amount to disagreements about the truth or are merely expressions of their differing attitudes; we may also take shelter in their moral and intellectual enterprise and how their varied ideas might contribute in our modern-day moral issues and understanding. Although there is no widely agreed-upon definition of ethics and morality. But the absence of a definition does not leave us entirely in the confusion. For an instance -After all, no one has yet agreed upon the definitions of literature, or life, or art, or philosophy and yet we know a great deal about those things and also contribute and explore them… the etymological and functional meaning of something might be different from a time and space perspective but they can't be totally opposite or contradictory….there will be something which can connect them; it can be a common ground of problem, purpose and objective or whatever.

Social justice is a complex phenomenon, history has acknowledged it. And thinkers also have differences in terms of what actually comprises justice? However, everyone agrees that social justice aims to promote social prosperity and remove inequality without sacrificing liberty and fraternity. Sadly, some political theorist such as Marx put liberty and fraternity at stake to attain equality, it was their utopia since they lack patience and positive values. Marx himself demolished religion, mortality and individual freedom. But thank god to the French motto 'liberty, equality and fraternity'' that wish to attain all three values together. Our feminist theory also aimed to complement this approach that how we can attain social equality without sacrificing individual liberty and social fraternity. Good thing is that we also have used liberal insights to strengthen our thesis. Criticism of the practice of discrimination against subalterns, women and castes excluded have been very important and has a long history from well-known figures like Buddha, Bhakti movement saints, Phule, Dayanand, Tara Bai Shinde, Ramabai, BhimraoRamjiAmbedkar and many more. Bankimchandra, Vidyasagar, Periyar and many more. The complexity of the operations are intriguing and Maitre Krishna Raj on women and Nicholas Dirks on caste have a good account. The purpose of some critics is to reform and create a beautiful world while some are bitter and have no hope for achieving a better and less cruel world, but no matter what we should prefer the former who with a sense of dishonour, moral pride and courage

to dream and work towards the happy and harmonious world. It is the essence of 'ethics of care' and it will also redefine feminism ....

Footnotes

1. It is worth noting that when we have used the term subaltern to represent those who face multiple discrimination in society, therefore, when we are using the term with women subjection then it represents that women have been excluded from the basic rights which are prerequisite to live a life of dignity and empowerment.
2. Nandela, Krishnan,(2007), *Gandhi on women , empowerment*.https:// www.mkgandhi.org/articles/womens_empowerment.htm, doa- 1/06/2021
3. Tong, R. (1989). *Feminist Thought: A Comprehensive Introduction*. Westview Press.p.3
4. Held, V. (1990). *Feminist Transformations of Moral Theory. Philosophy and Phenomenological Research, 50*, 321-344. doi:10.2307/2108046
5. Noddings, Nel . (1982). *Caring: A Feminine Approach to Ethics and Moral Education*, Berkeley: University of California Press.p.38
6. Kymlicka, W. (1990). *Contemporary Political Philosophy: An Introduction.* Clarendon Pres. P.399
7. Ibid ,pp.398-399
8. Ibid. p.400
9. Ibid. p.394
10. Ibid. p.384
11. Worsley, L. (2019). Women Our History. Dorling Kindersley Limited.p.10
12. Our attitude is not nihilistic while having critical attitude towards religious commandment, societal norms and family restrictions, rather what we want to suggest is that such kind of constructive thing have been greatly used for the patriarchal purposes . In other word, there was a misinterptation of such valuable human assets for longer period of time.
13. Nandela, Krishnan,(2007), *Gandhi on women ,empowerment*.https:// www.mkgandhi.org/articles/womens_empowerment.htm,1/06/2021
14. Worsley, L. (2019). *Women Our History.* Dorling Kindersley Limited.p.201

●●●

Introductory Knowledge of "DHARMA" and its Role in Maintenance of Health based on Pragyaparadha (Intellectual Blasphemy) as discussed in Ayurveda

Rashmi Varshney*

"सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।।"
"सुखं च न विना धर्मात् तस्मात् धर्मपरो भवेत्।।"

(A.H.Su. 2/19)

All the creatures are behind happiness and there is no happiness without righteousness, hence Dharma is considered topmost.

This, single verse describes the importance of Dharma in every day to day activity of human being.

Dharma, Sanskrit: "धर्म"

In Hinduism, signifies behaviours that are considered to be in accord with "Zta", the order that makes life and universe possible, and includes duties, rights, laws, conduct, virtues and right way of living.

In Buddhism, dharma means "cosmic law and order" as applied to the teachings of Buddha and can be applied to the mental constructs or what is cognised by mind. Dharma in Jainism refers to the teachings of tirthankara (Jina) and the body of doctrine pertaining to the purification and moral transformation of human beings.

For Sikhs, dharma means the path of righteousness and proper religious practices.

The classical Sanskrit noun (धर्म) is a derivation from the root (धृ) "dh"[1] which means to hold, maintain and keep.

Classical the root of the word Dharma is "Dhri", which means to support, hold or bear. It is the thing that regulates the course of change by not participating in change, but the principle which remains constant.

* MD (Ay) IMS, BHU & Associate Professor, Jeevak Ayurvedic College and Hospital

In Vedas, Upanishads, Puranas and the Epics, the meaning became refined, richer and more complex, and the word was applied to diverse contexts. In certain contexts, dharma designates human behaviours considered necessary for order of things in the universe, principles that prevent chaos, behaviours and actions necessary to all life in nature, society, family as well as at the individual level.[2] Dharma encompasses ideas such as duty, rights, character, vocation, religion, customs and all behaviours considered appropriate, correct or morally upright.

The sole aim with which Dharma is advocated is to bring about the evolution of individuals. A doctrine preaches "that which is able to bring about evolution is Dharma."[3]

When an individual performs Dharmacharan (Abiding by Dharma) during the course of his life, he evolves spiritually. He attains positive momentum even in life after death, meaning he attains a place in superior regions such as Maharlok, Janalok and Tapolok. Dharma is unique means of liberating man from the ignorance (illusion of Raja-Tamas components) in which he is trapped with the help of the same ignorance (sattva component in this case).

Dharma is that which accomplishes the three tasks of exceptional administration of the entire world, bringing about the worldly progress of every living being and causing progress in the spiritual realm (attaining Moksha) as well[4] as also told in Vaisheshik Darshan *Dharma is Sanatan.*[5] "Sana" means eternal and "Atanoti" means attaining, therefore, (Sana + Atanoti) means that which makes you attain the eternal. God created the universe in times immemorial at the same time he created Dharma.[6] The original Dharma was created from Supreme God, all other sects were created later. The relationship between God and Dharma is akin to that between sugar and its sweetness, which are inseparable. God is the Dharmi, His quality is Dharma. A quote says:

"धर्मो नारायणं स्मृतः"

meaning Dharma is Narayan (God), so, the history of Dharma is effectively the history of the search for God.

When compared with all knowledge, good conduct is considered to be superior; because Dharma is based on Achars (conduct). When man abides by Achardharma, his life is prolonged.[7] Dharma bestows wealth as well as happiness. In fact, everything can be acquired through Dharma. This entire universe sustains itself on the foundation of Dharma.[8]

Even if Dharma is followed to a small extent, it protects from larger danger[9] and Dharma alone is the companion of man in other words, that is, in life after death.[10]

"धर्मं चर" (तैत्तिरीयोपनिषद् 11 अनुवाक)

therefore, rich Indian heritage is full of such references and advocated that even if one has to go through hardship following Dharma, one should never give up as Adharma destroys everything.[11]

"अधर्मं एव मूलम् सर्वरोगाणाम्"

Unrighteousness is the root cause of all diseases.

"...तस्य मूलमधर्मः" (Carak Samhita Viman 3/20)

misdeeds are at the roof of the vitiation of all factors.

Ayurveda is the science of living being with sole purpose of maintenance of health and management of diseases and good health stands at the very root of virtuous acts, acquirement of wealth, gratification of desire and final emancipation. Diseases are destroyers of health, well being and life[12] and also Dharma has been included in Trivarga and Purushartha Chatushtya.[13] So, a wise person should very carefully consider again and again what is useful and what is harmful for health, he should discard the harmful and unwholesome regimens in regard to virtue (Dharma), wealth (artha) and desire (kama), for no happiness or unhappiness can occur in this world without these three elements.[14]

And as it is very well summerised in form of ten features of Dharma in Manusmriti[15] and as 30 features in Shrimadbhagwat Purana.[16]

So, with vast descriptions of Dharma according to different treatise and source of knowledge as even Mahatma Vidur also stated 8 feature of Dharma and also said that who practices last (4) attains supreme and conquers all[17] likewise mentioned in Ramacharitamanas by Tulsidas[18] and again called "धर्मसर्वस्वं"[19] which in the modern era is called the "Golden Rule" - Do unto others as you would have them do unto you. (Luke 6:31)

This is why Dharma has been given first and foremost position among 4 object of human pursuit/goals of man (चार पुरुषार्थ) and the doctrine of Trivarga comprising Dharma, Artha and Kama.

It declares the supremacy of Dharma - over Artha (wealth) desire for securing material pleasure and Kama (every type of pleasure, so, all propounders of Dharma were unanimous that for the existence of an orderly

society and the peace and happiness of all, the desires (kama) for material enjoyment, and pleasure (Artha) should always conform to Dharma (Code of Right Conduct) and be never inconsistent with it[20,21] as everything else including health will be in place.

Out of various features of Dharma almost everyone has included Dhee/ Budhi (Intellectual Knowledge - धी), Dhriti (Regulatory self control/patience/ नियमन) and smriti (Recalling) and their importance lies in the fact that it is the sole regulator of health and disease, all these in best of their status and functions, the resulting "प्रज्ञा" (Dhee, Dhriti and smriti trio together called as Pragya) will be in best form and hence no crimes and faults can be done with it and hence only then Trivarga and Purushartha can be attained as crimes, error and faults leads to nq[k (unhappiness and misery) and in Ayurveda it is stated that:

"सुख संज्ञकम् आरोग्यं, विकारो दुखमेव च" (Carak-Sutra 9/21)

"विविधं दुखं आदधाति इति व्याधिः" (Carak-Chikitsa 1/15)

"तत्र प्रतिकूल वेदनीयं दुखं" (Yoga Darshan)

uncomfortable, incompatible and troublesome feeling is pain/Dukh or Vyadhi.

So, happiness again is relative term to be construed depending upon the conditions varying from individual to individual. For, no worldly happiness can ever be called happiness in absolute terms.

Health is a state of happiness of pleasure, vikara or disease on the other hand as the name suggest when one is not at ease with oneself, is the cause of misery or pain leading to discomfort, trouble and incompatibility. It may be noted in this connection that *while absolute happiness is not possible, absolute misery is a possibility*. This has been indicated by the use of word "Samjanka" in relation to Sukha and emphatic "eva" in relation to Dukh.

Concept of Pragya (Dhee, Dhriti and Smriti) have been discussed in details in Carak Sharira Chapter one, that objects are perceived with the help of sense organs together with mind, which is purely mental in the beginning,

the practical advantages and disadvantages are ascertained thereafter. The intellect which determines (the specific properties of the objects) impels a sane person to speak or act intelligently) as only when a mirror which is clear, free from any dirt, then only a clear picture of the object can be reflected (free from spots or unblurred).[23]

As in Sankhyakarika, it is stated that with the help of intellect only, Purusha is able to perceive objects, and related knowledge, as it receives all object along with (अन्तःकरण (मनः + 5 कर्मेन्द्रिय + 5 ज्ञानेन्द्रिय + अहंकार) which transfers and transmits all perceived things to Buddhi (intellect) as the tax collected from locals is given to the higher authorities likewise the knowledge perceived by the senses (5 sensory faculties viz. auditory, factile, visual, gustatory, and olfactory).[24] Coordinated with 5 motor organs viz. hands, feet, arms, phallus and tongue (organ of speech), true words are like light which illuminates the worldly life and life after death and false words are like darkness which creates confusion.[25] The sense faculties are capable of perceiving their respective objects only when they are motivated by mind[26] control of sense organs, self-restrains and consideration represents the action of mind.[27] The mind acts in various ways, sometimes it experiences happiness, sometimes it doesn't, as it motivates the sense faculties in relation to their objects in various ways. Its disposition is also multiple in character, similarly it takes multiple forms due to its contact with Rajas, Sattva and Tamas, e.g. when dominated with Rajas it has the feeling of anger, by Tamas of ignorance, fear etc. if by Sattva it imbibes truthfulness, cleanliness etc. The mind, the object of the mind, intellect and soul constitute spiritual elements and qualities, they serve as factors for prompting an individual to indulge in and or refrain from various virtuous and sinful acts.[28] In reference of Dhee (बुद्धि/intellect), a very important concept of Ayurveda has been stated and that is of mind and how it perceives knowledge, what regulates the mind and senses which has been told by Aacharya Carak at various places. Mental perception like anxiety, sorrow is also based on the contact of perceptual faculty with the mental faculty (and this concept has very important implications in present scenario). Vata, pitta, kapha and ojas directly affect and regulates the mind in respect of 5 sensory organs[29] and mind irrespective of sensory organs regulated by itself with the help of Dhriti (धृति)[30]. In Shrimadbhagwat, it is said that while contemplating on the objects of the senses, one develops attachment to them, which leads to desire, which gives rise to Anger, it leads to clouding of judgement resulting bewilderment of memory, when intellect is destroyed, one is ruined[31] and after Dhee, Dhritis, there comes memory (स्मृति), which is nothing but the

remembrance of things directly received, heard (from scriptures or experienced earlier).[32] If one remembers the real nature of things he gets rid of miseries (hence diseases, sufferings or pain) and unhappiness.

A person whose intellect, patience and memory are impaired subjects himself to intellectual blasphemy by virtue of his bad actions. This intellectual blasphemy aggravates all the dosas[33] and as the three out of 10, 9, 8 30 features of Dharma are impaired it would be completely impossible to follow other features of Dharma, as well as Dosas will be vitiated also and person will be afflicted with various ailments and miseries and hence will be unable to achieve Trivarga and Purushartha either. In Ramayan also it is said that we all are aware of diseases of the body, even a single bodily ailment has a power to make one's whole day miserable but we fail to realise that we are being continuously tormented by multiple mental ailments. The wise observe wholesome regimen after proper examination where as other with their minds covered with Rajas and illusion run after apparently pleasing regimen.[34] The wise are endowed with knowledge, intelligence, memory, skill observance of wholesome regimen of correctness of speech, tranquility and patience.

As discussed in Shrimadbhagwat Gita and Carak Samhita when Buddhi subdued with Rajas and Tamas by Sattva, leads to Satwik Buddhi and salvation (उपधा रहित सत्या बुद्धि) so, this Buddhi is the central point of the creation and salvation likewise this intellect is also responsible for maintenance of health and prevention and curation of ailments and miseries.[35]

As the word itself and the description of this word in various scriptures signifies very strongly that how our code of conduct and day to day interaction with our surroundings in a well-behaved and guarded way is not only essential to maintain our own health and hence helps in attaining wealth, fulfillment of our desires and hence also helps in evolving spiritually and the centre point is the role of mind which decides as what should be done or accepted and what should be discarded, and based on this individual chooses the diet and life style, sleep pattern and celibacy as unwholesome interaction of the five senses with their objects is the first cause of disease which is nothing but the code of conduct one's moral duties and all appropriate behavirous. So, dharma is not be misunderstood as religion, instead it should be considered as the individual's property or very basic nature.

Endnotes

1. "ध धारयति"- ध्रियते लोप अनेन इति धर्मः।
धरति धारयति वा लोकम् इति धर्मः।
धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिः इति वा धर्मः।

2. धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चियः।। (Mahabharat, Karnaparva, 109/58)
3. प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। (Mahabharat, Shantiparva 109/10)
4. जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षात्
अभ्युदयनिःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः।। (Adi Shankaracharya - in preface to the commentary of Shrimadbhagwadgita)
यतोऽभ्युदयः निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः (वैशेषिक सूत्र 1/1/2)
5. सना आतनोति इति सनातनः
6. चात्रो धर्मो ह्यादिदेवात्प्रवृत्तः पश्चादन्ये शेषभूताश्च धर्माः Mhabharat Shantiparva 64/20)
7. आगमानां हि सर्वेशां आचारः श्रेष्ठ उच्यते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते।। (Mahabharat Anushasanparva 107/147)
आचारः फलते धर्मः (उद्योगपर्व)
आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्तस्य। (मनुस्मृति 1/108)
8. धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।। (Valmiki Ramayan, Aranyakanda, Sarga 8, Shloka 26)
9. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रयते महतो भयात्। (Shrimadbhagwadgita 2/40)
10. धर्मो एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः (Mahabharat Anushasanparv 111/17)
11. न सीदन्नपि धर्मण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पयन्विपर्ययम्।। (मनु. 4/171)
12. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।। (च.सू. 1/15)
13. तत्र बुद्धिमता धर्मार्थकामानामहितानामनुपसेवने। (च.स2. 11/46)
14. "मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम्।" (च.सू. 11/47)
15. "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।" (मनुस्मृति 3/92)
16. सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।
अन्नाद्यादे संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेषात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।।
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति।। (श्रीमद्भागवत सप्तम स्कंध)

17. इज्या (यज्ञ, पूजा), अध्ययन, दान, तप, सत्य, दया क्षमा और अलोभ (महात्मा विदुर)
18. लंकाकांड, रामचरितमानस
19. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेां न समाचरेत्।। (ब्रह्मपुराण सृष्टि 19/357-358)
20. श्रीमद्भगवतगीता (16-24)
21. मनुस्मृति (II 224 & IV 176)
22. Carak Samhita, Sharir 1/223 25, 26.
23. "पश्यतोऽपियथाऽऽदर्शे संक्लिष्टे नास्ति दर्शनम्।
तत्त्वं जले वा कलुषे चेतस्युपहते तथा।" (च.शा. 1/55)
24. तत्र चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पंचेन्द्रियाणि।
25. हस्तौ (च.सू. 6/8)
जिह्वा वागिन्द्रियं वाक् च सत्या ज्योतिस्तमोऽन ता।। (च.शा. 1/25)
26. मनः पुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति। (च.सू. 8/7)
27. चिन्त्यं विचार्यमूह्यं च ध्येयं संकल्पमेव च।
इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।। (च.सू. 1/20-21)
28. शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिश्च...। (च.सू. 8/13)
30. विषयप्रवणं सत्त्वं धृतिभ्रंशान्न शक्यते।
नियन्तुमहितादर्थद्धतिर्हि नियमात्मिका।। (च.शा. 1/100)
31. ध्यायतो विशयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (श्रीमद्भागवतगीता 2/62-63)
32. स्मृतिः सत्सेवनाद्येश्च धृत्यन्तेरूपजायते।
स्मृत्वा स्वभावं भावानां दुःखात् प्रमुच्यते।। (च.शा. 1/147-150)
33. धी धृति स्मृति विभ्रटः कर्मयत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तम् विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्।। (च.शा. 1/102)
34. हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृत्तात्यानः प्रियमेव तु लौकिकाः।। (च.सू. 28/36-40)
35. त्यागः प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानं सद्धत्तस्यानुवर्तनम्।। (च.सू. 7/53)

●●●

Ethical issues involved in Drug Discovery using Artificial Intelligence Approaches

Anushree Tripathi*, Yashbir Singh, Krishna Misra***

Abstract

Modern drug designing process is rapidly adapting Artificial Intelligence (AI) methods due to various limitations of traditional drug designing and discovery process. Drug discovery is a complex, costly and time-consuming process. Bioinformatics approaches including computer-aided drug designing methods pave the pathway of efficient drug designing methods and accept major challenges of conventional methods. AI has drastically changed the working process of drug designing and discovery. There are enormous application areas of drug development where AI is applied. Machine Learning is considered as subfield of AI has gained much attention in computational validation of drug development process. AI significantly contributes in improving efficiency of drug development process.AI-based methods involve in multitude of drug discovery processes from drug designing to clinical testing. Although advancement of AI technologies overcome major challenges of traditional drug discovery process, still there are multiple limitations and ethical issues concerning AI methods. Special attention is required for addressing these ethical issues in order to explore more improved AI technologies in the drug development process for discovery of more potent drugs.

Keywords: Artificial Intelligence; Bioinformatics; Machine Learning; Ethics; Drug Discovery

Introduction

Norms promote the aims of research, such as knowledge, truth, and avoidance of error. Prohibitions against fabricating, falsifying, or misrepresenting research data promote the truth and minimize error. This is of utmost importance in health care. Drug development is essential aspect of health care system. At present, world is facing global crisis of pandemic situation that arises due to

* **Indian Institute of Information Technology Allahabad**

** **Mayo Clinic, Rochester Minnesota, USA**

COVID19. Multiple resistance to drugs is another challenging problem. The need of standard and efficient drug development process has tremendously increased to tackle such challenging situation. AI is widely used in the development of drug designing pipeline. AI is defined as the simulation of human intelligence in acquiring information and developing new algorithms to solve complex problems. Various ongoing researches in AI lead to development of potent drugs against several chronic diseases [1]. Drug discovery is a complex process composed of multiple steps including computational designing, synthesis and clinical trials. Drug discovery and development process is composed of various steps including target identification, target validation, lead identification, lead optimization and preclinical research [2, 3].

Integration of AI and drug discovery

A typical drug development process is composed of several stages such as protein identification, lead identification, lead optimization, lead validation, clinical trials (I, II, III) for final drug approval (Figure 1). The success of drug approval depends on its effectiveness and safety. In broad sense, target stands for a range of biological entities such as proteins, genes and RNA. It must be druggable, effective, accessible to elicit a biological response and must be safe. Effective target identification and validation leads to development of target-specific drugs [1]. Although computer-aided drug designing process has provided effective ways of disease treatment, a successful drug discovery has still not developed. Moreover, there are many severe side-effects and need more advanced task specific algorithms to discover more safer and combat various chronic diseases. AI-based methods can develop task specific algorithms. Many big pharmaceutical companies adopted the integration of drug discovery with AI based tools such as Pfizer uses IBM Watson for immune-oncology drug discovery, Sanofi uses Exscientia's AI platform, Genentech has adapted the use of GNS healthcare AI platform for cancer drug development and so on. The first AI-invented drug is Sumitomo Dainippon Pharma. New paradigm shift has been observed in multiple phases of drug discovery with AI-based methods. AI is now providing promising results in health care sector and leads to revolutionary transformation in field of drug discovery [4]. Evolution of several distinct areas AI including Machine Learning, neural network, natural language processing and decision-making paves the new pathway for effective and target specific drugs. With advancement of AI techniques, there are many ethical challenges in using AI methods. AI-based methods require large amount of data to train models of high accuracy. Access to human data needs ethical barriers.

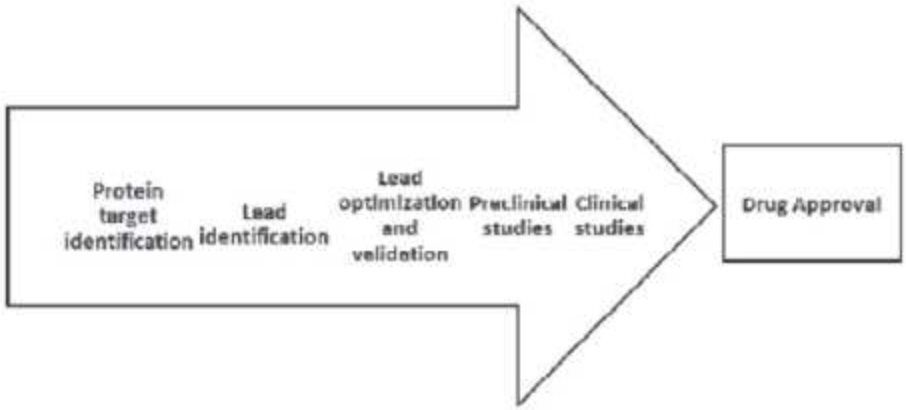

Figure 1. Steps of drug discovery

There are wide application areas of AI in various steps of drug discovery and development such as drug designing, chemical synthesis, drug repurposing and drug screening as shown in Figure 2. In drug designing, AI based methods facilitate protein structure prediction, protein-protein interaction prediction and drug activity prediction [5]. Ethical lapses in drug discovery research can significantly harm human and animal subjects and public at large. A researcher who fabricates data in a drug development process may harm or even kill patients

Ethical issues in integrating AI-based methods to clinical practices

There are four major challenges of AI in healthcare system such as informed consent to use, safety and transparency, algorithmic fairness and biases and data privacy [6]. Informed consent is a way of awareness of responsibility of clinicians towards their patients about input data, biasness and shortcomings of data.

AI developer must ensure the reliability of data and transparency. Input data used in AI methods needs to be valid and reliable. The accuracy of AI prediction depends on input data. Furthermore, algorithm refinement to accurate models. In most of the AI based applications, data sharing is essentially required. Government auditing may possibly enable safety and transparent system. AI methods face problems of algorithm biases and discrimination. AI developers must minimize risks of potential biases at every stages of drug development. Two critical factors can ensure algorithmic fairness including type of Machine Learning procedure to train the algorithm and type of input data. These biasness can arise at phenotypic or genotypic data information that leads to ineffective disease treatment. The privacy of input data is required in data sharing. Patients must be aware about the processing of their data.

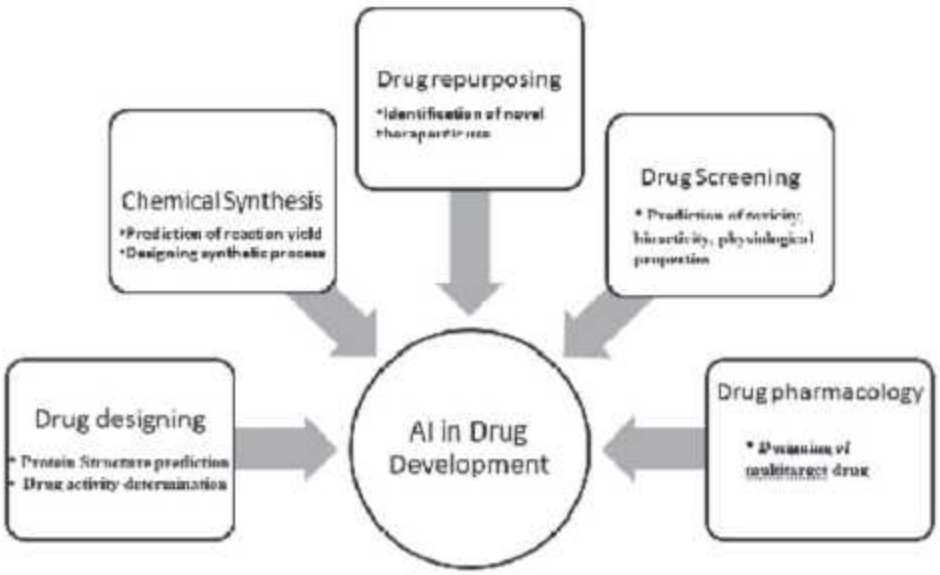

Figure 2. Application areas of AI in drug development

Ethical issues in Drug development based on AI methods

Protein structure prediction

In Bioinformatics, protein structure prediction is one of the most fundamental and challenging aspect of drug designing. There are multiple aspects of drug development starting from one dimensional prediction of structural features of primary sequence, two dimensional prediction of spatial relationships between amino acidsto three dimensional prediction of tertiary structure. Commonly used experimental methods of protein structure are Nuclear Magnetic Resonance (NMR), X-ray Crystallography and Cryo-electron microscope. These are time–consuming and very expensive methods.A wide range of machine learning methods including both supervised and unsupervised learning methods such as Hidden Markov Model, Support Vector Machines, Bayesian methods and clustering methods has been used to solve complexity of protein structure prediction [7]. AI enables faster and accurate prediction of protein structure models particularly in quality assessment (QA). AI provides detailed understanding of atomic features, physic-chemical and potential energy properties, ProQ3D, QACon, DeepQA are QA tools based on Neural Networks. The privacy issue is still a major ethical challenge of protein structure prediction. Protein structure information is specific for individual person, couldn't release for group of individuals [8]. The applications of AI-based methods must consider sensitivity of data privacy of protein structures.

Protein structure refinement is another crucial step to understand biological function. Advances in AI based multiobjective optimization protocol used for protein structure refinement to solve the bias problem [9].

Drug repurposing

The urge of drug repurposing is drastically increased due to COVID-19. The concept of drug repurposing lies in identifying and leveraging use of existing drugs. Drug repurposing is also called as drug repositioning or reprofiling or re-tasking. It involves three steps: Identification of drug molecule, assessment of drug effect in preclinical trial and evaluation of efficacy in phase II clinical trial. Computational methods are extensively used to detect benefits of approved drugs in treatment of multiple health issues. Several computational strategies applied for drug repurposing such as Molecular docking and network-based approaches. These methods may not lead to promising results in identification of drug candidates. Artificial intelligence applied more effectively on drug repurposing to give better prediction of models. The dependency of AI based methods more on data than other computational methods that lead to ethical concern on electronic health data (EHR) [10,11].

Chemical synthesis

For the synthesis process of drug development, lead optimization as one of the most complex and tedious process of designing drug candidate after initial lead compound is identified. ADMET properties and development of Quantitative structure activity relationship (QSAR) models are critical factors that determine potency of good drug for lead optimization. Generation of molecular structure relies on drug activity against specific target and ease of synthesis molecule. In this context *in silico* models have significant role to reduce complexity of chemical synthesis. AI-based method fastens the process of lead optimization to make chemical synthesis easier. Active machine learning usually applied for optimization of reaction conditions that doesn't require large amount of data to update model dynamically [12, 13]. AI-based ADMET properties predictors reduce the number of synthesis cycles to troubleshoot ADMET related issues. To address ethical problems related to data privacy, several data repositories have been developed including NCI Genomic Data Commons (GDC) by NCI, Center for Cancer Genomics (CCG) and Genomics Evidence Neoplasia Information Exchange (GENIE) launched by American Association of Cancer Research (AACR) and COSMIC-3D web-service [14].

Drug screening

Although drug discovery and development process is very expensive and time taking process, AI based algorithms are extensively used in the prediction of physicochemical properties, bioactivity and toxicity. AI techniques are involved in primary classification of cells based on SVM and secondary drug screening (physicochemical and bioactivity prediction) [15]. For designing novel effective drug, physicochemical properties such as solubility, degree of ionization, partition coefficient (logP), permeability of drug must be considered. ADMET predictors and ALGOPS program are used to predict lipophilicity and solubility of compounds. Deep Learning (DL) methods and graph-based Convolutional Neural Networks (CVNN). Acid dissociation constant of compounds can be predicted by ANN based models and graph kernels. The bioactivity of drug molecules depends on their affinity for target receptor. High efficacy of drug molecules indicates their high affinity towards target protein and effective therapeutic response. MANTRA and PREDICT are unsupervised ML techniques, used to determine therapeutic efficacy of drug molecules. eToxPred is used for the prediction of toxicity and synthetic feasibility [5]. Drug screening step of drug designing is critically related to ethical issues specifically at the level of human testing. Use of cell cultures can minimize ethical issues [16].

Drug Pharmacology

Drug pharmacology deals with drug action along with considering their side effects and toxicity. The need of pharmacovigilance arises to monitor adverse drug reactions (ADRs). Several artificial intelligence methods have been developed to improve drug safety for preclinical toxicity and postmarketing surveillance. Support Vector Machine, Random forest (ensemble learning algorithm), Linear Discriminant Analysis (LDA) and Neural Networks are commonly used for QSAR modelling in preclinical safety due to ease of interpretation and accuracy [17]. There are many ethical issues in preclinical safety. These ethical issues need to be updated, developing new guidelines, proposing new policies to ensure safe and protected human research participation. Given the importance of ethics for the conduct of research specifically in health sector many different professional associations, government agencies, and universities have adopted specific codes, rules, and policies relating to research ethics. Many government agencies have ethics rules for funded researchers. Government officials have chosen to limit their focus on "Research misconduct". Several committees have been well constituted at national and international level such as FERCI (Forum for Ethics Review

Committees in India), FERCAP (Forum for Ethics Review Committees in Asia and Western Pacific region), SIDCER (Strategic Initiatives in Developing Capacity for Ethical Review) and so on [18]. TargeTox and PrOCTOR are toxicity prediction tools based on network approach. In postmarketing surveillance, Bayesian methods have been widely used in Electronic Health Record mining. Natural Processing Language methods are used to extract concepts and apply ML to make direct predictions.

Conclusion

Despite great transformation of drug designing process from traditional to advanced approach with increasing utility of *in silico* tools and AI-based methods, many ethical issues have created big challenges in drug discovery process. These challenges could result in great problems in healthcare sector in terms of data privacy, unethical uses of drugs in clinical testing on animals and human, biasness of algorithms and safety. There is utmost need to overcome such challenges in order to leverage advanced approach of AI-based drug discovery methods. Several committees have been constituted to deal with ethical issues but much more safety control is needed with AI researchers and stakeholders of research institutes to ensure data privacy, unbiased use of algorithms and safe testing of drugs. In order to resolve such problems, Government must take active initiative and participation in constituting such committees for all steps of drug development at national and international level. This would likely tackle ethical problems in application of AI methods in prediction of therapeutically important drugs. Pandemic situation due to COVID-19 has tremendously increased the implications of AI approach. Advancement of AI methods by following updated ethical rules and regulations would strengthen treatment strategies for worldwide pandemic situation like COVID-19.

References

1. Mak KK, Pichika MR. Artificial intelligence in drug development: present status and future prospects. Drug Discov Today. 2019, 24(3):773-780.
2. Umashankar V, Gurunathan S. Drug discovery: An appraisal.Int J Pharm Pharm Sci, 2015, 7(4): 59-66.
3. Hughes JP, Rees S, Kalindjian SB, Philpott KL. Principles of early drug discovery. Br J Pharmacol. 2011, 162(6):1239-49.
4. Khan SR, Al Rijjal D, Piro A, Wheeler MB. Integration of AI and traditional medicine in drug discovery. Drug Discov Today. 2021, 18:S1359-6446(21) 00035-0.

5. Paul D, Sanap G, Shenoy S, Kalyane D, Kalia K, Tekade RK. Artificial intelligence in drug discovery and development. Drug Discov Today. 2021, 26(1):80-93.
6. Gerke S, Minssen T, Cohen G. Ethical and legal challenges of artificial intelligence-driven healthcare. Artificial Intelligence in Healthcare. 2020, 295-336.
7. Cheng J, Tegge AN, Baldi P. Machine learning methods for protein structure prediction. IEEE Rev Biomed Eng. 2008, 1: 41-9.
8. Staples M, Chan L, Si D, Johnson K, Whyte C, Cao R. Artificial Intelligence for Bioinformatics: Applications in protein folding prediction, 2019, IEEE Technology & Engineering Management Conference, 2019: 1-8.
9. Wang D, Geng L, ZhaoYJ et al., Artificial intelligence-based multi-objective optimization protocol for protein structure refinement. Bioinformatics, 2020, 36(2): 437-448.
10. Masoudi-Sobhanzadeh Y. Computational-based drug repurposing methods in COVID-19. Bioimpacts. 2020, 10(3): 205-206.
11. Pushpakom S, Iorio F, Eyers PA, Escott KJ, Hopper S, Wells A, Doig A, Guilliams T, Latimer J, McNamee C, Norris A, Sanseau P, Cavalla D, Pirmohamed M. Drug repurposing: progress, challenges and recommendations. Nat Rev Drug Discov. 2019, 18(1):41-58.
12. de Almeida, A.F., Moreira, R. & Rodrigues, T. Synthetic organic chemistry driven by artificial intelligence. Nat Rev Chem 2019, 3: 589–604.
13. Smith JS, Roitberg AE, Isayev O. Transforming Computational Drug Discovery with Machine Learning and AI. ACS Med Chem Lett. 2018, 9(11): 1065-1069.
14. Yang X, Wang Y, Byrne R, Schneider G, Yang S. Concepts of Artificial Intelligence for Computer-Assisted Drug Discovery. Chem Rev. 2019, 119(18):10520-10594.
15. Chan HCS, Shan H, Dahoun T, Vogel H, Yuan S. Advancing Drug Discovery via Artificial Intelligence. Trends Pharmacol Sci. 2019, 40(8):592-604.
16. Jaroch K, Jaroch A, Bojko B. Cell cultures in drug discovery and development: The need of reliable in vitro-in vivo extrapolation for pharmacodynamics and pharmacokinetics assessment. J Pharm Biomed Anal. 2018, 147:297-312.
17. Basile AO, Yahi A, Tatonetti NP. Artificial Intelligence for Drug Toxicity and Safety. Trends Pharmacol Sci. 2019, 40(9):624-635.
18. Muthuswamy V. Ethical issues in clinical research. Perspect Clin Res. 2013, 4(1): 9-13.

●●●

पुस्तक समीक्षा

कृतज्ञता : एक जीवन मूल्य

राजीव कुमार वर्मा*

समीक्षात्मक पुस्तक 'जादू' रॉन्डा बर्न की अंग्रेजी पुस्तक 'द मैजिक' का हिन्दी अनुवाद है। यह पुस्तक 'कृतज्ञता' को मानव जीवन की 'जादू' के रूप में व्याख्यायित करता है। यहाँ कृतज्ञता का अर्थ है- 'धन्यवाद देना'। इसके बिना आप 'जादू' की डोर को ही काट देते हैं तथा हर उस चीज को पाने से वंचित रह जाते हैं, जिसे आप अपने जीवन में चाहते हैं। रॉन्डा बर्न लिखती हैं कि जब हम कृतज्ञ नहीं होते हैं, तो हम अपने जीवन की हर महत्त्वपूर्ण चीजों को हल्के में ले रहे होते हैं। जब हम चीजों को हल्के में लेते हैं, तो हम अनजाने में उन्हें खुद से दूर कर रहे होते हैं। आकर्षण का नियम कहता है कि समान ही समान को आकर्षित करता है, इसलिए अगर हम किसी चीज को हल्के में लेते हैं या महत्त्व नहीं देते हैं, तो वह हमसे दूर हो जाएगी। याद रखें, ''जिसमें कृतज्ञता नहीं है, उसके पास जो है, वह भी उससे ले लिया जाएगा।''

रॉन्डा बर्न लिखती हैं कि आप इसी वक्त बता सकते हैं कि आपने अपने जीवन में कितनी कृतज्ञता का इस्तेमाल किया है। बस अपने जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों पर नजर डालें। धन, स्वास्थ्य, खुशी, कैरियर, घर और संबंध। आपके जीवन के जो क्षेत्र समृद्ध और अद्‌भुत हैं, समझ लीजिए कि उनमें आपके कृतज्ञता का इस्तेमाल किया है और इसी की बदौलत आप जादू का अनुभव कर रहे हैं। जो क्षेत्र समृद्ध और अद्‌भुत नहीं हैं, वे कृतज्ञता की कमी के कारण ऐसे हैं। जब तक आप कृतज्ञ नहीं होते हैं, तब तक आप अधिक हासिल नहीं कर सकते। ऐसा करके आप अपने जीवन में प्रवाहित होने वाले जादू को रोक देते हैं। जब आप कृतज्ञ नहीं होते हैं, तो आप बेहतर स्वास्थ्य, बेहतर संबंधों, अधिक खुशी, अधिक धन और अपनी नौकरी, कैरियर या कारोबार की उन्नति के प्रवाह को रोक देते हैं। वास्तव में पाने के लिए आपको देना होता है। यही नियम है।

*** मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

आलोच्य पुस्तक में अट्ठाईस (28) जादुई अभ्यास दिए गए हैं। इन्हें इस तरह तैयार किया गया है कि पाठक यह सीख सकें कि अपने स्वास्थ्य, धन, नौकरी और संबंधों में क्रांति लाने के लिए कृतज्ञता की जादुई शक्ति का इस्तेमाल कैसे किया जाए ताकि आपकी छोटी से छोटी इच्छा और बड़े से बड़े सपने साकार हो जाएँ। साथ ही कृतज्ञता के अभ्यास से समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए और किसी भी नकारात्मक स्थिति को सकारात्मक कैसे बनाया जाए। वास्तव में 'जादू' में रॉन्डा बर्न 28 दिनों की एक अविश्वसनीय यात्रा में हमें सिखाती हैं कि हम अपने रोजमर्रा के जीवन में इस ज्ञान का इस्तेमाल कैसे करें।

पहले बारह (12) अभ्यासों में कृतज्ञता की जादुई शक्ति का इस तरह इस्तेमाल किया गया है, ताकि हम वर्तमान और अतीत में मिली चीजों के लिए कृतज्ञ हों। हमारे पास इस वक्त जो है और अब तक जो मिल चुका है, यदि हम उसके लिए कृतज्ञ नहीं होते हैं, तो यह जादू काम नहीं करेगा। जब आप अपने पास मौजूद चीजों के लिए कृतज्ञ होते हैं, तो चाहे वे कितनी ही छोटी क्यों न हों, आप उन्हें तुरंत बढ़ता हुआ देखेंगे। रॉन्डा बर्न कहती हैं कि यदि आप उस धन के लिए कृतज्ञ हैं, जो आपके पास है, चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो, तो आप देखेंगे कि आपका धन जादुई ढंग से बढ़ रहा है। यदि आप किसी संबंध के लिए कृतज्ञ हैं, भले ही वह आदर्श न हो, तो आप उसे चमत्कारिक अंदाज में बेहतर होते देखेंगे। यदि आप अपनी वर्तमान नौकरी के लिए कृतज्ञ हैं, भले वह आपके सपनों की नौकरी न हो, तो परिस्थितियाँ इस तरह बदलने लगेंगी कि आपको नौकरी में अधिक आनन्द आएगा और सभी तरह की प्रगति के अवसर अचानक प्रकट हो जाएँगे। इसका दूसरा पहलू यह है कि जब हम अपनी नियामतें नहीं गिनते हैं, तो हम अनजाने में ही नकारात्मक चीजों को गिनने के जाल में फँस सकते हैं। जब हम उन चीजों के बारे में बात करते हैं, जो हमारे पास नहीं हैं, तो हम निश्चित रूप से नकारात्मक चीजों को गिन रहे होते हैं। आप अधिक कृतज्ञता महसूस करने के लिए जीवन सृष्टि, ईश्वर, परमात्मा के प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं। आप अपने घर, परिवार, मित्रों, कामकाज और पालतू पशुओं के लिए कृतज्ञ हो सकते हैं। आप सूरज के लिए कृतज्ञ हो सकते हैं, जिसकी धूप आप सेंकते हैं। उस पानी के लिए, जो आप पीते हैं। उस भोजन के लिए, जो आप खाते हैं। उस हवा के लिए, जिसमें आप साँस लेते हैं। इनमें से किसी के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। आप वृक्षों, पशुओं, समुद्रों, पक्षियों, फूलों, पौधों, नीले आसमान, वर्षा, तारों, चन्द्रमा और हमारे सुन्दर ग्रह पृथ्वी के लिए कृतज्ञ हो सकते हैं। चार्ल्स डिकेन्स (1812-1870) ने बहुत अच्छी बात कही है कि 'अपनी वर्तमान नियामतों पर विचार करें, जो हर इंसान के पास भरपूर हैं, न कि अपने अतीत के दुर्भाग्यों पर, जो सभी लोगों के पास थोड़े हैं।'

अगले दस (10) अध्यायों में कृतज्ञता की जादुई शक्ति का इस्तेमाल आपकी इच्छाओं, सपनों और हर मनचाही चीज को पाने के लिए किया गया है। इन दस अभ्यासों

के जरिए आप अपने सपनों को साकार कर पाएँगे और अपने जीवन की परिस्थितियों को जादुई तरीके से बदलता देखेंगे। अंतिम छह (6) अभ्यास आपको एक बिलकुल ही नए स्तर पर पहुँचा देंगे, जहाँ आप अपने शरीर और मस्तिष्क की हर कोशिका को कृतज्ञता से लबालब महसूस करेंगे। यहाँ आप सीखेंगे कि दूसरों की मदद करने, समस्याओं से उबरने और जीवन में किसी भी प्रकार की नकारात्मक स्थिति या परिस्थिति को बेहतर बनाने के लिए आप कृतज्ञता की जादुई शक्ति का इस्तेमाल कैसे कर सकते हैं। इसके लिए आपको अपनी दिनचर्या में बहुत अधिक समय निकालने की जरूरत नहीं है, क्योंकि हर अभ्यास को खास तौर पर इस तरह तैयार किया गया है कि यह आपके रोजमर्रा के जीवन में आसानी से ढल जाए, फिर चाहे वह कोई कामकाजी दिन हो, सप्ताहान्त हो या छुट्टियाँ हों। कृतज्ञता को आप अपने साथ ले जा सकते हैं- आप जहाँ भी जाते हैं, वहाँ इसे अपने साथ ले जाते हैं और इसके बाद आप चाहे कहीं भी चले जाएँ, जादू होने लगता है।

यदि आप एक भी दिन का नागा कर देते हैं, तो इस बात की बहुत आशंका है कि आप अब तक हासिल की गई गति और लय को गँवा देंगे। जादू में कोई कमी न हो, यह सुनिश्चित करने के लिए एक दिन का नागा होने पर तीन दिन पीछे जाएँ और वहाँ से दोबारा अभ्यास शुरू करें। कुछ अभ्यासों को केवल सुबह करने के लिए तैयार किया गया है, जबकि बाकी अभ्यासों को दिन भर करना होता है। इसलिए हर दिन का अभ्यास सुबह उठते ही सबसे पहले पढ़ें। कुछ अभ्यासों को रात में भी पढ़ना होगा, क्योंकि वे सुबह आँख खोलते ही शुरू हो जाएँगे। हर रात सोने से पहले आप अगले दिन के अभ्यास को पढ़ सकते हैं, ताकि आप उसके लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाएँ। बहरहाल, आपको सुबह उस अभ्यास को दोबारा जरूर पढ़ना है।

यदि आप 28 जादुई अभ्यासों का सिलसिलेवार अभ्यास नहीं करना चाहते, तो आप दूसरे तरीकों से भी उनका इस्तेमाल कर सकते हैं। आप कोई एक जादुई अभ्यास चुन सकते हैं, जो आपके जीवन के उस महत्त्वपूर्ण विषय से संबद्ध हो, जिसे आप बदलना या बेहतर बनाना चाहते हों। फिर आप उस अभ्यास को तीन दिन लगातार या सप्ताह के सातों दिन कर सकते हैं। या आप एक सप्ताह में एक जादुई अभ्यास कर सकते हैं या एक सप्ताह में दो अभ्यास; फर्क सिर्फ यह पड़ेगा कि आपको अपने जीवन में परिवर्तन देखने में उतना ही अधिक समय लग जाएगा। एक बार जब आप 28 जादुई अभ्यास पूरे कर लें, तो फिर आप अपनी खास जरूरतों के हिसाब से खास अभ्यासों का इस्तेमाल कर सकते हैं, ताकि आपके जीवन के उस क्षेत्र में जादू बढ़ जाए। मिसाल के तौर पर, यदि आप स्वास्थ्य या धन चाहते हैं, या अपने सपनों की नौकरी पाना चाहते हैं, अपने कारोबार में अधिक सफलता पाना चाहते हैं या संबंध को बेहतर बनाना चाहते हैं, तो उस विषय से संबंधित अभ्यास करें। या कृतज्ञता के अभ्यास को जारी रखने के लिए इस पुस्तक को कहीं से भी खोल लें; यदि सामने खुलने वाला अभ्यास अच्छा लगता है, तो यह उस दिन करने के लिए आदर्श अभ्यास है। 28 जादुई अभ्यासों के अंत में उन अभ्यासों की अनुशंसाएँ भी हैं,

जिनका इस्तेमाल आप संयुक्त रूप से कर सकते हैं, जिससे आपके जीवन के विशिष्ट क्षेत्रों में जादू की गति तीव्र हो जाएगी।

लेखिका कृतज्ञता के महत्त्व को स्थापित करते हुए लिखती है कि कृतज्ञता टूटे हुए या मुश्किल संबंधों का इलाज है। यह स्वास्थ्य या धन की कमी का इलाज है। यह दुख का इलाज है। कृतज्ञता से डर, चिंता, दुख और हताशा खत्म होती है। यह खुशी, स्पष्टता, धैर्य, दयालुता, करुणा, समझ और मानसिक शांति लाती है। कृतज्ञता समस्याओं के समाधान लाती है। यह आपके सपनों को साकार करने के अवसर और संसाधन प्रदान करती है। कृतज्ञता हर सफलता के पीछे होती है। यह नए विचारों और खोजों के द्वार खोल देती है, जैसा न्यूटन और आइंस्टाइन जैसे महान वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया। यदि कृतज्ञता को स्कूलों में अनिवार्य विषय बना दिया जाए, तो हम बच्चों की एक ऐसी पीढ़ी देखेंगे, जो हमारी सभ्यता को अद्‌भुत उपलब्धियों और खोजों द्वारा तरक्की के शिखर पर पहुँचा देगी। तब असहमतियाँ दूर हो जाएँगी, युद्ध खत्म हो जाएँगे और पूरे संसार में शांति स्थापित हो जाएगी। जादुई शब्द धन्यवाद कहें। उन्हें जोर से कहें, उन्हें छत से चिल्लाकर कहें, उन्हें फुसफुसाकर कहें, उन्हें मन ही मन कहें या उन्हें अपने दिल में महसूस करें, लेकिन आज के बाद आप जहाँ भी जाएँ, कृतज्ञता और इसकी जादुई शक्ति को अपने साथ ले जाएँ। पवित्र कुरान (अल इंसान 76 : 3) में कहा गया है- "हमने उसे (यानी मनुष्य को) रास्ता दिखाया : वह कृतज्ञ है या कृतघ्न (यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है)।"

पुस्तक	:	जादू
लेखक	:	रॉन्डा बर्न
अनुवादक	:	डॉ. सुधीर दीक्षित
प्रकाशक	:	मंजुल पब्लिशिंग हाउस
संस्करण	:	2015
मूल्य	:	299
पृष्ठ	:	266

●●●

एक निवेदन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मदन मोहन मालवीय जी के शिक्षा दर्शन एवं उनके जीवन आदर्शों से प्रेरित होकर **मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र** का उद्घाटन सन् 1991 में हुआ। इस केन्द्र का उद्देश्य है– उच्च शिक्षा से जुड़े आज के प्रबुद्धजनों की मूल्य चेतना का उदात्तीकरण। आज हम भारत को एक उत्तम गौरवशाली देश के रूप में विकसित करने के लिए नाना प्रकार के प्रयास आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में कर रहे हैं, परन्तु वास्तविक सामाजिक, मानवीय प्रगति के लिए इन सभी प्रयासों का आधार नैतिक एवं मानवीय मूल्य ही हो सकते हैं। इस भावना से प्रेरित होकर यह केन्द्र कई कार्यक्रम चला रहा है।

इन कार्यक्रमों से उत्पन्न मूल्यगत विचारों का विस्तार करने के लिए **'मूल्यविमर्श'** शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया है, जिसका **ISSN 0976-3694** है। हम चाहते हैं यह पत्रिका मूल्यों के प्रति चिंतित एवं सचेत जनों के बीच विचार-विमर्श का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरे। हम आपका आह्वान करते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने विचारों एवं अनुभवों को लेखबद्ध करके पत्रिका में प्रकाशन हेतु हमें भेजे।

निम्नांकित बिन्दुओं पर आधारित लेखों का हम स्वागत करते हैं-

- आज के जीवन से जुड़े मूल्यगत प्रश्नों पर नवीन चिन्तन।
- समसामयिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक गतिविधियों का मूल्यों की दृष्टि से विश्लेषण।
- ऐसे प्रेरणादायक संस्मरण, विचार जो यह संदेश देते हों कि कैसे नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर हम एक सुखी, सफल, सार्थक जीवन जी सकते हैं तथा कैसे एक सभ्य मानवोचित समाज की रचना में योगदान कर सकते हैं।
- इस शोध पत्रिका के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेख स्वीकार किये जायेंगे।
- लेखकों से अनुरोध है कि कृपया अपने लेख **5000 से 10,000 की शब्द सीमा** में लिखें। हिन्दी के लेख **कृतिदेव १० में टाइप होने चाहिए तथा अंग्रेजी के लेख Times New Roman** में **एम.एस. वर्ल्ड फाइल** में टाइप करायें तथा **शिकागो पाद टिप्पणी एवं संदर्भ प्रक्रिया** का प्रयोग करके लेख **साफ्ट कॉपी** और **हार्ड कॉपी** में उपलब्ध कराने की कृपा करें।

AN APPEAL

'MULYAVIMARSA' is a bi-lingual (Hindi & English) publication of **Malaviya Moolya Anusheelan Kendra** of the Banaras Hindu University. It is a refereed research journal having **ISSN 0976-3694.** The MMAK was inaugurated in 1991 for the promotion of ethics and human values among the intelligentsia as well as those not-so-learned. Inspired by the life and deeds of Mahamana Madan Mohan Malaviya, the Centre has been engaged in propagating the need to inculcate human values in the lives and works of the present day people. **'MULYAVIMARSA'** has been a vehicle of spreading these ideas and the various related works undertaken to fructify them. We invite readers and writers to contribute to this journal as also to the centres website articles and essays relating to ethics and human values and its origin, nature and index impact on everyday life of the trouble-torn people of the present day society. Writings may also be based on such episodes and reminiscences that are likely to inspire people for living a moral and value based life. We would become analysis of current social, political and economic developments in the light of moral and ethical values.

Contributors are requested to send their writings in **5000 to 10,000 word limit** in soft and hard copies typed in **Times New Roman** font (for English articles) and **Kriti dev 010** (for Hindi articles) in **M.S. World Flie,** following the standard **Chicago Reference and Footnote style** sheet.

वर्ष 14-15, संयुक्तांक 27-30
जनवरी-दिसम्बर, 2019, जनवरी-दिसम्बर 2020

मूल्यविमर्श

MULYAVIMARSA

मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र
मालवीय भवन संकुल
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005
ई-मेल : mmak91@gmail.com